Published by Saraswati Pustak Mandir,
Delhi For The Shri Gandhi Granthagar Delhi.

मुद्रक:—
सरस्वती प्रेस
जोगी वाड़ा
दिल्ली

दो शब्द

महात्मा गान्धी की ७४ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सेंट्रल जेल बनारस में एकत्र भिन्न-भिन्न जगहों के नज़रबन्द कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं ने सर्वसम्मत्ति से यह प्रस्ताव पास किया कि जिस तरह महात्मा जी के लेखों एवम् वक्तव्यों का संग्रह अंग्रेजी में "गान्धी सीरीज़" के नाम से प्रकाशित हुआ है। उसी तरह उनकी कृतियों का हिन्दी अनुवाद भी "गान्धी ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित कराया जाय। जिससे गान्धी-विचार के सम्बन्ध में फैली हुई गलत फ़हमियाँ दूर हों और सर्वसाधारण को गान्धी-साहित्य सुलभ मूल्य में एक ही जगह से मिलता रहे।

पुस्तक व्यवसायी होने के कारण प्रकाशन-कार्य मुझे सौंपा गया और मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। गान्धी ग्रन्थावली के आकार-प्रकार, संग्रह, प्रकाशन आदि की रूपरेखा जेल में ही तैयार कर ली गई। सिर्फ जेल से बाहर आने की प्रतिक्षा थी।

निर्धारित योजना के अनुसार गान्धी जी की सारी कृतियों का हिन्दी अनुवाद पन्द्रह जिल्दों में प्रकाशित हो रहा है। पाँच पुस्तकें इस समय प्रेस में दे दी गई हैं। जिनका विवरण आगे दिया गया है और जो शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी।

बन्धुओं! जीवन में अध्ययन का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। पर अध्ययन होना चाहिये उन पुस्तकों का, जो प्रकाशक के आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् मानव-जाति के उत्थान में सहायक होने की दृष्टि से निकाली जाती हैं। गान्धी भारत के युगकर्त्ता और महान विचारक हैं। उनकी कृतियाँ जीवन-युद्ध में अग्रसर होने के लिये प्रकाशस्तम्भ का काम देंगी।

मैं आशा करता हूँ कि देश भक्त हिन्दी प्रेमी इसके प्रचार एवम् प्रसार में सहायक होंगे।

—संचालक

महत्वपूर्ण सम्मति

श्री गान्धी ग्रन्थागार के संस्थापक श्री रमा शंकर लाल श्रीवास्तव विशारद महात्मा गान्धी जी के व्यक्त विचारों का संग्रह कर बड़ा ही उपयोगी और प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। वर्तमान भारत के महात्मा जी युगकर्त्ता कहे जा सकते हैं और उनकी छाप राष्ट्र के सभी अङ्गों पर पड़ी है। श्री रमाशङ्कर लाल जी ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि देश के एक एक समूह के प्रति गान्धी जी के क्या आदेश और उपदेश हैं उसे पृथक-पृथक ग्रन्थों में संग्रह किया जाय। हमारे सामने ग्रन्थ माला का प्रथम खण्ड है, जिसमें विद्यार्थियों के प्रति महात्मा जी के सन्देशों का संग्रह है। अवश्य ही प्रकाशक ने बड़े परिश्रम से भिन्न-भिन्न स्थानों से खोज कर इन लेखों और वक्तव्यों को एकत्र किया है। हमें कोई सन्देह नहीं है कि इन सब अमूल्य शब्दों को दोहरा कर पढ़ने और मनन करने से हम सबका लाभ होगा। जैसी स्थिति इस समय देश की हो गई है और जैसी गलत फहमियाँ फैलाई जा रही हैं, उनमें ऐसे ग्रन्थों का विशेष मूल्य और इनके अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

श्री प्रकाश ब० ए० एल-एल बी० (कैंटब)
बार-ऐट-लो, एम० एल० ए० (सेंट्रल)

विषय सूची

विद्यार्थियों से

एक विद्यार्थी के चार प्रश्न

कला

जो लोग प्रार्थना और तपश्चर्या के सप्ताहों में दिलखुश में मौजूद थे उन्हीं में रामचन्द्रन नाम का विद्यार्थी भी था, जो शांति-निकेतन से आया था। रामचन्द्रन, एन्ड्रूज के शिष्यों में से है। उसने अपने गुरु को कुछ दिन के लिये दिल्ली रुकने के लिए राजी कर लिया। एक दिन जब श्री ऐन्ड्रयूज को दिल्ली से बाहर जाना था, शाम को वे रामचन्द्रन को गान्धी जी के पास ले गये। उन्होंने गान्धी जी से कहा—"मैंने आज तक आप से रामचन्द्रन का परिचय नहीं कराया; परन्तु वह यहाँ हम लोगों के साथ शुरु से सहायता करता रहा है। वह आप से कुछ प्रश्न करना चाहता है। कल वह वापस चला जायगा। यदि आप उसके शान्ति-निकेतन वापस जाने के पहिले उससे बातें करलें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।" 'कल' यानी दूसरे दिन सोमवार मौन दिवस था। इससे रामचन्द्रन एक दिन और रुक गया। मंगलवार को कलकत्ता जाने वाली सुबह की ट्रेन पकड़ना था। प्रातःकाल की प्रार्थना के पश्चात् ही ठीक ४।। बजे रामचन्द्रन आया। वह अपने प्रश्न—सन्देह और कठिनाइयाँ जो उसे उलझा रही थीं—ठीक किये था। फिर भी वह अपने ऊपर पहले-पहल यह विश्वास न कर सका कि वह अपने प्रश्नों को पूछ सकेगा। परन्तु किसी प्रकार उसमें साहस आ गया। बापू ने उसके सम्बन्ध स्थान

और अध्ययन के बारे में पूछा। जिससे उसमें किसी प्रकार की हिचकिचाहट न रह गई। इस तरह रामचन्द्रन ने जितने प्रश्न गान्धी जी से पूछे, उन सब का उल्लेख मैं यहां नहीं कर सकता. मैं उसका केवल सारांश दे रहा हूँ।

रामचन्द्रन् ने पूछा— 'यह क्या बात है कि बहुत से आपको प्रेम और श्रद्धा करने वाले योग्य और प्रसिद्ध व्यक्ति यह समझते हैं कि राष्ट्रीय पुनरुत्थान की योजना में आपने जाने या अनजाने में कला का कोई ध्यान नहीं रखा ?

गान्धी जी ने उत्तर दिया—"खेद है कि आम तौर से इस मामले में लोग मुझे गलत समझते हैं। चीजों के दो रूप हैं— बाह्य और अन्तर। पूर्ण रूप से यह विषय मेरे लिए भी वैसा ही है। बाह्य का कुछ अर्थ नहीं, यह कि वह अन्तर की सहायता करता है। इस प्रकार सारी सत्य कला में आत्म व्यञ्जना है। बाह्य की उपयोगिता मनुष्य के अन्तर की भावना को प्रकट करता है।

रामचन्द्रन् ने हिचकिचाते हुये कहा—' महान कलाकार ने भी कहा है कि कला, कलाकार की आत्मा की अशान्ति और प्रेरणा की शब्दों में रंग; आकृति आदि में रूप है।

गांधी जी ने कहा—"हां वही कला मुझे अधिक प्यारी है। परन्तु मैं जानता हूं कि कितने ही अपने को कलाकार कहते हैं और समझे भी जाते हैं। परन्तु उनकी कृतियों में आत्मा की प्रेरणा और अशान्ति का कोई चिह्न नहीं।

"क्या दिमाग में ऐसा कोई उदाहरण है ?"

गान्धी जी ने कहा—"हां, कुजस्कर वाइल्ड को लो। मैं उसके सम्बन्ध में कह सकता हूं। मैं जिस समय इंग्लैण्ड में था उसके सम्बन्ध में बड़ी बातें और वाद-विवाद हो रहे थे।"

इस पर रामचन्द्रन ने कहा—मैंने सुना है कि आस्कार वाइल्ड आधुनिक काल के महान साहित्यिक कलाकारों में से था।"

"हां, मेरे लिये भी यही कठिनाई है। वाइल्ड ने साधारणतः बाह्य आकार में ऊँची से ऊँची कला देखी है। इससे वह अनैतिकता के सौन्दर्य में सफल हुआ है। सारी सच्ची कलायें आत्मा को उसके अन्तर के अपनत्व को प्राप्त करने में सहायता करती हैं। मैं अपने सम्बन्ध में भी देखता हूँ कि मैं अपनी आत्मानुभव में बिना बाह्य रूप के भी पूर्ण रूप से सफल हूं। इस लिए मैं दावा कर सकता हूँ कि मेरे जीवन में पर्याप्त कला है यद्यपि वह कृति तुम्हे नहीं मिलती। मेरे कमरे की सादी दीवालें हो सकती हैं और मैं बिना छत के भी काम चला सकता हूं जिससे मैं तारामय स्वर्ग को ऊपर देख सकूं जो सौन्दर्य का अनन्त विस्तार है। जब मैं उसकी चमकती हुई तारक मालाओं को आकाश के ऊपर देखता हूँ जो कि मेरे सामने खुली हुई है। मनुष्य की कौन सी कला मुझ को ऐसा सुन्दर दृश्य दे सकती है? इसका अर्थ यह नहीं कि मैं कला के उत्पादन के मूल्य को नहीं मानता। साधारणतः इसे स्वीकार करते हुए मैं व्यक्तिगत तौर पर यह अनुभव करता हूं कि प्रकृति के बादल सौन्दर्य से तुलना में ये अच्छे नहीं लगते। परन्तु मनुष्य की कला की ये कृतियाँ अपनी उपयोगिता वहाँ तक रखता है जहाँ तक वे आत्मानुभव को बढ़ाने में सहायता देती हैं।

रामचन्द्रन ने कहा—"परन्तु कलाकार तो यह दावा करते हैं कि वे बाह्य सौन्दर्य द्वारा सत्यता को प्राप्त करते और देखते हैं। क्या यह सम्भव है कि उस मार्ग द्वारा सत्य को प्राप्त किया जाय और देखा जावे?"

गान्धीजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"मेरा विचार इससे भिन्न

है मैं सत्य में सत्य के द्वारा सौन्दर्य देखता और पाता हूँ। सारा सत्य केवल सत्य विचार भो नहीं, बल्कि सत्य पूर्ण आकृतियाँ, चित्र अथवा गीत भी सुन्दर हैं। लोग साधारणतः सत्य में सौन्दर्य देखने में असफल रहते हैं, साधारण मनुष्य सौन्दर्य के पीछे दौड़ता और अन्धा हो जाता है। मनुष्य जब कभी सत्य में सौन्दर्य देखने लगता है तभी सत्य कला का एक आविर्भाव होता है।

इस पर रामचन्द्रन ने पूछा—"परन्तु क्या सत्य से सौन्दर्य और सौन्दर्य से सत्य अलग नहीं हो सकता ?"

गान्धी जी ने उत्तर दिया—'हमें यह ठीक-ठीक जानना चाहिये कि सौन्दर्य क्या है ? यदि यह वह है जो मनुष्य साधारणतः शब्दों द्वारा समझता है तब तो वह बहुत दूर है। क्या एक सुडौल आकृति वाली स्त्री अनिवार्य रूप से सुन्दर होगी।"

"रामचन्द्रन ने विना सोचे समझे कहा—"हाँ।"

बापू ने पूछा—"यदि वह बुरे आचरण की हो तो भी ?"

रामचन्द्रन हिचकिचाया और उत्तर दिया—"परन्तु इस दशा में उसका मुख सुन्दर नहीं हो सकता। सदैव ही अन्तरात्मा का स्वच्छ स्वरूप होगा। अच्छा कलाकार अपने विशेष गुण से उसके सच्चे प्रकाशन को चिन्तित करेगा।"

गान्धी जी बोले—परन्तु तुम यहीं पर सारे प्रश्नों को लाना चाहते हो। तुमको मानना पड़ेगा कि केवल बाह्य रूप ही किसी चीज को सौन्दर्यमय नहीं कर सकता। एक सच्चे कलाकार के लिये वही आकृति सौन्दर्यमय है जो बाह्य रूप से बहुत दूर अन्तरात्मा के सत्य के साथ रू चमकती हो यही ठीक है जैसा कि मैंने कहा है कि कोई भी सौन्दर्य सत्य से अलग नहीं। दूसरी बात यह कि सत्यता अपने को अनेक आकृतियों में प्रकट कर सकती है जिसमें

वाह्य सौन्दर्य बिल्कुल नहीं हो सकता। यह कहा जाता है कि सुकरात अपने समय का महान सच्चा मनुष्य था। परन्तु फिर भी उसकी आकृति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यूनान में ऐसी अच्छी आकृति किसी की न थी। मेरे विचार से वह बहुत ही सुन्दर था क्योंकि उसका सारा जीवन सत्य के पीछे लड़ते बीता। और तुम्हें स्मरण रखना चाहिये कि वाह्य रूप उसके आन्तरिक सत्य के सौन्दर्य के प्रशंसा करने से फिडियास न रोक सका। यद्यपि एक कलाकर की तरह वाह्य सौन्दर्य देखने का अभ्यस्त था।

रामचन्द्रन आतुरता से बोला—"परन्तु बापू जी, अत्यन्त सुन्दर चीजें प्रायः ऐसे मनुष्यों द्वारा पैदा की गई हैं जिनके स्वयं के जीवन सुन्दर नहीं थे।"

गान्धी जी ने कहा—"इसका अर्थ केवल यह है कि सत्य और असत्य प्रायः साथ रहते हैं, अच्छाई और बुराई प्रायः एक साथ पाई जाती है। कलाकार में अच्छाइयों केसाथ बुराइयां भो रहती हैं। सच्चे सौन्दर्य का निर्माण तभी होगा जब उचित अच्छाइयाँ काम करती हों। यदि जीवन में ऐसे क्षण दुर्लभ हैं तो वे कला में भी दुर्लभ रहेंगे।"

इन सब ने रामचन्द्रन को गम्भीर चिन्ता में डाल दिया—"यदि सत्य अथवा अच्छी चीजें सुन्दर हो सकती हैं फिर वे चीजें जिनमें नैतिकता का गुण नहीं किस प्रकार सुन्दर हो सकती हैं?" उसने मन में गुनगुनाते हुये सोचा। इसके पश्चात् उसने प्रश्न किया—"बापू जी, उन चीजों में जिनमें न तो नैतिकता है और न अनैतिकता। क्या उनमें सत्यता है? उदाहरणार्थ—क्या सूर्यास्त और द्वितीया के चन्द्रमा में जो रात्रि में तारागणों के बीच चमकता है सत्य है?"

गान्धी जी ने उत्तर दिया—"सचमुच, ये सौन्दर्य सत्यपूर्ण है, क्योंकि वे अपने पीछे सृष्टिकर्ता के सम्बन्ध में सोचने के लिये मुझे प्रेरित करते हैं, यदि ये सृष्टि के मध्य में न होते तो कैसे सुन्दर जँचते ? जब मैं सूर्यास्त के आश्चर्य अथवा चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखता हूँ तो मेरी आत्मा स्रष्टा की पूजा में दौड़ जाती है। मैं उस स्रष्टा और इस संसार में उसकी दया को देखने का प्रयत्न करता हूं। परन्तु यदि वे उसके सोचने में सहायता न दें तो सूर्यास्त और सूर्योदय भी एक अड़ंगा हो सकते हैं। कोई भी वस्तु जो आत्मा के उड़ान को रोके वह केवल माया या कल्पना ही है।" जैसे कि यह शरीर है जो प्रायः मुक्ति के मार्ग में बाधक होता है।

र.चचन्द्रन ने कहा—"कला के ऊपर आपके विचारों को सुन कर मैं अपने को कृतज्ञ समझता हूँ और उन्हें स्वीकार करता हूं। आने वाली पीढ़ियों के लाभार्थ क्या आपके लिये यह अच्छा न होगा कि आप इनमें एक क्रम करदें जो उन्हें पथ प्रदर्शन करे ?"

गांधी जी ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—"मैं ऐसा करने का स्वप्न कभी नहीं देख सकता, इसका कारण यह है कि मेरे लिये कला के ऊपर अधिकार जमाना एक धृष्टता होगी। मैं कला का विद्यार्थी नहीं हूँ। यद्यपि यह मेरी प्रारम्भिक धारणायें हैं। मैं इसके सम्बन्ध में न तो बोलता और न लिखता हूं। क्योंकि मैं अपनी कमियों को जानता हूँ। वह ज्ञान केवल मेरी दृढ़ता है। मैं अपने जीवन में जो कुछ करने योग्य हो सका हूँ अपनी कमियों का अनुभव करने के बाद कलाकार के कार्यों से मेरे कार्य भिन्न हैं और मैं अपने मार्ग से उसकी स्थिति में जाने की कल्पना नहीं करता।

रामचन्द्रन ने फिर दूसरा प्रश्न पूछा—"बापू जी, क्या आप सारे कल कारखानों के विरुद्ध हैं ?"

रामचन्द्रन के दूसरे प्रश्न पर मुस्कराते हुये उन्होंने उत्तर दिया—"जब कि मैं यह जानता हूं कि यह शरीर भी कल पुरजों का एक अत्यन्त कोमल टुकड़ा है तो यह कैसे हो सकता है ?" चर्खा भी एक मशीन है। मैं मशीन की उत्कट अभिलाषा से ऐतराज करता हूं न कि मशीन से, यह अभिलाषा मेहनत बचाने वाली मशीन के लिए है। मनुष्य परिश्रम बचाने की ओर तब तक बढ़ता है जब तक हजारों आदमी बिला काम के नहीं हो जाते, वे भूखों मरने के लिए खुली सड़कों पर ढकेल दिये जाते हैं। मैं समय और परिश्रम बचाना चाहता हूँ। परन्तु एक ही वर्ग के लिए नहो बल्कि मनुष्य मात्र के लिए। मैं थोड़े मनुष्यों के हाथों में धन का केन्द्रीकरण नहीं पसन्द करता। बल्कि वह सारे लोगों के पास हो। आज के कल-पुरजे थोड़े से लोगों को लखपति होने में सहायता करते हैं। इसकी पृष्ठ-प्रेरणा परिश्रम बचाने का परोपकार नहीं, बल्कि एक लोभ है। वह वस्तुओं के इस विधान से विपरीत है जिसके लिए मैं अपनी पूर्ण शक्ति से लड़ रहा हूं।

रामचन्द्रन ने उत्सुकता से पूछा—"बापू जी, तब तो आप कल-पुरजों के विरुद्ध उतना अधिक नहीं लड़ रहे हैं बल्कि इसकी बुराइयों के जो आज के युग की प्रमाण हैं।"

"मैं निस्संकोच कहूँगा 'हां' परन्तु मैं कहुंगा कि वैज्ञानिक सत्य और आविष्कार सर्व प्रथम लोभ के अस्त्र होने से रोके जाने चाहिएँ। उस समय मजदूर पर अधिक काम न होगा और कल-पुरजे एक अड़ंगे के बदले एक सहायक होंगे। मेरा उद्देश्य है कि सारे कल पुरजे बरबाद न किये जाँय बल्कि पाबन्दी के साथ चलें।

रामचन्द्रन ने कहा--"जब तर्क से सोचा जाय तो यह अर्थ निकलता है कि बड़ी बड़ी मशीनें न रहनी चाहिये।"

गान्धी जी ने कहा—"उन्हें मिटाना ही चाहिए. परन्तु मैं एक चीज स्पष्ट कर देता हूं। सब से अधिक ख्याल मनुष्य का रखना चाहिये। मशीनें मनुष्य के अंगों को बेकार न बना सकें। उदाहरणार्थ—मैं कुछ अपवाद बताता हूं। कपड़ा सीने की 'सिंगर सेविंग मशीन' को लीजिये, यह इस समय की आविष्कृत उपयोगी वस्तुओं में से है। इसके आविष्कार के पीछे एक कहानी है। सिंगर अपनी स्त्री को हाथों से सीने के थकाऊ ढंग देख उसके प्रेम ने सिंगर द्वारा सीने की मशीन को आविष्कार किया। जो उस स्त्री की अनावश्यक परिश्रम को बचाती थी। सिगर ने केवल अपनी स्त्री ही का परिश्रम नहीं बचाया परन्तु उन लोगों का भी जो सीने की मशीन को खरीद सकेंगे।"

बापू ने रामचन्द्रन के उत्सुक विरोध पर मुस्कराते हुए कहा—"परन्तु मैं समाजवादी हूं और कहना है कि ऐसी फैक्टरियाँ राष्ट्रीय हों अथवा राज्य के अन्तर्गत हों. उन्हें केवल अत्यन्त आकर्षण और आदर्श स्थिति में कार्य करना है। लाभ के लिये नहीं, वरन मानवता के लाभार्थ और उनका उद्देश्य लोभ के स्थान में प्रेम लिये हो। परिश्रम का यह दूसरा तरीका मुझे पसन्द है। धन की यह पागल दौड़धूप बन्द होनी चाहिये और मजदूरों को अपनी दैनिक मजदूरी के साथ ही दैनिक कार्य का आश्वासन होना चाहिये। मशीन इस दशा में मनुष्य के कार्यों में इतनी सहायक होगी जितना वह राज्य के अर्थात् वह आदमी जिसके पास मशीन है उसको भी उतना ही लाभ होगा जितना स्टेट को। इस समय की व्यर्थ दौड़ धूप बन्द हो जायगी और (जैसा कि मैंने कहा है) प्रेम और आदर्श के साथ मजदूर कार्य करेंगे। यह मेरे दिमाग में

है कि यह उन्हीं अपवादों में से एक है। सीने की मशीन के पीछे प्रेम है। व्यक्ति सब से पहिले विचारणीय है व्यक्तिगत परिश्रम की रक्षा और मानवीय ईमानदारी होनी चाहिये लोभ नहीं। उदाहरणार्थ—इस तरह मैं मुड़े तकवे को सीधा करने के लिये मशीन का किसी भी दिन स्वागत कर सकता हूँ। इससे लोहारों का तकुवा बनाना न बन्द होगा जो इसे बनाते रहेंगे। परन्तु जब तकुवा खराब हो जायगा, प्रत्येक सूत कातने वाला इसको सीधा करने के लिये मशीन रख सकता है। इस लिये लोभ की जगह प्रेम रख दीजिये और सब ठीक हो जायगा।

रामचन्द्रन प्रत्यक्ष रूप में इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने समझ रखा था कि गान्धी जी सारी मशीनों के विरुद्ध हैं और उसने समझा था कि यह ठीक भी है। इससे वह इस विषय के मूल में जाना चाहता था। परन्तु इस समय देरी हो रही थी और उसे कितने ही प्रश्न पूछने थे। गान्धी जी ने मुस्कराते हुये उससे कहा—"मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने को तैयार हूं। तुम जो प्रश्न चाहते हो इस समय पूछ सकते हो। मुझे इनसे तनिक भी थकान नहीं होती। गाड़ी छुटने की चिन्ता न करो।

विवाह

रामचन्द्रन के प्रश्नों की सूची अभी खतम नहीं हुई थी। आश्वासन पाकर साहस संचित किया और विवाह प्रथा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछा।

रामचन्द्रन ने कहा—"तीसरा प्रश्न जो मैं आपसे पूछना चाहता हूं, वह यह कि क्या आप विवाह की व्यवस्था के विरुद्ध हैं?"

बापू ने कहा—"इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें मैं आगे चलकर

दूंगा। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य मोक्ष है। हिन्दू होने के कारण मैं विश्वास कर सकता हूँ कि मोक्ष शरीर के बन्धनों का तोड़ कर परमात्मा में एकाकार होकर आवागमन से मुक्त होता है। इस ऊँचे आदर्श के प्राप्त करने में विवाह एक बाधा है। यह शरीर के बन्धनों से और भी दृढ़ कर है। कौमार्य एक बड़ा सहायक है, यह जीवन को ईश्वर में पूर्णतया समर्पित कर देने में सहायता करता है। अपनी जाति की वृद्धि के सिवा विवाह का और क्या उद्देश्य है? और फिर इसके समर्थन की क्या जरूरत? यह तो अपना प्रचार स्वयं करता है। इसे अपनी वृद्धि की उन्नति के लिए किसी और की आवश्यकता नहीं।

"परन्तु क्या आपको कौमार्य का प्रचार करना चाहिये और इसे प्रत्येक के लिए उपदेश देना चाहिए।"

गान्धी जी ने कहा—"हां, तुम्हें भय है कि सृष्टि का अन्त हो जायगा? नहीं, चरम तर्क से यह परिणाम निकलता है कि मानव-जाति का अन्त न होगा, बल्कि यह इससे ऊँचे धरातल पर पहुँच जायगी।"

"परन्तु क्या एक कलाकार, कवि या तेजस्वी व्यक्ति अपने बच्चे में अपनी तेजस्विता न छोड़ जायगा।"

बापू ने जोर देते हुए कहा—"कदापि नहीं, वह बच्चे वाला की अपेक्षा कौमार्य में अधिक शिष्य रख सकेगा, और उन शिष्यों द्वारा वह संसार को एक मार्ग से अपनी सारी देन सौंप सकेगा। जो दूसरी नहीं हो सकता। यह लगन के साथ आत्मा की शादी होगी, वंश उसके शिष्य होंगे। जो वंश वृद्धि से भी पहिले। नहीं, विवाह को अपनी चिन्ता करने के लिए छोड़ना पड़ेगा। विवाह का परिणाम वृद्धि नहीं। परन्तु पुनरावृत्ति है क्योंकि शादी में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग वासना का है।

रामचन्द्रन ने कहा—"श्री एन्ड्रूज आपका कौमार्य पर यह नोट देना पसन्द नहीं करते।

गान्धी जी ने कहा—"हां यह मैं जानता हूँ प्रोटैस्टैंटिज्म (ईसाई धर्म का एक अंग) की देन है। प्रोटैस्टैंटिज्म ने कितनी अच्छी चीजें दी हैं। परन्तु इसकी कुछ बुराइयों में यह भी एक है कि उसने कौमार्य को बुरा बताया है।"

रामचन्द्रन ने पुनः कहा -'यह इसका कारण था उस धर्म को उन बुराइयों से लड़ना पड़ा था जिसमें उस समय पादरी स्वयं डूबे हुये थे।"

बापू ने कहा—"परन्तु यह सब कौमार्य की बुराई के कारण न था, यह कौमार्य ही है जिसने कैथालिक धर्म को आज के दिन तक हरा भरा रक्खा है।

देश, नरेश और ईश्वर के प्रति

मैं रेल द्वारा सफर कर रहा था, उसी समय कुछ लड़कों से मुलाकात हुई, जो अपने 'यूनीफार्म' में थे। मैंने उनसे पूछा कि उनके 'यूनीफार्म' का क्या मकसद था। मुझे यह भी मालूम हुआ कि उनके यूनीफार्म' के कपड़े विदेशी थे या ऐसे थे जो विदेशी सूतों से तैयार किये गये थे। वे जबाब दिये कि उनका वस्त्र 'बालचर सूचक' था। मेरी शंका वे अपने इस उत्तर से दूर किये। मुझे यह जानने की प्रबल इच्छा थी कि वे बालचर बनकर किस कर्त्तव्य का पालन करते थे उनका जवाब था कि वे देश, नरेश और ईश्वर के सेवक थे। मैंने पूछा कि तुम्हारा नरेश कौन है? वे बतलाये कि जार्ज। फिर वे मुझसे प्रश्न किये कि 'जालियां वाला' की क्या घटना है? यदि आप वहाँ १३ अप्रैल सन् १९१९

ई० को होते और 'जनरल डायर' आपको अपने देशवासियों के ऊपर गोली चलाने का हुक्म देता तो आप क्या करते, मैंने उत्तर दिया कि मैं उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता। इस पर उनकी दलील थी कि 'जनरल डायर' तो बादशाह का प्रतिनिधि था। मैंने जवाब दिया कि वह हिंसा का पोषक है। मुझे उससे कोई सम्बन्ध नहीं। मैंने उन्हें यह भी बतलाया कि 'डायर' बादशाह की हिंसक भावना को नहीं हटा सकता और बादशाह अँग्रेजी राज्य का केवल छाया मात्र है। कोई भी भारतीय ऐसी दशा में राजभक्त नहीं हो सकता। मुख्य करके ऐसे राजा का जिसकी शासन प्रणाली ऐसी हो। क्योंकि ऐसा करने से वे ईश्वर-भक्त नहीं बन सकते। एक ऐसा राज्य जो अपनी गलतियों को नहीं सुधारे और कुटिल-नीति से काम ले कभी भी ईश्वर के नियमों पर आधारित नहीं हो सकता। ऐसे राज्य की भक्ति ईश्वर की अभक्ति है। लड़का इस उत्तर से घबड़ा गया।

मैंने फिर आगे कहा—'मान लो कि हम लोगों का मुल्क अपने को समृद्ध बनाने के लिए ईश्वर की सत्ता को भूल जाय और दूसरे लोगों की सम्पत्ति अपहरण करे, व्यवसायको बढ़ानेके लिये मादक द्रव्यों का क्रय-विक्रय करके अपने पराक्रम और प्रतिष्ठा को बढ़ावे तो ऐसी दशा में हम लोग किस प्रकार से ईश्वर-भक्त और देश-भक्त दोनों ही बन सकतें हैं। इस लिए मैं तुम्हें यह सलाह दूंगा कि तुम्हें ईश्वर की भक्ति ही की प्रतिज्ञा करनी चाहिये और किसी की भी नहीं।"

उसके और भी साथी थे जो हमारी इन बातों में काफी दिल-चस्पी रखते थे। उनका प्रधान भी मेरे पास आया, उसके सामने मैंने इस दलील को फिर दुहराया और उससे यह अनुरोध किया

कि वह स्वयं अपनी आत्मा से पूछे और उस पर विचार कर उन युवकों को जिन्हें वह पथ प्रदर्शन करा रहा था, उसके अनुसार ही उन्हें शिक्षा दीक्षा दे। यह विषय मुश्किल से हो पाया था. तब तक कि ट्रेन स्टेशन से रवाना हो गई, मुझे उन बच्चों के ऊपर दया आई और असहयोग के आन्दोलन की इच्छा अधिकाधिक प्रबल हुई। मनुष्य मात्र के लिए एक ही धर्म हो सकता है, जो उन्हें ईश्वर भक्त सिद्ध कर सकता है, जिस धर्म में यदि स्वार्थ और कुभावना न मिली हो। वह देश, नरेश, महेश तथा मनुष्य मात्र के लिए भक्तिप्रद सिद्ध हो सकता है लेकिन ऐसे धर्म का अभाव है

मुझे आशा है कि देश के नवयुवक तथा उनके शिक्षक अपनी गलतियों को महसूस करते हुए उनका सुधार करेंगे। नवयुवकों के अन्दर ऐसे धर्म की भावना भरना, जिसके अन्दर कोई सचाई न हो साधारण अपराध नहीं।

विद्यार्थी और चारित्र्य

पंजाब के एक भूतपूर्व स्कूल इन्सपेक्टर लिखते हैं:—

"महासभा के पिछले अधिवेशन के बाद से हमारे प्रान्त के विद्यार्थियों में जो जागृति फैली है, उसकी ओर आपका ध्यान गया होगा। नवजवानों के दिलों में आज एक नये ही ढंग की आग सुलग रही है। इस नवचेतन के प्रणेता खासकर आप ही हैं और आखिरकार यह जो रूप धारण करेगा, उसके लिए भी आप ही जिम्मेदार होंगे। इसलिए आपकी राय जानने की गरज से इस बारे में मैं नीचे लिखे दो सवाल आपके सामने पेश करना चाहता हूँ।

१—अमन-कानून की समुचित मर्यादा के भीतर रहकर उचित अवसर पर विद्यार्थियों का मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करना, अथवा स्वराज्य के लिए अपनी लगन का परिचय कराना मेरी नजर में तनिक भी बुरा नहीं है। पर जब वे समय, असमय हर वक्त, द्वेषपूर्ण क्रान्ति के नारे बुलन्द किया करते हैं, तो उसमें मुझे स्पष्ट हिंसा नजर आती है। 'डाउन डाउन विथ दी यूनियन जैक'। वगैरा नारे आपको इसी किस्म के नहीं लगते ?

२—हमारे मदरसों और कालेजों में विद्यार्थियों के चारित्र्य-गठन के लिए कुछ भी नहीं किया जाता। क्या आप विद्यार्थियों को यह सलाह देंगे कि वे अपने विद्यार्थी धर्म को बिलकुल भुला कर सभ्यता और अनुशासन को वालायेताक रख दें, तथा क्षणिक जोश में आकर अपनी मर्यादा को भूल जांय ? क्या नवजवानों के चारित्र्य का संगठन करना उनके तमाम हितचिन्तकों का मुख्य कर्त्तव्य नहीं है ?"

इन नारों या पुकारों के बारे में तो मैं 'यंग इंडिया' के अभी हाल के एक पिछले अंक में विस्तार के साथ लिख चुका हूं। मैं पूरी तरह मानता हूँ कि 'डाउन विथ दी यूनियन जैक !' के नारे में हिंसा की गन्ध है। इसी तरह के और जो नारे आजकल चल पड़े हैं, वे भी अहिंसा की दृष्टि में दोष-पूर्ण मालूम होते हैं। अहिंसा को कार्य नीति मानने वाले भी उनका उपयोग नहीं कर सकते। इससे कोई लाभ नहीं, उलटे नुकसान हो सकता है। संयमी नवजवानों के मुँह में ये नारे शोभा नहीं देते, सत्याग्रह के तो ये विरुद्ध हैं ही।

अब हम इन पत्र लेखक के दूसरे प्रश्न पर विचार करेंगे। मालूम होता है कि वह इस बात को भूल गये हैं कि अधिकारियों ने जैसा बोया है, वैसा ही आज वे काट भी रहे हैं। हमारे

विद्यार्थियों में आज जिन-जिन बातों की कमी पाई जाती है, उन सब बातों के लिए मौजूदा शिक्षा-प्रणाली ही जिम्मेदार है। मेरी सलाह या सहायता अब काम नहीं दे सकती। अब तो शिक्षक विद्यार्थियों से मिल कर उन्हें आशीर्वाद दें और स्वयं स्वराज्य के लिये उनके रहनुमा बनें. तभी दोनों एक होकर स्वराज्य के लिए आगे बढ़ सकते हैं। विद्यार्थियों से हमारे देश का दर्दनाक इतिहास छिपा नहीं है। दूसरे देशों ने किस तरह अपने लिए स्वतन्त्रता प्राप्त की है यह भी वे जानते हैं। अब उन्हें अपने देश की आज़ादी की जंग में शामिल होने से रोक सकना मुमकिन नहीं। अगर उन्हें अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए ठीक रास्ते से नहीं ले जाया गया, तो उनकी अपरिपक्व और एकाकी बुद्धि जो मार्ग उन्हें सुझायेगी वे वैसा ही काम करेंगे। कुछ भी क्यों न हो, मैं उन्हें अपना मार्ग बता चुका हूँ और अपना फ़र्ज़ अदा कर चुका हूँ। अगर नवजवानों को इस नई जागृति का कारण मैं ही हूँ, तो मेरे लिए यह हर्ष की बात है। मेरे कार्यक्रम का एक हेतु यह भी है कि उसके द्वारा मैं उनके इस उत्साह को सच्ची राह पर ले जाऊँ। इतना होते हुए भी अगर कोई बुराई पैदा हो जाय तो उसकी जिम्मेदारी मेरे सिर पर नहीं डाली जा सकती।

अमृतसर के अभी हाल के बमकाण्ड से होने वाले अत्याचार के लिए मुझ से बढ़ कर दुःख शायद ही किसी को हो सके। सरदार प्रतापसिंह के समान सर्वथा निर्दोष नवजवान की आकस्मिक मृत्यु से बढ़ कर करुणाजनक और क्या हो सकता है। क्योंकि बम फेंकने वाले का इरादा उन्हें मारने का नहीं था। हमारे विद्यार्थियों की जिस चारित्र्य की कमी का शिक्षा-विभाग के उक्त निरीक्षक ने जिक्र किया है, ऐसे अत्याचार अवश्य ही उनके सबूत कहे जा सकते हैं। लेकिन शायद यहाँ चारित्र्य शब्द का प्रयोग करना बहुत उचित न हो और अगर बम फेंकने वाले का इरादा

सचमुच ही खालसा कालेज के आचार्य को मारने का था, तो यह हम में फैले हुए एक भयंकर और गम्भीर रोग का सूचक है। आज हमारा शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच सजीव सम्बन्ध नहीं है। सरकारी और सरकार द्वारा स्वीकृत शिक्षा-संस्थाओं के शिक्षकों में वफ़ादारी की भावना हो या न हो, वे अपने आपको वफ़ादार साबित करने और दूसरों को वफ़ादार बनने की सिखावन देने को अपना कर्त्तव्य सा मान बैठे हैं। पर अब विद्यार्थियों में सरकार के प्रति स्वामि-भक्ति या वफ़ादारी के कोई भाव ही नही रह गये हैं; वे अधीर हो उठे हैं, और हमारी इस अधीरता के कारण अब वे बेकाबू हो गये हैं। यही वजह है कि अक्सर उनकी शक्ति का विपरीत दिशा में व्यय होता है। लेकिन इन सब घटनाओं के कारण मैं यह नहीं महसूस करता कि मुझे अपनी लड़ाई बन्द कर देनी चाहिये उलटे मुझे तो यही एक मार्ग साफ़ साफ दिखाई पड़ रहा है कि इन दोनों पक्षों की हिंसा के दावानल से जूझते हुए या तो उस पर विजय प्राप्त की जाय या स्वयं उसमें जल कर खाक हो जाया जाय।



विद्यार्थियों का धर्म

लाहौर से एक भाई बड़ी बढ़िया हिन्दी में एक करुणाजनक पत्र लिखते हैं। मैं उसका सारांश ही नीचे देता हूँः—

"हिन्दू-मुस्लिम झगड़े और काउन्सिलों के चुनावों के कामों ने असहयोगी छात्रों का मन डाँवाडोल कर दिया है। देश के लिये उन्होंने बहुत त्याग किया है। उसकी सेवा ही उनका मूल मन्त्र है। आज उनका कोई पथ-प्रदर्शक नहीं है। काउन्सिलों के नाम पर वे उछल नहीं सकते, हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों में भी वे पड़ना नहीं चाहते, इस लिए वे उद्देश्यहीन होकर यों ही, बल्कि उससे भी बुरा जीवन बिता रहे हैं क्या उनकी जीवन तरणी को ऐसे ही बहने दिया जायगा? कृपा कर यह भी याद रखिये कि इस परिणाम के लिए अन्त में आपही जिम्मेदार ठहरेंगे। यद्यपि नाम मात्र के लिए उन्हों ने महासभा की ही आज्ञा मानी थी किन्तु असल में उन्हों ने आपके ही हुक्म की तामील की थी। अब क्या उन्हें रास्ता दिखाना आपका कर्तव्य नहीं है?"

आदमी नाँद भले ही बना लेवे, लेकिन क्या बेमन घोड़े को भी वह खींच सकता है? मुझे इन भोले नवयुवकों से सहानुभूति तो आवश्य है, लेकिन उनकी इस अव्यवस्थितता के लिये मैं अपने को दोष नही दे सकता हूँ। यदि उन्हों ने मेरी आवाज सुनी थी तो अब भी उसे सुनने से रोकता कौन है? जिस किसी को सुनने की परवाह होवे, उसे मैं चरखे का मन्त्र साधने को अनिश्चित स्वर में नहीं कहता, लेकिन दरअसल बात तो यह है कि १९२०

में उन्हों ने मेरी बात नहीं सुनी थी, (और यह भी था) किन्तु महासभा की बात सुनी थी। बल्कि उससे भी सही बात यह होगी कि उन्हों ने अपनी ही अन्तर्ध्वनि सुनी थी। कांग्रेस का हुक्म उसी की प्रतिच्छाया थी। निषेधात्मक कार्यक्रम के लिए वे तैयार थे। कांग्रेस के कार्यक्रम का रचनात्मक भाग चर्खा, जो अभी भी कांग्रेस का हुक्म है, उनको कुछ जंचता हुआ सा नहीं मालूम होता है। अगर बात ऐसी ही है तो फिर कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक और हिस्सा बचा हुआ है—अछूतों की सेवा। यहां भी स्वदेश-सेवा के लिये मरने वाले सभी विद्यार्थियों के लिये जरूरत से ज्यादा काम है। वे जान लेवें कि वे सभी, जो समाज की नैतिक दृष्टि ऊंचा करना चाहते हैं, या जो बेकारी के रोग में ग्रस्त करोड़ों आदमियों को काम देते हैं, स्वराज्य के सच्चे बनाने वाले हैं। विशुद्ध राजनीतिक कार्य को भी वे सहज बना देंगे। इस रचनात्मक कार्य से विद्यार्थियो के अच्छे से अच्छे गुण प्रकट होंगे। स्नातकों और उपस्नातकों—सब के लिए यह उपयुक्त कार्य है।

लेकिन यह भी सम्भव है कि चर्खा या अछूतोद्धार कोई भी उनके लिये जोश दिलाने वाले काम न हों। ऐसी हालत में उन्हें जान लेना चाहिये कि वैद्य की हैसियत से मैं बेकार हूँ। मेरे पास गिने गिनाये नुस्खे हैं। मैं तो मानता हूँ कि सभी बीमारियों की जड़ एक ही है और इस लिए उनका इलाज भी एक ही हो सकता है। मगर वैद्य को क्या उसके पास दवाओं की कमी के लिये

दोष दिया जायगा और सो भी तब जब कि वह यहा बात पुकार पुकार कर कह रहा हो ?

जिन विद्यार्थियों के विषय में ये सज्जन लिखते हैं. उन में तो अपने जीवन का रास्ता खोज निकाल ने लायक शक्ति होनी ही चाहिये। स्वावलम्बन का ही नाम स्वराज्य है।

विद्यार्थियों के प्रति

गुजरात महाविद्यालय के समारंभ के अवसर पर गांधी जी ने विद्यार्थियों को जो भाषण दिया था उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

इस छुट्टी में तुमने विद्यापीठ के ध्येय पढ़े होंगे। उन पर विचार किया होगा, उनका मनन किया होगा, तो कितनी वस्तुएं तुम्हारी समझ में आ गई होनी चाहिये। छुट्टी का उपयोग अगर इस तरह तुमने न किया होगा तो जैसे तुम गए, वैसे ही आए हो।

मैंने तो महाविद्यालय में कई बार कहा कि तुम संख्यावल की जरा भी परवाह न करो। मैं यह कहना नहीं चाहता कि अगर संख्या बल हो तो वह हमें अप्रिय होगा। किन्तु वह न हो तो हम निराश न बन जांय। ऐसा न मान लेवें कि अब तो सारा संख्यावल चला गया, हाथमें से बाजी जाती रही। हम कम हों अथवा अधिक मगर हमारा बल तो सिद्धान्तों के स्वीकार में और मनुष्य की शक्ति के अनुसार उनके पालन सिद्धान्तों के स्वीकार में और

मनुष्य की शक्ति के अनुसार उनके पालन में है। ऐसे विद्यार्थी कम से कम हों, तो भी हमें विद्यापीठ से जो काम लेना है, और वह काम मुक्ति है–अन्तिम मुक्ति नहीं किन्तु स्वराज रूपी मुक्ति जिस स्वराज्य के लिये विद्यापीठ स्थापित हुई है, वह जरूर होवे। हम अगर झूठे होंगे तो स्वराज्य मिलने से रहा। अभी हाल में जो फेरफार हुए हैं और अब तुम जिन्हें देखोगे वे तो हम डरते-डरते कर सके हैं कि वह कहीं तुम्हारी शक्ति के बाहर न हो जांय यह कैसी दयावनी स्थिति है। इस में न तो तुम्हारी शोभा है और न हमारी। होना तो यह चाहिये कि तुम अपने अध्यापकों और संचालकों को यह अभय दान दे दो कि हम इन सिद्धान्तों के पालन में जरा भी कच्चाई न रखेंगे। यह अभयदान नहीं है, उसी की याचना करने मैं आया हूं। सत्य के आरम्भ से ही तुम अध्यापक वर्ग को निश्चित करो तो काम चमक उठेगा। तुम्हारे काम में असत्य का जरा स्पर्श नहीं होना चाहिये। तुम विद्यापीठ को तभी शोभित कर सकोगे जब अपने ही मन को, अध्यापकों को, गुरुजनों को और भारतवर्ष को नहीं ठगोगे। अध्यापकों से हर एक बात का खुलासा कह सकते हो उनका धर्म है, तुम्हारी हर एक कठिनाईको सुलझाना। यह न करके अगर तुम जैसे तैसे बैठे रहोगे तो विद्यापीठ की व्यवस्था बेसुरी चलेगी। विद्यापीठ का काम तो इतनी अच्छी तरह चलना चाहिये कि वह संगीत के समान लगे। तंबूरे के पीछे जो संगीत लगा हुआ है, वह स्थूल है, सच्चा संगीत तो सुजीवन है, और जिसका जीवन सुजीवन है वही सच्चा संगीत जानता है, यह जीवन संगीत बालक भी जानता

है अगर मां बाप ने उसे ठीक रास्ते चलाया हो तो। बालक के पास केवल रोने की ही वाचा है मगर उनमें भी जो शूरमा होता है वह शोभता है। विद्यार्थियों में बच्चों के ही समान माधुर्य होना चाहिये। अगर तुम सत्य का आचरण करोगे तो यह स्थिति लानी सहज है। विद्यार्थी अगर सत्य का आचरण करने वाले हों तो उनके द्वारा हिन्दुस्तान का स्वराज्य लिया जा सकता है। यह बात विद्यापीठ सिद्धान्त में ही है कि अहिंसा और सत्य के ही रास्ते हमें स्वराज्य लेना है, इस लिए इसे सिद्ध करना भी नहीं रह जाता है। जिसे इसमें शंका हो, उसके लिए यहाँ स्थान नहीं हैं। अथवा जिसे ऐसी शंका हो उसे पहले ही अवसर पर उसका निवारण कर लेना चाहिये।

सरकारी शाला और हमारी शाला का भेद समझना चाहिये। हमारे कई एक विद्यार्थी जेल गये और दूसरे जायेंगे। वे विद्यापीठ के भूषण हैं। क्या सरकारी शालाओं के विद्यार्थियों की भी मजाल है कि वे वल्लभभाई की मदद करने के बाद अपने शिक्षक को धोखा दिये बिना कालेज में रह सकें? पीछे उन्हें चाहे जितना ज्ञान मिलता रहे, मगर वह किस काम का? सत्व हर लेने के बाद अगर ज्ञान दिया ही तो क्या हुआ? खोटे सिक्के की क्या कीमत? उसे काम में लाने वाला तो सजा का पात्र होता है। सरकारी शालाओं के विद्यार्थियों की ऐसी ही बुरी स्थिति है। हमारे यहां सत्व तो कायम है ही और इतना ही नहीं बल्कि इसमें वृद्धि होती है।

एक दूसरा भेद भी ध्यान में रखना चाहिये। मैं अनेक वार वतला गया हूं कि सरकारी कालेज में दी जाने वाली शिक्षा के साथ तुम्हारी शिक्षा का मिलना नहीं हो सकता। इस जंजाल में पड़ोगे तो मारे जाओगे, हम उसकी वरावरी नहीं कर सकते। वहां जिस तरह अंग्रेजी पढ़ाई जाती है, उस तरह हमें नहीं पढ़ानी है। किन्तु साहित्य का सूक्ष्म ज्ञान हमें अपनी ही भाषा के द्वारा देना है। हमें करना यह है कि हमारी अपनी भाषा का विस्तार हो, वह शोभे उस में गहरे से गहरे विचार प्रदर्शित हो सकें। हिन्दी या गुजराती या हमारी अपनी कोई प्रान्तीय मातृ भाषा बोलते समय हमें अंग्रेजी शब्द या वाक्य जो बोलने पड़ते हैं, यह वहुत ही बुरी और खतरनाक स्थिति है। जगत के दूसरे किसी देश की स्थिति ऐसी नहीं है अंगरेजी साहित्य का जितना ज्ञान आवश्यक होगा उतना हम लेंगे। और अव जो ज्ञान लेंगे, हम अपनी ही भाषा–या पर गुजराती–के जरिये लेंगे। विज्ञान भी अपनी ही भाषा के जरिये पढ़ेंगे। अगर पारिभाषिक शब्द नहीं वना सके तो उन्हें अंगरेजी से लेंगे, मगर उनकी व्याख्या तो अपनी ही भाषा में करेंगे। इससे हमारी भाषा जोरदार वनेगी। भाषा के जो अलंकार हमें काम में लाने होंगे, वे हमारी जीभ पर हमारे कलम से उतरेंगे। आज की वेहूदी दशा "वलहारे के हर नाम" वारडोली वालों को परमात्मा ने आप ही कष्ट सहने का 'गाण्डीव' दिया है, उसके प्रभाव से लोग युग-युग का आलस्य छोड़ उठ रहे हैं। वारडोली के किसान हिन्दुस्तान को दिखला रहे

हैं कि वे निर्बल भले ही हों, मगर अपने विश्वासों के लिये कष्ट सहन करने का साहस रखते हैं।

अब इतने दिनों बाद सत्याग्रह को अवैध कहने का मौका ही नहीं रहा। यह तो तभी अवैध होगा, जब सत्य और उसका साथी तपश्चर्या अवैध बन जायँगे लार्ड हार्डिञ्ज ने द० अफ्रीका के सत्याग्रहियों को आशीर्वाद दिया था और उसके सर्व शक्तिमान यूनियन सरकार को भी झुकना ही पड़ा था। उस समय के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड और बिहार के गवर्नर सर ऐडवर्ड गेट ने इसकी वैधता और प्रभावकारिता मानी थी और चम्पारन की रैयतों की शिकायतों की जांच के लिए एक स्वतन्त्र समिति बैठाई थी, जिसके फल-स्वरूप सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ी और सौ वर्ष का पुराना अन्याय दूर हुआ। फिर यह खेड़ा में भी स्वीकार किया गया और जितना अधूरा क्यों न हो, मगर सरकारी अफसरों और आन्दोलकों तथा प्रजा के नेताओं के बीच समझौता हुआ ही था। मध्य-प्रांत के तात्कालिक गवर्नर ने नागपुर झण्डा सत्याग्रहियों से समझौता करना ही ठीक समझा, कैदियों को छोड़ दिया और सत्याग्रहियों के हक को स्वीकार कर लिया गया। आखिर और तो और बम्बई के इन्हीं गवर्नर सर लेस्लीविल्सन ने भी शुरू-शुरू में जब तक कि वे संसार के सब से अधिक योग्य अफसरों के संसर्ग से अछूते थे, बोरसद सत्याग्रह में बोरसद वालों को राहत दी थी।

मैं चाहता हूं कि गवर्नर साहब और श्रीयुत मुन्शी दोनों ही पिछले चौदह वर्षों की इन घटनाओं की गांठ बाँध लेवें। अब

अचानक आज बारडोली के सत्याग्रह को अवैध घोषित नहीं किया जा सकता है। हकीकत तो यह है कि सरकार के पास कोई दलील नहीं है। वह अपनी लगान नीति का विरोध खुली जांच में होने देना नहीं चाहती। अगर बारडोली वाले अखीरी आंच को सह गये, तो या तो खुली जांच वे करायेंगे ही या इजाफा लगान मन्सूख हो जायगा। अपनी शिकायत के लिए, निष्पक्ष अदालत के सामने सुनवाई का दावा तो उनका निर्विवाद है।

————

विद्यार्थियों के लिये—

'हरिजन' के एक पिछले अंक में आपने एक युवक की कठिनाई शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्ध में मैं आपको नम्रता पूर्वक लिख रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थी के साथ न्याय नहीं किया। उसके सवाल का आपने जो जवाब दिया है, वह सन्दिग्ध और सामान्य रूप का है। आपने विद्यार्थियों से यह कहा है कि, वे झूठी प्रतिष्ठा का खयाल छोड़ कर साधारण मजदूरों की तरह बन जायं यह सब सिद्धांत की बात आदमी को बहुत कुछ रास्ता नहीं सुझाती और न आप जैसे बहुत ही व्यवहारिक आदमी को यह बात शोभा देती है। इस प्रश्न पर आप विस्तार के साथ विचार करने की कृपा करें और नीचे मैं जो उदाहरण दे रहा हूँ उसमें क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसीलवार व्यावहारिक उत्तर दें।

मैं लखनऊ यूनीवर्सिटी में एम० ए० का विद्यार्थी हूँ। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विषय है। मेरी उम्र करीव २१ साल की है। मैं विद्या का प्रेमी हूं और मेरी यह इच्छा है कि जीवन में जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूं, उतनी करूं। एकाध महीने में मैं एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे दूंगा और मेरी पढ़ाई पूरी हो जायगी। इसके बाद मुझे "जीवन में प्रवेश" करना पड़ेगा। मुझे अपनी पत्नी के अलावा चार भाइयों, (मुझ से सव छोटे हैं और एक की शादी भी हो चुकी है) दो वहिनों और माता पिता का पोषण करना है। हमारे पास कोई पूंजी का साधन नहीं है। जमीन है, पर वहुत ही थोड़ी।

अपने भाई वहिनों की शिक्षा के लिये मैं, क्या करूँ ? फिर वहिनों की शादी भी तो जल्दी करनी है। इन सव के अलावा घर भर के लिए अन्न और वस्त्र का खर्चा कहां से लाकर जुटाऊँगा ?

मुझे मौज व टीमटाम से रहने का मोह नहीं है। मैं और मेरे आश्रित जन अच्छा व निरोगी जीवन विता सकें और वक्त जरूरत का काम अच्छी तरह चलता जाय, तो इतने से मुझे सन्तोष है। दोनों समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक ठीक कपड़े मिलते जांय वस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसे के वारे में मैं ईमानदारी के साथ रहना चाहता हूँ। भारी सूद लेकर या शरीर वेच कर मुझे रोजी नहीं कमानी है। देश सेवा

करने की भी मुझे इच्छा है अपने उस लेख में आपने जो शर्तें रखी हैं, उन्हें पूरा करने के लिये मैं तैयार हूँ।

पर, मुझे यह नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूँ? शुरूआत कहाँ और कैसे की जाय? शिक्षा मुझे केवल विद्यार्थी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मैं सूत कातने की सोच रहा हूँ, पर कातना सीखूँ कैसे और उस सूत का क्या होगा, इसका भी मुझे पता नहीं।

जिन परिस्थितियों में मैं पड़ा हुआ हूँ, उनमें आप मुझे क्या सन्तान-नियमन के कृत्रिम साधन काम में लाने की सलाह देंगे? संयम और ब्रह्मचर्य में मेरा विश्वास है पर ब्रह्मचारी बनने में मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण संयम की सिद्धि प्राप्त होने के पूर्व मैं कृत्रिम साधनों का उपयोग नहीं करूँगा, तो मेरी स्त्री के कई बच्चे पैदा हो जायँगे और इस तरह बैठे बिठाये आर्थिक बरबादी मोल ले लूंगा, और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्री से, उसके स्वाभाविक भावना-विकास में, कड़े संयम का पालन कराना बिल्कुल ही उचित नहीं। आखिरकार साधारण स्त्री पुरुषों के जीवन में विषय भोग के लिये तो स्थान है ही। मैं उसमें अपवाद रूप नहीं हूँ। और मेरी स्त्री को, आपके 'ब्रह्मचर्य', 'विषय सेवन के खतरे' आदि विषयों के महत्वपूर्ण लेख पढ़ने व समझने का मौक़ा नहीं मिला, इसलिए वह इससे भी कम तैयार है।

मुझे अफ़सोस है कि पत्र ज्यादा लम्बा हो गया है, पर मैं संक्षेप में लिखकर इतनी स्पष्टता के साथ अपने विचार हाज़िर

नहीं कर सकता था। इस पत्र का आपको जो उपयोग करना हो, वह आप खुशी से कर सकते हैं।"

यह पत्र मुझे फरवरी के अन्त में मिला था पर जवाब मैं इसका अब लिख रहा हूँ। इसमें ऐसे महत्व के प्रश्न उठाये गये हैं कि हर एक की चर्चा के लिये इस अखबार के दो-दो कालम चाहिएँ, पर मैं संक्षेप में ही जवाब दूंगा।

इस विद्यार्थी ने जो कठिनाइयाँ बताई हैं, वे देखने में गम्भीर मालूम होती हैं पर वे उसकी खुद की पैदा की हुई हैं। इन कठिनाइयों के नाम निर्देष करने से ही जान लेना चाहिये कि इस विद्यार्थी की और अपने देश की शिक्षा-पद्धति की स्थिति कितनी खोटी है? यह पद्धति शिक्षा को केवल बाज़ारू, बेचकर पैसा पैदा करने की चीज़ बना देती है। मेरी दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य बहुत ऊँचा और पवित्र है। यह विद्यार्थी अगर अपने को करोड़ों आदमियों में से एक माने तो वह देखेगा कि वह अपनी डिग्री से जो आशा रखता है, वह करोड़ों युवक और युवतियों से पूरी नहीं हो सकती अपने पत्र में उसने जिन सम्बन्धियों का ज़िक्र किया है, उनकी परवरिश के लिये वह क्यों जवाबदार बने? बड़ी उम्र के आदमी अच्छे मजबूत शरीर के हों, तो वे अपनी आजीविका के लिये मेहनत-मजूरी क्यों न करें? एक उद्योगी मधुमक्खी के पीछे—भले ही वह नर हो, बहुत सी आलसी मधुमक्खियों का रखना ग़लत तरीका है।

इस विद्यार्थी की उलझन का इलाज, उसने जो बहुत सी चीजें सीखी हैं उनके भूल जाने में ही है, उसे शिक्षा सम्बन्धी अपने;

विचार बदल देने चाहिए। अपनी बहिनों को वह ऐसी शिक्षा क्यों दे जिस पर इतना ज्यादा पैसा खर्च करना पड़े ? वे कोई उद्योग-धन्धा वैज्ञानिक रीति से सीख कर अपनी बुद्धि का विकास कर सकती हैं। जिस क्षण वे ऐसा करेंगी, उसी क्षण वे शरीर के विकास के साथ मन का विकास कर लेंगी और अगर वह अपने को समाज का शोषण करने वाली नहीं, किन्तु सेविकायें समझना सीखेंगी, तो उनके हृदय का अर्थात् आत्मा का विकास होगा और वे अपने भाई के साथ आजीविका के अर्थ काम करने में समान हिस्सा लेंगी।

पत्र लिखने वाले विद्यार्थी ने अपनी बहिनों के व्याह का उल्लेख किया है। उसकी भी यहां चर्चा कर लूँ। शादी 'जल्दी' होगी ऐसा लिखने का क्या अर्थ है यह मैं नहीं जानता। बीस साल की उम्र न हो जाय तब तक उनकी शादी करने की जरूरत ही नहीं और अगर वह अपने जीवन का सारा क्रम बदल लेगा तो वह अपनी बहिनों को अपना-अपना वर खुद ढूँढ लेने देगा। और विवाह-संस्कार में पाँच रुपये से अधिक खर्च होना ही नहीं चाहिये। मैं ऐसे कितने ही विवाहों में उपस्थित रहा हूं और उनमें उन लड़कियों के पति या बड़े-बूढ़े खासी अच्छी स्थिति के ग्रेजुएट थे।

कातना कहाँ और कैसे सीखा जा सकता है उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देख कर करुणा आती है। लखनऊ में वह प्रयत्न पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखाने वाले उसे

वहां कई युवक मिल सकते हैं, पर उसे अकेला कातना सीख कर बैठे रहने की जरूरत नहीं। हालांकि सूत कातना भी पूरे समय का धन्धा होता जा रहा है और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुषों को पर्याप्त आजीविका दे सकने वाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैंने जो कहा है उसके बाद बाकी का सब अर्थ विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब सन्तति नियमन के कृत्रिम साधनों के सम्बन्ध में यहां भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्री की बुद्धि को जिस तरह आंक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे तो जरा भी शङ्का नहीं कि अगर वह साधारण स्त्रियों की तरह है, तो पति के संयम के अनुकूल वह सहज ही हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मन से पूछ कर देखे कि उसके मन में पर्याप्त संयम है या नहीं ? मेरे पास जितने प्रमाण हैं, वे तो सब यही बताते हैं कि संयम-शक्ति का अभाव स्त्री की अपेक्षा पुरुष में ही अधिक होता है, पर इस विद्यार्थी को अपनी संयम रखने की शक्ति कम समझ कर उसे हिसाब में से निकाल देने की जरूरत नहीं। उसे बड़े कुटुम्ब की सम्भावना का मर्दानगी के साथ सामना करना चाहिए और उस परिवार के पालन-पोषण का अच्छे से अच्छा जरिया ढूँढ लेना चाहिये। उसे जानना चाहिये कि करोड़ों आदमियों को इन कृत्रिम साधनों का पता ही नहीं। इन साधनों को काम में लाने वालों की संख्या बहुत होगी तो कुछेक हजार की होगी। इन करोड़ों को इस बात का भय नहीं होता कि बच्चों का पालन वे किस तरह करेंगे, यद्यपि बच्चे वे सब मां बाप की इच्छा से पैदा

नहीं होते। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने कर्म के परिणाम का सामना करने से इनकार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनों को काम में लाते हैं, वे संयम का गुण नहीं सीख सकते। उन्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। कृत्रिम साधनों के साथ भोगा हुआ भोग बच्चों का आना तो रोकेगा, पर पुरुष और स्त्री दोनों की – स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अधिक जीवन-शक्ति को वह चूस लेगा। आसुरी वृत्ति के खिलाफ़ युद्ध करने से इनकार करना नामर्दी है। पत्र लेखक अगर अनचाहे बच्चों को रोकना चाहता है, तो उसके सामने एक मात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे संयम पालन करने का निश्चय कर चाहिये। सौ बार भी उसके प्रयत्न निष्फल जांय तो भी क्या? सच्चा आनन्द तो युद्ध करने में है, उसका परिणाम तो ईश्वर की कृपा से ही आता है।

विद्यार्थियों को सन्देश

गुजरात महाविद्यालय का भाषण: –

१९२१ कहाँ और कहाँ १९२६। इसे निराशा के उद्गार न मानियेगा। हमारा यह देश पीछे नहीं हट रहा है, हम भी पीछे नहीं हट रहे हैं। स्वराज्य पाँच साल आगे बढ़ा है इससे कोई इन्कार ही नहीं कर सकता। यदि कोई कहे कि १९२१ में स्वराज्य अभी मिला, अभी मिला, ऐसा मालूम हो रहा था, परन्तु आज तो क्या मालूम कितनी दूर हो गया है, तो उसकी यह निराशा

मिथ्या ही समझियेगा। शुभ प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं होता और मनुष्य की सफलता भी उसके शुभ प्रयत्न में ही है। परिणाम फल का स्वामी तो केवल एक ईश्वर ही है। संख्या बल पर तो केवल डरपोक लोग ही कूदा करते हैं। आत्मबल से बलवान तो अकेला ही रण में कूद पड़ता है इस विद्यापीठ में आत्मबल का विकास करने के लिये ही हम लोग इकट्ठे हुए हैं, फिर उसमें साथ देने वाला चाहे एक हो या अनेक। आत्मबल ही सच्चा बल है, और सब मिथ्या हैं। परन्तु यह निश्चय मानियेगा कि यह बल, तपश्चर्या, त्याग, दृढ़ता, श्रद्धा, और नम्रता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

इस विद्यालय का आरम्भ आत्म शुद्धि के बल पर किया गया है। अहिंसात्मक असहयोग उसी का स्वरूपमात्र है। असहयोग के 'अ' का अर्थ सरकारी शाला इ० का त्याग है। परन्तु जब तक हम अन्त्यजों के साथ सहयोग न करेंगे, प्रत्येक धर्म के मनुष्य दूसरे धर्म के मनुष्यों के साथ सहयोग न करेंगे, खादी और चर्खे को पवित्र स्थान देकर हिन्दुस्तान के करोड़ों मनुष्यों के साथ सहयोग न करेंगे, तब तक तो यह 'अ' निरर्थक ही रहेगा। जिसमें अहिंसा नहीं है, उसमें हिंसा अर्थात् द्वेष है। विधि के बिना निषेध ऐसा है, जैसा कि जीव के बिना देह। उसे तो अग्नि-संस्कार करना ही शोभा देगा।

सात लाख गाँवों में सात हजार रेलवे स्टेशन हैं। इन सात हजार गाँवों के लोगों से भी हमारा परिचय नहीं है। रेल से

दूर रहने वाले ग्रामवासियों का ख्याल तो हमें इतिहास पढ़ने पर ही हो सकता है। उनके साथ निर्मल सेवा-भाव-युक्त सम्बन्ध जोड़ने का एक मात्र साधन चर्खा है। इसे अब तक जो लोग नहीं समझ सके हैं, उनका इस राष्ट्रीय महाविद्यालय में रहना मैं निरर्थक ही समझूंगा। जिसमें हिन्दुस्तान के ग़रीबों का विचार नहीं किया हुआ होता, जिसमें उनके दारिद्र को दूर करने के साधनों की योजना नहीं की जाती है, उसमें राष्ट्रीयता नहीं है। प्रत्येक ग्राम वासी के साथ सरकार का सम्बन्ध लगान वसूल करने में ही समाया होता है। चरखे के द्वारा उनकी सेवा करके हम उनके साथ अपने सम्बन्ध का आरम्भ कर सकते हैं। परन्तु खादी पहनने में और चर्खा चलाने में ही उस सेवा की परिसमाप्ति नहीं होती है। चरखा तो उस सेवा का केन्द्र मात्र है। दूर के किसी गाँव में आगे की ओर किसी छुट्टियों के दिनों में जाकर आप रहेंगे, तो मेरे इन वचनों के सत्य को आप अनुभव करेंगे। लोगों को आप निस्तेज और भयभीत हुये देखेंगे। वहाँ आपको मकानों के भग्नावशेष ही दिखाई देंगे। वहाँ आपको पशुओं की स्थिति भी बड़ी दयाजनक प्रतीत होगी और फिर भी आपको वहां आलस्य दिखाई देगा। लोगों को चरखे का स्मरण होगा, परन्तु चरखे की या किसी भी प्रकार के दूसरे उद्योग की बात उन्हें रुचिकर न मालूम होगी। उन्होंने आशा का त्याग कर दिया है। वे मरने के दोष से जी रहे हैं। यदि आप चरखा चलावेंगे, तो वे भी चरखा चलावेंगे। तीन सौ मनुष्यों के एक

गाँव में १०० मनुष्य भी चरखा चलावेंगे, तो कम से कम उस गाँव में १८००) की आमदनी बढ़ेगी। इतनी आमदनी के आधार पर हरएक गाँव की सफाई और आरोग्य-विभाग की नींव डाल सकते हैं। यह काम कहने में तो बड़ा आसान जान पड़ता है, परन्तु उसे करना बड़ा मुश्किल है। परन्तु श्रद्धा के सामने वह आसान हो जावेगा। "मैं एक हूँ और सात लाख गाँवों को कैसे पहुंचा सकूंगा" ऐसा अभिमानयुक्त गलत हिसाब न गिनना। आप यदि एक ही गाँव में आसनबद्ध होकर बैठ जाओगे तो दूसरों का भी यही हाल होगा, ऐसा विश्वास रखकर जब काम करोगे, तभी कहीं देशोन्नति होगी।

आपको ऐसे सेवक बनाना ही इस विद्यालय का काम है, उसमें यदि आपको दिलचस्पी नहीं है तो आपके लिये यह विद्यालय रसहीन और त्याज्य है।

विद्यार्थियों में जागृति

बारडोली का सन्देश अभीतक पूरा पूरा लोगों को नहीं पहुँच पाया है। मगर अपूर्ण होने पर भी इसने हमें ऐसे पाठ पढ़ाये हैं, जो हम सहज ही भूल नहीं सकते। इसने हमारे मुर्दा दिलों में जान फूंकदी है, नयी आशा दी है। इसने दिखला दिया है कि सार्वजनिक रूप से, विश्वास नहीं बल्कि नीति के तौर पर, जैसे कि और कई सदगुणों का पालन हम करते हैं; अहिंसा के पालन

कौन-कौन से और कैसे-कैसे महान कार्य हो सकते हैं। बम्बई में श्रीयुत वल्लभ भाई पटेल के सम्मान में किये गये महान प्रदर्शन का जो आँखों देखा वर्णन मैंने सुना है और उन्हें खुद २५,०००) रु० की भेंट चढ़ानी, प्रेम से उनकी गाड़ी फेर लेनी, भीड़ में से जाते हुए वल्लभ भाई पर रुपयों, गिन्नियों तथा नोटों की वर्षा करनी, सभा में प्रवेश करने पर उनका गगन भेदी जय-जयकार होना आदि बातें इसका प्रमाण हैं कि बारडोली ने अपनी हिम्मत और कष्ट-सहिष्णुता से कैसा परिवर्तन कर डाला है। इससे सर्वत्र खूब जागृति हुई है, मगर विशेष उल्लेखनीय बम्बई में और वहाँ भी विद्यार्थियों में हुई है।

श्रीयुत नरीमैन, और उन बहादुर लड़कों और लड़कियों को मैं बधाई देता हूं, जिन पर इनका ऐसा आश्चर्यजनक प्रभाव है। और विद्यार्थियों में से भी दर्शकों ने तीन पारसी लड़कियों का नाम अलग चुन लिया है, जिन्होंने अपने अटूट उत्साह और साहस से बम्बई के विद्यार्थी जगत में जोश की बिजली दौड़ा दी। महादेव देसाई के पास पूना के किसी कालिज के एक लड़के का पत्र आया है कि वहाँ के विद्यार्थियों ने अपने आप ही गत चौथी जुलाई को विद्यार्थियों का बारडोली-दिवस मनाया, और सब काम काज बन्द रक्खा और चन्दे जमा किये, जो स्वेच्छापूर्वक मिलने गये। परमात्मा करे कि सरकारी कालेजों और स्कूलों के विद्यार्थियों का यह साहस कभी जाता न रहे, और न ऐन मौके पर ही टूट जाय। विद्यार्थियों ने बारडोली-कोष के लिये जो आत्म-त्याग किया

है, उनके बारे में आए हुए पत्र अत्यन्त हृदय-स्पर्शी हैं। गुरुकुल काँगड़ी, वैश्य विद्यालय सांसवरो, नवसारी के निकट सूपा गुरुकुल और घाटकोपर में एक छात्रालय के तथा और कई संस्थाओं के विद्यार्थी, जिनके नाम अभी मुझे याद नहीं हैं, बारडोली-कोष के लिये कुछ रुपया पैदा करने को या तो मिहनत मजदूरी कर रहे हैं, या एक महीने या कमोबेश मुद्दत के लिये घी, दूध छोड़ रहे हैं।

बारडोली के अनपढ़ किसान और अनपढ़ स्त्रियाँ, जिन्हें अब तक हम स्वातंत्र्य-युद्ध की लड़नेवालियाँ मानते ही नहीं थे, हमें जो पाठ अपनी कष्ट-सहिष्णुता और धीर साहस से पढ़ा रही हैं, उन्हें अगर हम भूल जायँ तो यह महा अनुचित कहा जायगा। चीन देश के बारे में यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वहाँ के विद्यार्थियों ने ही स्वतंत्र-युद्ध चलाया था। मिश्र की सच्ची स्वतंत्रता के प्रयत्नों में वहाँ के विद्यार्थी ही सबसे आगे हैं।

हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों से इससे कम की आशा नहीं की जाती है। वे स्कूलों और कालेजों में सिर्फ अपने ही लिये नहीं, बल्कि सेवा के लिये पढ़ते हैं या उन्हें पढ़ना चाहिए। उन्हें तो राष्ट्र का हीर—महामूल्यवान सत्व—होना चाहिए।

विद्यार्थियों के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा होती है, परिणामों के भय, जो कि अधिकांश में काल्पनिक ही होते हैं। इसलिये विद्यार्थियों को पहला पाठ पढ़ना है भय के त्याग का, जो लोग शाला से निकाल दिये जाने, या गरीब हो जाने, या मौत से डरते

हैं, वे स्वतंत्रता की लड़ाई कभी नहीं जीत सकते। सरकारी शालाओं के लड़कों के लिये सबसे बड़ा डर 'रेस्ट्रिकेशन'—यानी किसी सरकारी शाला में न पढ़ने देने का है। वे समझ लेवें कि साहस के विना विद्या मोम के पुतले के समान है, जो देखने में तो सुन्दर लगता है, मगर किसी गर्म वस्तु से छुआ नहीं कि पानी-पानी हो बह गया।

युवक क्या कर सकते हैं?

कुछ दिन हुए आगरा यूथ लीग की ओर से एक पत्र मिला था जिसमें निम्नांकित प्रश्न किया गया था:—

भविष्य में अपने मुख्य कार्य के सम्बन्ध में हम अन्धेरे में हैं। हम लोग अपने आस पास के पड़ोसियों और किसानों के साथ सहयोग की इच्छा रखते हैं। परन्तु कोई व्यावहारिक तरीका नज़र नहीं आता। हम आशा करते हैं कि आप इस कठिनाई से निकलने का कोई व्यवहारिक तरीका बतला देंगे। हमारा ख्याल है कि हमारी ही संस्था के सामने यह प्रश्न नया है, इसलिये हम यह चाहते हैं कि आप नवजीवन या यंग इण्डिया में इस समस्या के सुलझाव पर कोई राय दें।

गोरखपुरी यूथ लीग के अभिनन्दन भाषण में भी इसी प्रकार की भावना थी, और पूछा गया था कि नवयुवकों की रोटी की समस्या को किस प्रकार हल किया जाय? मेरी राय में दोनों प्रश्न

एक में मिला दिये गये हैं। दोनों हल किये जा सकते हैं, यदि नवयुवक शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन को अपने योग्य वना ले जाय। हम लोगों की पूर्व सभ्यता ग्रामीण थी। मेरी राय में हमारे देश का विस्तार, जन संख्या की अधिकता; देश की स्थिति और जलवायु ग्रामीण सभ्यता के कारण हैं, इसके दोष अच्छी तरह से मालूम हैं। परन्तु उनमें कोई ऐसा नहीं है जो दूर न किया जा सके। इसका उन्मूलन करके शहरी सभ्यता स्थापित करना मुझे तब तक असम्भव मालूम होता है जब तक कि हम कोई ऐसा करने के लिये न तैयार हो जायें जिससे कि ३० करोड़ की जन संख्या घटकर ३ करोड़ या ३० न हो जाय। इसलिये जो उपाय मैं बतलाता हूँ उससे ग्रामीण सभ्यता और भी स्थायी होगी और इसके दोषों से छुटकारा मिल जायगा। यदि देश के नवयुवक गाँव में बँट जायगा तो तभी यह हो सकता है और यदि वे यह करें तो उन्हें अपने जीवन का पुनर्निर्माण करना चाहिये और अपने कालेज तथा स्कूलों के पास गाँवों में अपनी छुट्टियों को प्रतिदिन बिताना चाहिये या जो स्कूल में नहीं पढ़ रहे हैं उन्हें गाँव में रहना चाहिये। अखिल भारतीय चरखा संघ और उसकी फैली हुई अनेक शाखायें तथा अन्य संस्था भी जो इसके संरक्षण में बन गई हैं विद्यार्थियों को सेवा के योग्य बनाने और यदि वे देहात के सारे जीवन सन्तुष्ट हों तो उन्हें सम्मानपूर्वक जीविका उपार्जन के योग्य बना सकता है। इसमें १५०० नवयुवक हैं जिनमें १५ रुपये से १५० रुपये तक वेतन पाते हैं। इसमें ईमानदार, मेहनती और शारीरिक काम करने वालों में लज्जित न

होने वाले युवक किसी भी संख्या में किसी भी समय आ सकते हैं। इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षण संस्थायें हैं। लेकिन वहां क्षेत्र सीमित है, क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा फैशन नहीं है। इस लिये मैं उन उत्साही नवयुवकों से जो वर्तमान वातावरण और दृष्टिकोण से असन्तुष्ट हैं, अनुरोध करता हूँ कि वे इन दो महान राष्ट्रीय संस्थाओं का अध्ययन करें जो चुपचाप प्रभावशाली निर्माण कार्य कर रही हैं और जो देश के नवयुवकों के लिए बड़ी सेवा और सम्मान पूर्ण जीविका का अवसर प्रदान कर रही हैं। वे नवयुवक चाहे इन दो बड़ी संस्थाओं में जायें न जायें उन्हें गाँव में प्रवेश करना चाहिये। वहाँ उन्हें सेवा का अनुसन्धान और सत्य ज्ञान का बहुत बड़ा क्षेत्र मिलेगा। यदि छुट्टियों में लड़के अथवा लड़कियों को साहित्यिक अध्ययन का बोझा न देकर उन्हें गाँव में शिक्षा प्राप्त करने लिये जाने देकर प्रोफेसर एक अच्छा काम करेंगे। छुट्टियां मन बहलाव के लिये होनी चाहिएँ न कि किताबें रटने के लिये।

विद्यार्थी क्या करें !

सारे देश की भांति विद्यार्थियों में भी एक प्रकार की जागृति और अशान्ति फैल गयी है। यह शुभ चिन्ह है, लेकिन सहज ही अशुभ भी बन सकता है। भाप को अगर कैद की हो तो उसका वाष्प यन्त्र बनता है और प्रचण्ड शक्ति बनकर किसी दिन हमारी

कल्पना से भी अधिक बोझ घसीट कर ले जाता है। अगर संग्रह न किया जाय, तो या तो वह व्यर्थ जाती है या नाशकारी बनती है। उसी तरह विद्यार्थी आदि वर्ग में जो भाप आज पैदा हो रही है, उसका अगर संग्रह न किया जाय, तो वह व्यर्थ जायगी अथवा हमारा ही नाश करेगी; लेकिन अगर उसका बुद्धिपूर्वक संग्रह होगा, तो उसमें से प्रचण्ड शक्ति पैदा होगी।

आजकल गुजरात कालेज (अहमदाबाद) के विद्यार्थियों की जो हड़ताल जारी है, वह इस उत्पन्न भाप का परिणाम है। मैंने जो हकीकत सुनी है, उस पर से मैं मानता हूं कि विद्यार्थियों की हड़ताल मर्यादानुकूल है और उनकी शिकायत न्याय है। उन्होंने अक्टूबर में साईमन कमीशन के बहिष्कार में भाग लिया था और कालेज से गैरहाजिर रहे थे। इसलिए उनके सम्बन्ध में आचार्य ने यह निश्चय किया था कि, उनमें से जो परीक्षा में बैठना चाहें वे तीन रुपया फीस जमा करें। जो परीक्षा न दें, उन्हें कोई भी सजा न दी जाय। यह निर्णय कर चुकने के बाद भी, मैं सुन रहा हूं कि अब आचार्य ने दूसरी ही नीति स्वीकार की है और सब को तीन रुपया देकर परीक्षा में बैठने के लिए मजबूर करते हैं। विद्यार्थियों ने इस हुक्म के विरोध में हड़ताल की है और अगर वस्तुस्थिति ऊपर जैसी ही हो, तो कहना पड़ता है कि विद्यार्थियों के साथ अन्याय हुआ है।

लेकिन, युवक संघ के अध्यक्ष कहते हैं कि प्रिंसिपल साहब गुस्सा हुए हैं और वह हड़ताल को साम्राज्य के लिए खतरे की

चीज़ समझते हैं। हड़ताल निर्दोष है, जवानी के जोश का चिन्ह है। उन्हें जवानी की चेष्टा मात्र समझकर, प्रिंसिपल साहब खतरे को हटा सकते हैं, लेकिन अगर वह उसे खतरा समझकर, हड़ताल को महा पाप मानें और विद्यार्थियों को कठोर या कैसी ही सजा देने का हठ करें, तो आज तो खतरा नहीं है, सम्भव है, वह कल बड़ा भारी खतरा बन बैठे।

१८५७ के गदर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए, लार्ड कैनिंग ने कहा था कि—"भारतवर्ष के आकाश में अँगूठे जितना प्रतीत होने वाला बादल एक क्षण में विराट् स्वरूप धारण कर सकता है, और वह ऐसा स्वरुप कब धारण करेगा, कोई कह नहीं सकता। इसलिए चतुर मनुष्यों को चाहिए कि, वे छोटे दीखने वाले निर्दोष बादल की अवहेलना न करें, बल्कि उसे चिह्न रूप मानें और उसका योग्य उपचार करें।"

यह हड़ताल अँगूठे जितना बादल है।लेकिन, उसमें से बिजली कड़कने (उत्पन्न होने) की शक्ति पैदा हो सकती है। मैं तो जरूर कहता हूँ कि, ऐसी शक्ति पैदा होवे। मुझे वर्तमान ब्रिटिश राज्य प्रणाली के प्रति न तो मान है न प्रेम ही। मैं उसे शैतान की कृति का नाम दे चुका हूँ। मैं निरन्तर इस प्रणाली के नाश की इच्छा किया करता हूँ वह नाश भारतवर्ष के नवयुवक और नवयुवतियों द्वारा हो, यह सब तरह से इष्ट है। इस नाशक शक्ति को प्राप्त करना विद्यार्थियों के हाथ की बात है अगर वे अपने में उत्पन्न वाष्प का संग्रह करें, तो आज उस शक्ति को पैदा कर सकते हैं।

पहली बात यह है कि विद्यार्थी अपनी शुरू की हुई हड़ताल को सफल करें। अगर उन्होंने शुरूआत ही नहीं की होती, तो उन्हें कोई कुछ भी न कहता, शुरूआत करने के बाद अगर वे हिम्मत हार कर बैठ जाँय तो अवश्य ही निन्दा के पात्र बनेंगे और अपने आप को तथा देश को हानि पहुँचायेंगे। हड़ताल का अधिक से अधिक कटु परिणाम तो यही हो सकता है कि प्रिंसिपल साहब विद्यार्थियों का हमेशा के लिए या लम्बे समय के लिए बहिष्कार करें अथवा उन्हें फिर से भरती करने के लिये कोई दण्ड निश्चय कर दें। इन दोनों चीजों को विद्यार्थियों को हर्ष पूर्वक स्वीकार करना चाहिये। रण-क्षेत्र में कूदने के बाद, वीर पुरुष कभी पीछे पैर हटाता ही नहीं। इसी तरह ये विद्यार्थी भी अब पीछे नहीं हट सकते।

हाँ, विद्यार्थियों को विनय का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। वे आचार्य के या अध्यापक के सम्बन्ध में एक भी कड़ुए शब्द का उच्चारण न करें। कठोर शब्द अपने बोलने वाले का नुकसान करते हैं, जिनके लिए कहे जाते हैं, उनका नहीं कर सकते। विद्यार्थियों को अपने वचन का पालन करना और कठोर काम करके बतलाना है। उसका असर जरूर होगा। उस में इस राज्य-प्रणाली को नाश करने की शक्ति पैदा हो सकती है, होती है। हमारे युवक और युवतियाँ चीनी विद्यार्थियों के उदाहरण को याद रखें। उनमें के एक दो नहीं, बल्कि पचास हजार व्यक्ति गाँवों में फैल गये और थोड़े से समय में उन्होंने छोटे-बड़े सब को आवश्यक अक्षर-ज्ञान देकर तथा दूसरी बातों का ज्ञान कराके तैयार कर लिया।

अगर विद्यार्थी स्वराज्य-यज्ञ में बड़ी तादाद में अपना भाग देना चाहते हों, तो उन्हें चीनी विद्यार्थियों के समान कुछ करके दिखलाना चाहिए।

जैसा मैं समझ सका हूँ, उसके अनुसार तो विद्यार्थी शान्तिमय युद्ध में आहुती देने की इच्छा रखते हैं। लेकिन, मेरे समझने में भूल हो गई हो, तो भी उपर्युक्त बात तो दोनों प्रकारके—आत्मबल के और पशु-बल के युद्ध को लागू होती है। अगर हमें गोला बारूद से लड़ना होगा तो भी संयम का पालन करना पड़ेगा। भाप का संग्रह करना पड़ेगा एक खास हद तक तो दोनों का रास्ता एक ही है इस्लाम में खलीफाओं ने, ईसाई धर्म में क्रूसेड़रो ने और राजनीति में क्राम वेरन तथा उसके योद्धाओं ने भोग-विलास का अपूर्व त्याग किया था आधुनिक उदाहरण लें, तो लेनिन, सनयात्सेन आदि ने सादगी दुखादि की सहन-शक्ति, भोग त्याग, एकनिष्टा और सतत जागृति का योगियों को भी शरमाने वाला नमूना दुनियाँ के सामने पेश किया है। उनके अनुयायियों ने भी वफ़ादारी और नियम-पालन का वैसा ही उज्ज्वल उदाहरण पेश किया है।

हमारे विस्तार का भी यही उपाय है। हमारा त्याग आज भी कोई त्याग नहीं है, वह यत्किंचित है। हमारी नियम पालने की शक्ति थोड़ी है। हमारी सादगी अपेक्षाकृत कम है, हमारी एकनिष्ठा नहीं के बराबर कही जा सकती है, हमारी दृढ़ता और एकाग्रता तो शुरूआत तक ही कायम रहती है। इसलिए देश के नवजवान याद रक्खे कि उन्हे तो अभी बहुत कुछ करना बाकी है। उन्होंने जो कुछ किया है, वह मेरे ध्यान से बाहर नहीं है। मुझसे स्तुति पाने

की उन्हें जरुरत होनी चाहिये। मित्र की स्तुति करने वाला मित्र भाट बन जाता है। मित्र का काम तो कमजोरियाँ बता कर उनकी पूर्ति का प्रयत्न करना है।

विद्यार्थी कैसे सहायता कर सकते हैं ?

यूनिवर्सिटी के एक विद्यार्थी ने महात्मा गाँधी को एक पत्र लिखा था जिसमें उसने पूछा था कि अपने अध्ययन को बिना क्षति पहुँचाये हुये वह किस प्रकार से सेवा कार्य कर सकता है। गांधी जी ने निम्न लिखित उपाय बतलाये थे:—

(१) दरिद्रनारायण के लिए रोजाना मजबूत और एकसा सूत कातकर; अपने सूत कातने के समय की डायरी रख कर, कते हुये सूत के वजन और उसका काउण्ट उसमें लिखकर, और हर महीने अपने काम की सूचना मुझे देकर। सूत सावधानी से इकट्ठा करके मुझे दिया जाय।

(२) स्थानीय प्रमाणित खादी भण्डार से खादी लेकर रोज बेचकर और प्रतिदिन की बिक्री का हिसाब किताब रखना।

(३) प्रतिदिन कम से कम एक पैसा बचा कर।

(४) और संग्रठित धन को मेरी इच्छा पर छोड़कर मेरे कम से कम शब्द का अर्थ समझना चाहिए। यदि आप अधिक बचा सकते हैं तो दरिद्रनारायण के कोष में अधिक से अधिक दीजिये।

(५) अन्य विद्यार्थियों के साथ हरिजन बस्तियों में जाकर

अपने साथियों के साथ उनकी बस्ती की सफाई करके उनके लड़कों के साथ मित्रता का व्यवहार करते हुये उन्हें सफाई और स्वास्थ्य की बातें बताकर।

यदि आप उचित समय बचा सकते हैं, तो आपको कुछ ग्राम उद्योगों को सीखना चाहिये। जिससे शिक्षा खतम होने पर आप गांव वालों की सेवा कर सकें। जब आप यह सब करलें और फिर भी और अधिक काम करने के लिये समय की अभिलाषा हो जिससे आपकी शिक्षा को क्षति न पहुँचे तो आप मुझसे पूछ सकते हैं और मैं आपको और राय दूँगा।

सविनय अवज्ञा का कर्तव्य

गुजरात कालेज के लगभग सात सौ विद्यार्थियों को हड़ताल शुरू किये बीस दिन से ज्यादा का समय हो चुका है और अब इस हड़ताल का महत्व केवल स्थानीय ही नहीं रहा है। मजदूरों की हड़ताल काफी बुरी होती है, लेकिन विद्यार्थियों की हड़ताल, फिर वह उचित कारण से जारी की गई हो या अनुचित कारण से उससे भी बदतर होती है। इस हड़ताल से आखिर जो नतीजे निकलेंगे, उनकी दृष्टि से यह हड़ताल बदतर है और यह बदतर है उस दर्जे के कारण जो दोनों पक्षों का समाज में है। मजदूर तो अनपढ़ हैं लेकिन विद्यार्थी शिक्षित रहते हैं और हड़तालों के द्वारा वे किसी तरह का भौतिक स्वार्थ-साधन नहीं कर सकते।

साथ ही मिल मालिकों की भांति शिक्षा-संस्थाओं के मुख्य अधिकारियों के किसी भी स्वार्थ का विद्यार्थियों के स्वार्थ से संघर्ष नहीं होता। इसके अलावा विद्यार्थियों की हड़ताल के परिणाम बहुत व्यापक हो सकते हैं और असाधारण परिस्थितियों में ही उनकी हड़ताल के औचित्य का समर्थन किया जा सकता है।

लेकिन जहां सुव्यवस्थित स्कूल और कालेजों में विद्यार्थियों की हड़ताल के अवसर बहुत थोड़े होने चाहिये, वहां यह कोई गैर मुमकिन बात नहीं है कि ऐसे अवसरों की कल्पना की जा सके, जब विद्यार्थियों के लिए हड़ताल कर देना उचित हो। मसलन मान लीजिये कि कोई प्रिंसिपल जनता की राय के खिलाफ़ कार्रवाई करके किसी देश व्यापी उत्सव या त्योहार के दिन छुट्टी देने से इनकार कर देता है और यह त्योहार ऐसा हो कि जिसके लिये पाठशाला या कालेज में जाने वाले विद्यार्थियों की माताएं और विद्यार्थी छुट्टी चाहते हों, तो ऐसी हालत में उस दिन के लिये हड़ताल कर देना विद्यार्थियों के लिए अनुचित होगा जैसे-जैसे विद्यार्थी गण अपनी राष्ट्रीय जिम्मेवारी को समझने में अधिक जागृत और विचारशील होते जायंगे, तैसे-तैसे भारत में ऐसे अवसरों की तादाद बढ़ती जायगी।

गुजरात-कालिज के सम्बन्ध में मैं जहां तक निष्पक्ष होकर विचार कर सका हूँ, मुझे विवश होकर कहना पड़ता है कि हड़ताल के लिये विद्यार्थियों के पास काफी कारण थे। लोगों का यह कथन बिलकुल गलत है, जैसा कि कई स्थानों में कहा गया

है कि हड़ताल थोड़े उत्पाती विद्यार्थियों के द्वारा शुरू की गई है।

मुट्ठी भर उत्पात मचाने वालों के लिये लगभग सात सौ विद्यार्थियों को दो सप्ताह से भी अधिक समय के लिये एकत्र कर रखना असम्भव है। बात तो यह है कि विद्यार्थियो की रहनुमाई करने और उन्हें सलाह देने वाले जिम्मेवार नागरिक हैं। इन सलाहकारों में भी श्रीयुत मावलणकर मुख्य हैं। आप एक अनुभवी वकील हैं और अपनी बुद्धिमत्ता तथा उदार नीति के कारण प्रसिद्ध हैं। श्रीयुत् मावलणकर इस विषय में प्रिंसीपल महाशय की मुलाकात लेते रहे हैं और फिर भी उनका यह निश्चित मत है कि विद्यार्थियों का पक्ष बिलकुल सच्चा है।

इस सम्बन्ध की खास-खास बातें थोड़े में कही जा सकती हैं। भारत भर के विद्यार्थियों की भांति गुजरात-कालेज के विद्यार्थी भी साइमन-कमीशन के बहिष्कार के दिन कालेज से गैरहाजिर रहे हैं। इसमें शक नहीं, कि उनकी यह अनुपस्थिति अनधिकार-पूर्ण थी। वे क़ानूनन् क़सूरवार थे। गैरहाजिर रहने से पहले कम से कम उन्हें शिष्टाचार के ढङ्ग पर ही सही, आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये थी। लेकिन दुनिया भर में लड़के तो सब एक से ही होते हैं न? विद्यार्थियों के उमड़ते हुए उत्साह को रोकना मानों हवा की गति के रोकने का निष्फल प्रयत्न करना है। ज़रा उदारता से देखें तो विद्यार्थियों का यह कार्य जवानी की एक भूल मात्र थी। बड़ी लम्बी बातचीत के बाद प्रिंसिपल साहब ने उनके इस कार्य को माफ कर दिया था। इसमें शर्त यह थी कि विद्यार्थी फीस के

३) रु० भरकर तिमाही परीक्षा में ऐच्छिक रूप से सम्मिलित हो सकते हैं, इसमें यह बात गर्भित थी कि विद्यार्थियों में से अधिकतर परीक्षा में बैठेंगे और शेष जो नहीं बैठेंगे, उन्हें किसी भी तरह की सजा नहीं दी जायगी। लेकिन यह कहा जाता है कि आख़िर किसी भी कारण से क्यों न हो, प्रिंसिपल साहब ने अपना वचन तोड़ दिया और यह सूचना निकाली कि प्रत्येक विद्यार्थी के ३) भर कर तिमाही परीक्षा में बैठना अनिवार्य है। इस सूचना ने स्वभावतः विद्यार्थियों को उत्तेजित कर दिया। उन्होंने महसूस किया कि अगर समुद्र ही अपनी मर्यादा छोड़ देगा, तो नदी नाले क्या करेंगे ? इस लिये उन्होंने काम करना बन्द कर दिया। शेष बातें तो स्पष्ट ही हैं। हड़ताल अब तक जारी है और मित्र तथा टीकाकार दोनों, विद्यार्थियों के आत्म-संयम और सद्व्यवहार की एकमत सराहना करते हैं। मेरी तो यह राय है कि किसी भी कालेज के विद्यार्थियों का यह परम कर्तव्य है कि अगर प्रिंसिपल अपने दिए हुए वचन को तोड़ें तो वे उनके इस कार्य की सविनय अवज्ञा करें, जैसे कि गुजरात कालेज के प्रिंसिपल के सम्बन्ध में जाता है। जब गुरु स्वयं किसी तरह प्रतिज्ञा-भंग के दोषी हों, उस हालत में अपनी सम्माननीय वृत्ति के कारण गुरु जिस अशेष आदर के अधिकारी हैं, वह अशेष आदर उनके प्रति दिखलाना असम्भव हो जाता है।

अगर विद्यार्थी अपने निश्चय पर डटे रहेंगे तो हड़ताल का एक ही नतीजा होगा और वह यही कि उक्त अपमानजनक सूचना

वापस ले लेली जायगी और इस बात की ठीक प्रतिज्ञा की जायगी कि विद्यार्थी हर तरह की सज़ा से बरी रखे जायँगे। प्रान्तीय सरकार के लिये सब से अच्छा और औचित्यपूर्ण कार्य तो यह होगा कि वह गुजरात-कालेज के लिए किसी दूसरे प्रिंसिपल की नियुक्ति करे।

यह देखा जाता है कि सरकारी कालेजों में पढ़ने वाले उन विद्यार्थियों के पीछे खूब जासूसी की जाती है, वे खूब सताये जाते हैं, जो अपने निश्चित राजनैतिक मत रखते हैं और उन राजनैतिक सभाओं में भाग लेते हैं, जिन्हें सरकार नापसन्द करती है। लेकिन अब वह समय आगया है, जब इस तरह की ख्वामख्वाह दस्तन्दाजी बद कर दी जानी चाहिये थी। भारत के समान जो देश विदेशी राज्य के जूये के नीचे कराह रहा हो, उसके विद्यार्थियों को राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलनों में भाग लेने से रोकना असम्भव है। इस सम्बन्ध में तो केवल यही किया जा सकता है कि विद्यार्थियों के उत्साह को नियमित कर दिया जाय जिससे उनकी पढ़ाई में कोई रुकावट न पैदा हो। वे लड़ने वाले दो दलों में से किसी एक का पक्ष लेकर उसकी तरफ से लड़ाई में शामिल न हों। लेकिन उन्हें अधिकार है कि वे सक्रिय रूप में अपने चुने हुये किसी राजनैतिक मत पर डटे रहने के लिये आजाद हो शिक्षासंस्थाओं का काम तो उसने स्वयं भर्ती होने वाले विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों को शिक्षा देना और उस शिक्षा द्वारा उनके चरित्र का निर्माण करना है। पाठशाला के बाहर

विद्यार्थी राजनैतिक या सदाचार से सम्बन्ध न रखने वाले दूसरे जो कुछ भी काम करते हैं उनमें ऐसी शिक्षा-संस्थायें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं।

विद्यार्थी और हड़तालें

बेंगलोर से एक कालेज का विद्यार्थी लिखता है:—

"मैंने हरिजन में आपका लेख पढ़ा है। अण्डमान दिवस, बूचड़खाना विरोधी-दिवस वगैराकी हड़तालोंमें विद्यार्थियोंको भाग लेना चाहिए या नहीं, इस विषयमें मैं आपकी राय जानना चाहता हूं।"

विद्यार्थियों की वाणी और आचरण पर लगे हुए प्रतिबन्धों के हटाने की पैरवी मैंने जरूर की है, पर राजनीतिक हड़तालों या प्रदर्शनों में उनके भाग लेने का समर्थन मैं नहीं कर सकता। विद्यार्थियों को अपनी राय रखने और उसे जाहिर करने की पूरी-पूरी आजादी होनी चाहिए। चाहे जिस राजनीतिक दल के प्रति वे खुले तौर पर सहानुभूति प्रगट कर सकते हैं। पर मेरी राय में अपने अध्ययन-काल में उन्हें सक्रिय रूप से भाग लेने की स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए। विद्यार्थी राजनीति में सक्रिय भाग ले और साथ-साथ अपना अध्ययन भी जारी रखे, यह नहीं हो सकता। राष्ट्रीय उत्थान के समय इन दोनों के बीच स्पष्ट भेद करना मुश्किल हो जाता है। उस समय विद्यार्थी हड़ताल नहीं

करते, या ऐसी परिस्थिति में 'हड़ताल' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, तो वह पूरी सामूहिक हड़ताल होती है; उस समय वे अपनी पढ़ाई को स्थगित कर देते हैं। इसलिये जो प्रसंग अपवाद स्वरूप दिखाई देता है, वहभी असल में अपवाद रूप नहीं है।

वास्तव में इस पत्र लेखक ने जो विषय उठाया है, वह कांग्रेसी प्रान्तों में तो उतना ही नहीं चाहिए। क्योंकि वहां तो ऐसा एक भी अंकुश नहीं हो सकता जिसे कि विद्यार्थियों का श्रेष्ठवर्ग स्वेच्छा से स्वीकार न करे। अधिकांश विद्यार्थी कांग्रेस मनोवृत्ति के हैं और होने चाहिएँ। वे ऐसा कोई भी काम नहीं करेंगे, जिससे कि मंत्रियों की स्थिति संकट में पड़ जाय। वे हड़ताल करें तो केवल इसी कारण करें कि मंत्री उनसे ऐसा कराना चाहते हैं। पर कांग्रेस जब पदोंका त्याग करदे, और कांग्रेस कदाचित् तत्कालीन सरकार के खिलाफ अहिंसात्मक लड़ाई छेड़ दे: उस प्रसंग के अलावा जहां तक मैं कल्पना कर सकता हूँ, कभी भी कांग्रेसी मंत्री विद्यार्थियों से ऐसा करने के लिए नहीं कहेंगे। और कभी ऐसा प्रसंग आ जाय तब भी, मुझे लगता है कि प्रारम्भ में ही विद्यार्थियों से हड़ताल करने के लिए पढ़ाई स्थगित करने की बात कहना मानों अपना दिवाला पीटना होगा। अगर हड़ताल जैसे किसी भी प्रदर्शन के करने में कांग्रेस के साथ जन समूह होगा, तो विद्यार्थियों को—सिवा बिल्कुल आख़िरी वक्त के—उसमें शामिल होने के लिये नहीं कहा गया था मुझे जहां तक याद है,

सब से अन्त में उनसे कहा गया था और वह भी केवल कालेज के विद्यार्थियों से।

विद्यार्थी और राजनीति

अखिल भारतीय विद्यार्थी संघ के भंग होने पर उसके प्रधान मन्त्री ने गान्धी जी से जो पत्र व्यवहार किया था उसी सम्बन्ध में महात्मा जी ने निम्नलिखित विचार प्रगट किये थे।

मैं देश का युद्ध लड़ रहा हूं। देश के अन्य राजनैतिक दलों के साथ विद्यार्थी भी हैं। कम से कम मैं विद्यार्थियों के ऊपर एक विशेष अधिकार रखता हूँ और वे मेरे ऊपर। और मैं अब भी अपने को विद्यार्थी समझता हूँ और क्योंकि भारत वापस आने के समय से ही मैं उनके सम्पर्क में रहा हूं और उन विद्यार्थियों में बहुतों ने सत्याग्रह में भाग लिया है। इस लिये यदि समस्त विद्यार्थी अस्थायी कारणों से मेरा विरोध करें तो भी मैं इस भ्रम से उन्हें अपनी राय देने से न रुक सकूंगा कि वह राय वे स्वीकार न करेंगे।

विद्यार्थियों को दलबन्दी की राजनीति में न पड़ना चाहिये। जैसा कि वे हर तरह की पुस्तकें पढ़ते हैं उसी तरह सभी दलों की सुनना चाहिये सत्य उनको ग्रहण कर बाकी को छोड़ देना उनका कर्तव्य है। किसी मार्ग को वे ग्रहण कर सकते हैं।

शक्ति की राजनीति विद्यार्थियों को न जाननी चाहिये। थोड़े दिनों बाद वे कार्यों में लग जायेंगे। पढ़ना छोड़ देंगे। इस लिये

ऐसी स्थिति में वे देश की सेवा में असफल रहेंगे, और आप प्रधानमन्त्री होने के कारण यदि शक्ति की राजनीति में पड़े तो विद्यार्थियों के लक्ष्य की सेवा न कर सकेंगे।

सारे कम्युनिस्ट खराब नहीं है और न सारे कांग्रेसमैन देवता ही। इसलिए मुझ में कम्युनिस्टों के विरुद्ध कोई दुर्विचार नहीं हैं। उनके सिद्धान्त जैसा कि उन्होंने मुझे बतलाया है, मैं नहीं अपना सकता। परन्तु मैं डा० अशरफ की योग्यता का कायल हूँ। उनके देश प्रेम पर मुझे सन्देह नहीं है। परन्तु मेरा दृढ़ निश्चय है कि विद्यार्थियों को, जो वे गलत रास्ता दिखला रहे हैं एक दिन वे उसके लिए दुखी होंगे।

लेकिन अपने विचारों का उन्हें उतना ही मोह है जितना मुझे अपने विचारों का। हम दोनों समान रूप से दृढ़ हैं। मैं उन्हें अपनी गलतियों को समझाने में असमर्थ हूं। इस लिये उनके साथ विवाद नहीं करता और मेरी उपेक्षा करके वे वैसा ही काम करते हैं।

परन्तु विद्यार्थियों को याद रखना चाहिये कि मैं इस समय देश के लिये लड़ रहा हूं। मैं एक अनाड़ी सेनापति नहीं हूं। परन्तु ५० वर्ष के अनुभव का सैनिक हूँ। इस लिये मेरे उपदेशों को न मानने के पहिले उन्हें ५० बार सोचना चाहिये। वह यह कि बिना मेरी सलाह के हड़तालों में न सम्मिलित हों। मैंने यह कभी नहीं कहा और न इशारा ही किया कि हड़ताल कभी कर ही नहीं सकते। उनको चाहिये कि वे क्राइस्ट चर्च कालेजके विद्यार्थियों

को दी गई मेरी राय न भूलें। मुझे अपनी उस राय के लिए पश्चात्ताप नहीं है। विद्यार्थियों को चाहिये कि वे उससे पूरा लाभ उठावें।

विद्यार्थियों की हड़ताल

गुजरात (अहमदाबाद) के विद्यार्थियों की हड़ताल जब तक पूरे जोश के साथ जारी है, विद्यार्थी जिस दृढ़ता, शान्ति और संगठन का परिचय दे रहे हैं, वह हर तरह तारीफ के काबिल है। अब वे अपनी ताकत का अनुभव करने लगे हैं। और मेरा तो यह भी विचार है कि अगर वे कोई रचनात्मक कार्य करने लगें, तो उन्हें अपनी ताकत का और भी ज्यादा पता लगेगा। मेरा तो यह विश्वास है कि हमारे स्कूल और कालेज हमें बहादुर बनाने के बदले उलटे खुशामदी, डरपोक, ढुलमुल मिजाज और बेअसर बनाते हैं। मनुष्य की बहादुरी या मनुष्यता किसी को दुतकारने, डींग हांकने या बड़प्पन जताने में नहीं होती; वह तो सच्चे काम को करने का साहस बतलाने में और उस साहस के फल स्वरूप सामाजिक, राजनैतिक या दूसरे मामलों में जो कुछ कठिनाइयां पेश हों उन्हें झेल लेने में होती है, मनुष्य की मनुष्यता उसके कामों से प्रकट होती है, शब्दों से नहीं और अब ऐसा समय आ गया है, जब शायद विद्यार्थी वर्ग को बहुत लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़े। अगर समय ऐसा ही

आता जाय तो भी उन्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। तब तो सर्व साधारण जनता का यह काम होगा कि वह इस मामले में दस्तन्दाजी करे, उसे सुलझाने की कोशिश करे। और उस हालत में तो भारत भर के विद्यार्थी-जगत का भी यह कर्तव्य हो जायगा कि वह अपने हक़ को क़ायम रखने के लिए जो उसका अपना सच्चा हक़ है लड़ें, या कोशिश करें। जो लोग इस मसले को पूरीतरह जान लेना चाहते हैं उन्हें इस हड़ताल के मुताल्लिक खास खास कागजात की नक़ल श्री मावलणकर से मिल सकेगी। अहमदाबाद के विद्यार्थियों की लड़ाई अकेले उनके अपने हक़ों की लड़ाई नहीं है, वे तो सर्व साधारण विद्यार्थी-जगत के सम्मान की लड़ाई लड़ रहे हैं और इसलिए एक तरह यह लड़ाई राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए भी लड़ी जा रही है। अहमदाबाद के विद्यार्थियों की तरह जो लोग साहस के साथ लड़ रहे हों वे हर तरह जनता की पूरी मदद के पात्र हैं।

मुझे पक्का भरोसा है कि अगर विद्यार्थी किसी राष्ट्रीय रचनात्मक कार्य में लग गये, तो उन्हें जनता की मदद भी अवश्य ही मिलेगी। राष्ट्रीय काम करने से उनका कोई नुक़सान नहीं होगा। यह कोई खास जरूरत नहीं है कि वे महासभा के कार्यक्रम को ही अपनावें, बशर्ते कि वह उन्हें पसन्द न हो। खास बात तो यह है कि वे मिलकर स्वतन्त्र और ठोस काम करके यह बता दें कि उनमें संगठित होकर स्वतन्त्र एवं ठोस काम करने की योग्यता है। हमारे खिलाफ़ अक्सर जो बात कही जाती है, वह तो यह

है कि हम बढ़-बढ़ कर बोलना जानते हैं और निरर्थक क्षणिक प्रदर्शन कर सकते हैं, लेकिन जब हमें मिल कर सहयोग पूर्वक साहस और अडग दृढ़ता के साथ काम करने को कहा जाता है, तो हमारे हाथ पैर ढीले पड़ जाते हैं। विद्यार्थियों के लिये इससे अच्छा मौक़ा और क्या होगा कि वे इस कलंक को झूठा साबित करदें। क्या वे अपने को इस मौके के काबिल साबित करेंगे?

चाहे जो हो जाय, उन्हें अपने विश्वास पर डटे रहना चाहिए। कालेज राष्ट्र का धन है। अगर हम पतित न बन जाते, तो एक विदेशी सरकार का यह साहस न हो सकता था कि वह हमारी सम्पत्ति पर कब्जा कर बैठे अथवा विद्यार्थियों को देश की स्वाधीनता की लड़ाई में भाग लेने के कारण प्रायः अपराधी करार दे, जब कि राष्ट्रीय स्वाधीनता की लड़ाई में आगे बढ़कर भागलेना विद्यार्थियोंका एक जरूरी कर्तव्य और हक होना चाहिए था।



विद्यार्थी और राजनीतिक हड़ताल

अपने एक वक्तव्य में महात्मा गान्धी ने विद्यार्थियों की हड़ताल और प्रभाव हीन प्रदर्शन में शक्ति का अपव्यय करने का विरोध किया है यह उसी वक्तव्य का एक अंश है:—

पंडित जवाहरलाल नेहरू की गिरफ्तारी और उनकी सजा के सम्बन्ध में किये गये प्रदर्शनों के लिये मद्रास और संयुक्तप्रान्त की सरकारों द्वारा दमन की धमकी के सम्बन्ध में उन दोनों प्रान्तों के

विद्यार्थियों के अनेक पत्र मुझे मिले हैं। विद्यार्थी उसके विरुद्ध हड़ताल करना चाहते हैं और वे मेरी राय जानना चाहते हैं।

जब कि भारत के सर्वोच्च और वीर पुत्रों में से एक की सजा के ऊपर संसार का सिर शर्म से झुक गया है, तो भारत के विद्यार्थी समुदाय के आमूल कम्पित हो जाने पर आश्चर्य नहीं। इस लिये जहां उनके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है। मेरा दृढ़ विचार है कि जवाहरलाल नेहरू की सजा पर उनको कमरे से बाहर चला आना गलत था। दोनों प्रान्तों की सरकारों की दमन घुड़की देना और भी गलत है।

सभी विद्यार्थी उसके विरोध में की जाने वाली हड़ताल को न करके अच्छा ही करेंगे। वे मेरी राय चाहते हैं तो उन्हें अपना एक प्रतिनिधि भेजना चाहिये। जिसे सारी बातें मालूम हों। जिसकी मुझे बहुत थोड़ी जानकारी है। मैं प्रसन्नता पूर्वक जो कुछ राय दे सकूंगा दूंगा। वे जानते हैं कि युद्ध में उनके हार्दिक सहयोग का कितना मूल्य समझता हूं। अविचार पूर्ण और जल्दबाजी के काम से अपना और अपने राष्ट्र का अहित करेंगे।

इसी विषय पर दूसरे वक्तव्य में गान्धी जी ने विद्यार्थियों को निम्नलिखित राय दी है:—

विद्यार्थियों में उत्तेजना पैदा करने वाले प्रश्नों पर मुझे राय देने के सम्बन्ध में समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया है। पत्रों में प्रकाशित सभी लेखों को मैंने नहीं पढ़ा। क्योंकि मैं अपनी शक्ति का संचय कर रहा हूं।

जिसको मैंने पिछले दिनों वहुत अधिक उपयोग किया है। मेरा विचार पक्का है। विद्यार्थियों की राजनैतिक हड़ताल का कारण उत्तेजना तब तक न होनी चाहिये। जब तक विद्यार्थी कालेज छोड़ने का निश्चय न कर लें। स्वतन्त्र देशों के विपरीत हमारी शिक्षण संस्था शासकों के हाथ में हैं। जिनसे राष्ट्र स्वतन्त्र होने के लिये लड़ रहा है। इस लिये शासकों द्वारा बनाई गई और नियन्त्रित की जाने वाली शिक्षा पाने का मूल्य आत्म दमन द्वारा ही विद्यार्थियों को चुकाना होगा। उन्हें भोजन मिल जाय और वे उसे खा भी लें, यह दोनों बातें नहीं हो सकती। यदि वे स्कूल और कालेजों की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, जैसा कि वे स्पष्ट रूप से चाहते हैं तो उन्हें उस शिक्षण संस्था के नियमों के अनुसार चलना होगा। इस लिए जब तक शिक्षण संस्थाओं के प्रधान स्वीकार न करें। उनको राजनैतिक हड़ताल न करनी चाहिये। परन्तु मैंने एक मार्ग बताया है विद्यार्थियों के पास स्कूल के समय के बाद काफी समय रहता है जिसके वे स्वयं के स्वामी हैं। वे सभायें करके राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति अपनी सहानुति प्रकट कर सकते हैं और चाहें तो जुलूस भी निकाल सकते हैं। वे विद्यार्थी जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेना चाहते हैं वे आन्दोलन के नियमों के अनुसार और मेरी आज्ञा लेकर कुछ समय के लिए अपनी पढ़ाई को मुलतवी कर सकते हैं।

मुझे विद्यार्थियों के व्यक्तिगत पत्र मिले हैं जिससे प्रगट होता है कि उन्हें मेरे नेतृत्व में बहुत कम विश्वास है क्योंकि खादी

जो रचनात्मक कार्यक्रम का एक मुख्य अंग है, उसमें विश्वास नहीं रखते। उनका सूत कातने में विश्वास नहीं है। तो मैं समझता हूँ कि अहिंसा जो मेरा सन्देश है उसमें भी विद्यार्थियों को कम बिश्वास होगा।

यदि विद्यार्थी हृदय से अनुशासन का पालन करें तो राष्ट्रीय युद्ध में एक बड़ा कार्य कर सकते हैं। परन्तु यदि वे अपने ढंग से अलग खिचड़ी पकायें तो वे राष्ट्रीय कार्य में बाधक होंगे। कांग्रेस वाले जिस सीमा तक अनुशासन दिखा रहे हैं उनकी मैं प्रशंसा करता हूँ। मेरे लिए यह आश्चर्य की बात है। क्योंकि मैं इसके लिये तैयार नहीं था। समय आने पर यह न कहा जाय कि विद्यार्थियों में कमी थी। उनको याद रखना चाहिये कि मैं जो मांग कर रहा हूं उसके अनुशासन हीन तथा विचार हीन प्रदर्शनों की अपेक्षा अधिक लगन, साहस और अधिक आत्म त्याग की जरूरत है। विद्यार्थियों को यह जानना चाहिये कि ३५ करोड़ जनता की तुलना में सविनय अवज्ञा करने वालों की संख्या बहुत कम होगी। लेकिन रचनात्मक कार्यक्रम में भाग लेने वालों की कोई सीमा नहीं। जो मैं इसे स्वतन्त्रता के आन्दोलन का मुख्य और प्रभावशाली भाग समझता हूँ। इसके विना सविनय अवज्ञा आन्दोलन सविनय न रह जायगा। इस लिये वह बिलकुल व्यर्थ होगा।

———

विद्यार्थियों का सुन्दर सत्याग्रह

नवजीवन में अनेक बार लिखा जा चुका है कि सत्याग्रह सर्व व्यापक होने के कारण, जिस भांति राजनीतिक क्षेत्र में किया जा सकता है, उसी भांति सामाजिक क्षेत्र में भी, और जिस भांति राज कर्ता के विरुद्ध, उसी भांति समाज के खिलाफ़, कुटुम्ब के विरुद्ध, माता के, पिता के, स्त्री के, पति के विरुद्ध यह दिव्य अस्त्र काम में लाया जा सकता है। क्योंकि उसमें हिंसा की गंध सी भी नहीं हो सकती, और जहाँ अहिंसा यानी केवल प्रेम ही प्रेरक वस्तु हो, वहाँ चाहे जिस स्थिति में इस शस्त्र का उपयोग निडर होकर किया जा सकता है। ऐसा उपयोग धर्मज (खेड़ा जिले में एक स्थान) के विद्यार्थियों ने धर्म के लोगों के विरुद्ध थोड़े ही दिन पहले कर दिखाया। उस सम्बन्ध के कागज़ पत्र मेरे पास आये हैं। उनसे नीचे लिखी बातें मालूम हो जाती हैं।

थोड़े दिन पहले किसी गृहस्थ ने अपनी माता के वारहीं (वारहवें दिन का श्राद्ध) के दिन विरादरी का भोज कराया। भोज से एक दिन पहले इस विषय पर नौजवानों से वहुत चर्चा हुई। उन्हें और कई गृहस्थों को ऐसे भोजों से अरुचि तो हुई थी ही। और इस बार विद्यार्थी मंडल ने सोचा कि कुछ न कुछ तो कर ही लेना चाहिये। अन्त में वहुतों ने नीचे लिखी तीनों या एक प्रतिज्ञाएँ लीं कि:—

"सोमवार ता० २३-१-१९२८ के दिन वारहीं के लिए जो बड़ा भारी भोज होने वाला है उसमें न तो पंगत में बैठ कर न छन्ना

ही घर मंगा कर भोजन करेंगे। (२) इस रूढ़ि के विरुद्ध अपना सख्त विरोध दिखलाने के लिये उस दिन उपवास करेंगे, (३) इस काम में अपने घर या कुटुम्ब में से जो कष्ट सहना पड़े, वह शांति और राजी खुशी से सहेंगे।"

और इस लिये भोज के दिन बहुत से विद्यार्थियों ने, जिनमें कितने तो नाजुक लड़के थे, उपवास किया। इस काम से विद्यार्थियों ने बड़े गिने जाने वाले लोगों का क्रोध अपने माथे लिया है। ऐसे सत्याग्रह में विद्यार्थियों को आर्थिक जोखिम भी कम नहीं होता है। गुरुजनों ने विद्यार्थियों को धमकाया कि तुम्हें जो अधिक मदद मिलती है वह छीन ली जायगी और हम तुम्हें अपने मकान में नहीं रहने देंगे, पर विद्यार्थी तो अटल रहे। भोज के दिन २८५ विद्यार्थी भोज में शामिल नहीं हुए और कितनों ने तो उपवास भी किया।

ये विद्यार्थी धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उम्मेद करता हूँ कि हर एक जगह सामाजिक सुधार करने में विद्यार्थी आगे बढ़ कर हाथ बटायेंगे। जिस भांति स्वराज्य की चाभी विद्यार्थियों के हाथ में है, उसी भांति वे समाज सुधार की चाभी भी अपने जेब में लिये फिरते हैं। सम्भव है कि प्रमाद अथवा लापरवाही के कारण उन्हें अपनी जेब में पड़ी एक अमूल्य वस्तु का पता न हो। पर मैं आशा रखता हूँ कि धर्मज के विद्यार्थियों को देख कर दूसरे विद्यार्थी अपनी शक्ति का माप लगा लेंगे; मेरी दृष्टि से तो उस स्वर्गवासी बाई का सच्चा श्राद्ध विद्यार्थियों ने ही उपवास करके किया। जिसने

भोज किया उसने तो अपने धन का दुरुपयोग किया और गरीबों के लिये बुरा उदाहरण रखा। धनिक वर्ग को परमात्मा ने धन दिया है कि वे उसका परमार्थ में उपयोग करें। उन्हें समझना चाहिये कि विवाह या श्राद्ध के अवसर पर भोज करना गरीबों के बूते से बाहर है। उन्हें यह भी जानना चाहिये कि इस खराब रूढ़ि से कितनें गरीब पैमाल हुए हैं। बिरादरी के भोज में जो धन धर्मज में खर्च हुआ, वही अगर गरीब विद्यार्थियों के लिये गोरक्षा के लिये अथवा खादी के लिये या अन्त्यज सेवा के लिये खर्च होता तो वह उग निकलता और मृतात्मा को शान्ति मिलती। भोज को तो सब कोई भूल जायेंगे, उसका लाभ किसी को मिलेगा नहीं, और विद्यार्थियों को तथा धर्मज के दूसरे समझदार लोगों को इससे दुख हुआ।

जिस भोज के लिये सत्याग्रह हुआ था, वह बन्द न रहा। इस लिये कोई यह शंका न करे कि सत्याग्रह से क्या लाभ हुआ? विद्यार्थी यह आप जानते थे कि उनके सत्याग्रह का तात्कालिक असर होने की सम्भावना कम है, पर उनमें अगर यह जागृति कायम रही, तो फिर कोई सेठ बारहीं करने का नाम तक न लेगा। बारह वर्ष का कोढ़ एक दिन में नहीं छूटता। उसके लिये धैर्य और आग्रह की जरूरत होती है।

महाजन समझा जाने वाला वृद्धवर्ग क्या समय का विचार नहीं करेगा? रूढ़ि को समाज अथवा देश की उन्नति का साधन न गिन कर वह कहां तक उनका गुलाम बना रहेगा? अपने

बालकों को ज्ञान लेने देगा और फिर उन्हें उस ज्ञान का उपयोग करने से कब तक रोकेगा? धर्माधर्म का विचार करने वाले शिथिलता रखते हैं। शिथिलता छोड़ सावधान होकर, वे कब सच्चे महाजन होंगे।

—....—

बहिष्कार और विद्यार्थी

एक कॉलेज के प्रिंसिपल लिखते हैं:—

'बहिष्कार आन्दोलन के सञ्चालक विद्यार्थियों को अपने आन्दोलन में खींचे लिये जा रहे हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि इस आन्दोलन में विद्यार्थियों के काम की कीमत कोई एक कौड़ी भी नहीं समझेगा। जब लड़के अपने स्कूल और कालेज छोड़ कर किसी प्रदर्शन में शामिल होते हैं, तब वे वहां के हुल्लड़बाज लोगों में मिल जाते हैं, और बदमाशों की सभी कारिस्तानियों के लिये जिम्मेवार होते हैं तथा अक्सर पुलिस के डण्डे के पहले शिकार होते हैं। इसके अलावा उनके स्कूल या कॉलेज के अधिकारी उनसे रञ्ज हो जाते में, जिनकी दी सजा उन्हें सहनी ही पड़ती है, और वे अपने अभिभावकों की हुक्म उदूली करते हैं, और शायद उन्हें खर्च देने से इन्कार करदेवें और यों उनका सत्यानाश हो जा सकता है। मैं ऐसे युवक-आन्दोलन की बात समझ सकता हूँ कि लड़के छुट्टी के दिनों में अज्ञान किसानों को पढ़ाने, सफाई

के नियम सिखलाने इत्यादि कामों को करें। मगर यह देख कर तो कष्ट होता है कि वे अपने ही माँ-बाप और शिक्षक का विरोध करें, और बुरे लोगों के साथ घूमने निकल जायँ और नियम और शान्ति को भङ्ग करने में हाथ बटावें। क्या आप राजनीतिज्ञों को यह सलाह देंगे कि वे अपने प्रदर्शनों को ज्यादा बाअसर बनाने के लिये विद्यार्थियों को उनके योग्य काम से खींच न बुलावें। दरअसल इससे भी वे अपने प्रदर्शनों की कीमत घटा रहे हैं, क्योंकि सहज ही कहा जा सकता है कि यह तो स्वार्थी और मूर्ख आन्दोलकों के बहकाये नासमझ लड़कों का काम है।

"उनके वर्तमान राजनीति सीखने का विरोध मैं नहीं करता। यह तो बड़ी अच्छी बात होगी, अगर किसी सामयिक प्रश्नों पर अखबारों में दोनों ओर के छपे मत चुन कर शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ सुनावें और उन्हें अपना निर्णय आप करना सिखलावें। मैंने इस प्रयोग में सफलता पायी है। सच पूछिये तो विद्यार्थियों के लिये कोई विषय मना या अपाठ्य है ही नहीं। बर्टैण्ड रसेल और दूसरों का तो कहना है कि विद्यार्थियों को स्त्री पुरुष के सम्बन्ध की बातें भी बतलानी चाहिए। मैं जी-जान से विरोध करता हूं तो इस बात का, कि विद्यार्थियों को ऐसे काम में अस्त्र बना लिया जाय, जिससे न तो उनका कोई काम सधता है, और न उनसे काम लेने वालों का ही। पत्र-लेखक ने इस आशा से पत्र लिखा है कि मैं विद्यार्थियों के सक्रिय राजनीतिक कामों में शरीक होने का विरोध करूंगा। मगर मुझे उन्हें निराश करते हुए खेद होता

है। उन्हें यह जानना चाहिए था कि सन १६०८-२१ में विद्यार्थियों को उनके स्कूलों, कालेजों से बाहर निकाल कर राजनीतिक काम करने को कहने में जिसमें जेल जाने का भी खतरा था, मेरे हाथ कुछ कम नहीं था। मेरी समझ में अपने देश के राजनीतिक आन्दोलन में आगे बढ़कर हिस्सा लेना उनका स्पष्ट कर्तव्य है। सारे संसार के विद्यार्थी यह कर रहे हैं। हिन्दुस्तान में जहां कि हाल तक राजनीतिक जागृति महज थोड़े से अंग्रेजीदाँ लोगों तक परिमित थी, उनका यह और भी बड़ा कर्त्तव्य है। चीन और मिश्र में तो विद्यार्थियों की ही बदौलत राष्ट्रीय आन्दोलन चल सके हैं। हिन्दुस्तान में भी वे कुछ कम नहीं कर सकते।

प्रिंसिपल साहब इस बात पर जोर दे सकते थे कि विद्यार्थियों का अहिंसा के नियमों का पालन करना तथा हुल्लड़बाजों से शासित होने के बदले उन्हीं को काबू में रखना जरूरी है।

लड़की विद्यार्थियों से

जाफना के उडिविल गर्ल्स कालेज में भाषण देते हुये गांधीजी ने कहा:—

आज आप लोगों से मिल के सचमुच मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपके हृदय से इस छोटी भेंट देने के विचार की मैं प्रशंसा नहीं करता जोकि उस धन कोष में मग्न हो जायगी। बल्कि मैं

आपको एक ऐसा रचनात्मक उपाय बतलाता हूं जिससे आपका समस्त धन जनता के धन में मिल जायगा। आप अधिक विनम्र हैं इसलिए आप यह न चाहेंगे कि मैं यह अनुभव करूँ कि आपने मुझे कुछ दिया है। लेकिन हिन्दुस्तान की हजारों लड़कियों से मिलने के कारण अब मुझसे यह छिपा नहीं है कि वे कौन सा अच्छा कार्य कर सकती हैं।

कुछ ऐसी भी लड़कियां हैं जो मुझ से अपने उक्त कार्मों को भी बताने में संकोच नहीं करतीं जो बुरे हैं। मैं यह आशा करता हूँ कि आप में कोई ऐसी लड़की नहीं है जो कोई बुरा काम करती है। आपसे पूछने का मेरे पास समय नहीं है इस लिए मैं आप लोगों को प्रश्न करके परेशान न करूँगा। परन्तु यदि यहां पर कोई ऐसी लड़की है जो कोई बुरा कार्य करती है तो मैं उसे कहूँगा कि उसकी शिक्षा बेकार है।

आपके संरक्षक आपको स्कूल में गुडियां बनने की आशा से नहीं भेजते। यह समझना गलत है कि वे ही "दयानुजा" कही जाती हैं जो एक विशेष पोशाक पहनती है। ज्यों ही आप अपने सम्बन्ध में कम सोचकर अपने से गरीब और कम सौभाग्यशाली की चिन्ता करती हैं आप 'दयानुजा' हो जाती है। और आपने इस थैली में अपनी भेंट कर दयानुजा होने का कार्य किया है क्योंकि वह धन आप लोगों ने अपने से अभागे और गरीबों को दिया है।

किसी के लिये कोई छोटा सा काम करने की अपेक्षा थोड़ी-सी रकम देना तो बहुत सरल है। यदि आप उन गरीबों के लिये जिनको

यह पैसा दिया है कुछ अनुभव करती हैं तो एक कदम आगे बढ़िये और खादी पहनिये जिसे ये लोग तैयार करते हैं। जब खादी के सामने आने पर यदि आप यह कहती हैं कि बड़ी मोटी है हम इसे नहीं पहिन सकतीं। तो मेरे विचार से आपमें आत्मत्याग की भावना नहीं है।

यह इतनी अच्छी है कि इसमें ऊँच-नीच, छूत अछूत और कोई भेद नहीं है। यदि आपका हृदय उस दिशा में काम करता है और आप अपने से दूसरी लड़कियों को उच्च नहीं समझती तो बहुत ही अच्छी चीज है भगवान आपका भला करे।

एक लड़की की क्या आवश्यकताएँ हैं?

एक लड़की लिखती है:—

'निवारण किये जाने योग्य' शीर्षक आपका लेख मुझे अपूर्ण मालूम देता है। संरक्षकों को अपनी लड़कियों को विवाह करने के लिये क्यों बाध्य करते हैं और उसके लिये क्यों तरह तरह की कठिनाइयां सहन करते हैं। यदि संरक्षकों ने लड़कों की भांति अपनी लड़की को पढ़ाया होता जिससे कि वे अपनी जीविका अपने आप उपार्जन कर सकें तो उनको अपनी लड़की के लिये पति के चुनने में परेशानी न होती। मेरा निज का अनुभव है कि यदि लड़कियों को भली प्रकार विकास करने का मौका मिलता है और वे सम्मान पूर्वक अपनी जीविका उपार्जन कर लेती तो

विवाह की इच्छा होने पर उन्हें उपयुक्त वर मिलने में कठिनाई नहीं होती। मेरा यह मतलब नहीं कि लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा का समर्थन करती हूँ। मैं यह भी जानती हूं कि बहुत सी लड़कियों के लिये सम्भव नही, जो मैं कहना चाहती हूं वह यह कि लड़कियों को उपयोगी लगन और किसी पेशे की शिक्षा दी जाय जिससे उन्हें अपने ऊपर विश्वास हो जाय कि बिना अपने अभिभावक अथवा अपने पति पर निर्भर रहे, वे संसार का सामना कर सकती हैं। सचमुच मैं कुछ ऐसी लड़कियों को जानती हूं जिनके पतियों ने उन्हें त्याग दिया है और वे आज उन्हीं के साथ एक सम्मान पूर्ण जीवन बिता रही हैं। क्योंकि विच्छेद के उस अवधि में वे आत्म निर्भर हो सकीं। अच्छा होता कि आप विवाह योग्य लड़कियों के माता पिता की कठिनाइयों पर विचार करते हुये समस्या के इस पहलू पर भी प्रकाश डालते।

मैं उस लड़की के द्वारा प्रकट किये हुये विचार से पूर्णतया सहमत हूँ। मुझे एक ऐसे पिता की समस्या पर विचार करना था जिनकी कठिनाई यह नहीं थी कि उसकी लडकी अयोग्य है बल्कि यह थी कि वर निर्वाचन में वे और शायद उनकी लड़की भी अपनी जाति के भीतर ही सीमित रहना चाहते थे। इस मामले में लड़की की योग्यता ही रुकावट थी। यदि लड़की अपढ़ होती तो किसी भी युवक के साथ उसकी निभ सकती थी परन्तु सुयोग्य होने के कारण वह स्वभावतः उसे उतना ही योग्य पति जरूरी था। यह हमारा दुर्भाग्य है कि एक लड़की से विवाह करने के लिए

दहेज चाहना बुरी बात नहीं समझी जाती। अंग्रेजी शिक्षा के लिये एक कृत्रिम मूल्य माना जाता है। इसमें अनेक बुराइयां हैं। यदि योग्यता की परिभाषा उससे अधिक अच्छी होती, जैसी कि इस समय उच्चवर्ग के लोगों में हो गई है जिनके नवयुवक लड़कियों से विवाह करने के लिये दहेज स्वीकार करते हैं तो योग्य लड़कियों के लिये योग्य वर चुनने में कठिनाइयां यदि बिलकुल न मिट जाती तो कम जरूर हो जातीं। इस लिये जहां मैं अपनी पत्र-प्रेषिता के प्रस्ताव की ओर माता पिताओं का ध्यान दिलाता वहां मैं जाति बन्धन को तोड़ने की आवश्यकता पर भी जोर देता हूँ। इन बन्धनों के टूट जाने पर वर-निर्वाचन का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा और इस प्रकार दहेज की प्रचलित प्रथा कम हो जायगी।

आधुनिक युवतियाँ

ग्यारह लड़कियों की ओर से लिखा हुआ एक पत्र जिन पर उनका नाम और पता लिखा था मुझे मिला है। मैं उस पत्र के आशय में बिना हानि पहुँचाये हुये कुछ परिवर्तन के साथ उसे सुपाठ्य बना कर यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ।

एक महिला छात्र पत्र पर आपकी टिप्पणी जिसका शीर्षक विद्यार्थियों के लिए लज्जाजनक कार्य है और जो ३१ दिसम्बर सन् १९३८ के हरिजन के अंक में प्रकाशित हुई है विशेष रूप

से ध्यान देने और ऐसा जान पड़ता है कि हम कलकी लड़कियों से आप इस प्रकार क्षुब्ध हुये हैं कि उन्हें आधे दर्जन रोगियों के हृदयों से खेलने वाली जूलियट कहके खत्म कर दिया है। आप का यह कथन जिससे स्त्रियों को सम्बन्ध में आप के विचार मालूम होते हैं अधिक उत्साह जनक नहीं हैं।

आज कल स्त्रियां पुरुषों की सहायता के लिए और जीवन की जिम्मेदारियों में समान रूप से भाग लेने के लिए घरों की चहारदीवारियों से बाहर निकल रही हैं। फिर भी यदि पुरुषों के दुर्व्यवहार करने पर स्त्रियों को ही दोषी ठहराया जाय तो यह आश्चर्यजनक है। यह अवश्य है कि ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें दोष दोनों ही का बराबर है, कुछ ऐसी लड़कियां हो सकती हैं जो आधे दर्जन रोगियों के लिए जूलियट हो भी बहुत ऐसे उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट है कि आधे दर्जन रोगी पहिले ही से हैं जो जूलियट की खोज में सड़कों पर घूमा करते हैं। और यह भी नहीं कहा जा सकता और न कहना चाहिए कि आधुनिक लड़कियां जूलियट या सभी आधुनिक रोगी हैं। आप स्वंय बहुत सी आधुनिक लड़कियों के निकट सम्पर्क में आये हैं उनके निश्चय, त्याग और अन्य नारी गुणों का प्रभाव पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखने वाली लड़की ने जिस दुर्व्यवहार के विरुद्ध सार्वजनिक विरोध पैदा करने के लिए लिखा है वह ऐसा नहीं है जिसको निवारण करने की आवाज उठाने के लिए लड़कियां

कर सकती हों। यह नहीं कि झूठी लज्जा के कारण वे ऐसा नहीं कर सकती बल्कि वे यदि करें भी तो इसका प्रभाव न होगा।

परन्तु आप ऐसे विश्वमान्य व्यक्ति का यह वक्तव्य एक बार उस पुरानी और अनुपयुक्त कहावत बन के दुहरा देता है कि 'स्त्री नर्क की द्वार है।' पीछे, जो कहा गया है उससे कृपया यह न समझिये कि आधुनिक लड़कियों के हृदय में आपका सम्मान नहीं है। वे आप का उतना ही सम्मान करती हैं जिस तरह नव युवक करते हैं। उन्हें जिस बात पर क्षोभ होता है वह है उन पर घृणा करना या उन पर दया करना। यदि वे वास्तव में दोषी हैं तो अपने दोष को सुधारने के लिये तैयार रहती हैं। यदि, उनका कोई दोष है तो उस पर टीका टिप्पणी करने के पहले सिद्ध किया जाना चाहिये। इसके लिए वे न तो यह चाहती हैं कि वे स्त्री होने के नाते और न न्यायाधीश की एकमात्र भर्त्सना ही चुपचाप सुन सकती हैं। सत्य का सामना करना ही चाहिए। ये आधुनिक लड़कियां जिन्हें आप जूलियट कहते हैं उसका सामना करने का काफी साहस रखती हैं।

मेरे पास पत्र लिखने वालियों को कदाचित यह न मालूम होगा कि आज से चालीस वर्ष पूर्व जब कि शायद उन में से कोई पैदा भी नहीं हुई होंगी। मैंने दक्षिण अफ्रिका में भारतीय स्त्रियों की सेवा करना शुरु किया था। स्त्रीत्व के लिए अपमानजनक कोई बात लिखने में मैं बिल्कुल असमर्थ हूं। मैं स्त्रियों का इतना सम्मान करता हूं कि मैं यह सोच ही नहीं सकता कि उनमें कोई

बुराई है। जैसे कि अंग्रेजी में कहा गया है स्त्री मनुष्य की आधी अच्छाइयों का समूह है। मेरे लेख का उद्देश्य युवकों के लज्जा जनक कार्य को प्रकट करना था न कि लड़कियों की चंचलता का विज्ञापन। परंतु यदि ठीक इलाज वताने के लिए मैं रोग का निदान वताते समय रोग के तमाम कारणों को वताने के लिए वाध्य था।

आधुनिक लड़की से एक विशेष अर्थ बोध होता है। इस लिए उनमें कुछ के सम्वन्ध में मेरी आलोचना के क्षेत्र का सीमित करने का कोई प्रश्न नहीं था। परतु अंग्रेजी शिक्षा पाने वाली सभी लड़कियां आधुनिक लड़कियां नहीं कही जा सकतीं। मैं कितनी ऐसी लड़कियों को जानता हूं जो वर्तमान लड़की की भावना से विल्कुल अछूती हैं। परंतु कुछ ऐसी हैं जो पूरी तौर पर आधुनिक लड़कियां हो गई हैं। और कहने का अर्थ हिन्दुस्तानी लड़कियों को चेतावनी देना था जो कि आधुनिक लड़कियों की नकल करके एक विकट समस्या न पैदा करें। यह समस्या स्वयं ही जटिल हो चुकी है।

जिस समय उपर्युक्त पत्र मुझे प्राप्त हुआ था उसी समय एक आन्ध्र लड़की का भी पत्र मिला था जिसमें आन्ध विद्यार्थियों के दुर्व्यवहार की शिकायत की गई थी उस पत्र में जो वर्णन किया गया था वह लाहौर वाली द्वारा वर्णन किये हुए व्यवहार से भी खराव था। वह आन्ध्र लड़की वतलातीहै कि सादी पोशाक उनकी रक्षा नहीं कर सकती। परन्तु उसमें लड़के की

बर्बरता प्रकट करने के साहस की कमी है। इस संस्था को अपमानित करते हैं जिसके सदस्य हैं। मैं वह शिकायत आन्ध्र यूनीवर्सिटी के अधिकारियों के पास भेज रहा हूँ। उन लड़कियों में विद्यार्थियों के दुर्व्यवहार के विरुद्ध एक आन्दोलन के आरंभ करने के लिए प्रेरित करता हूँ। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता करते हैं। लड़कियों को मनुष्य के दुर्व्यवहार के विरुद्ध अपनी रक्षा की कला सीखनी चाहिए।

अहिंसा किसे कहें ?

"अहिंसा की चर्चा शुरू हुई नहीं कि कितने लोग बाघ, भेड़िया, साँप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, जूं, कुत्ता आदि को मारने न मारने अथवा आलू, बैंगन आदि को खाने न खाने की ही बात छेड़ते हैं।"

"नहीं तो फ़ौज रखी जा सकती है कि नहीं, सरकार के विरुद्ध सशस्त्र बलवा किया जा सकता है या नहीं,—आदि शास्त्रार्थ में उतरते हैं। यह तो कोई विचारता ही नहीं, सोचता ही नहीं कि शिक्षा में अहिंसा के कारण कैसी दृष्टि पैदा करनी चाहिये ? इस सम्बन्ध में कुछ विस्तार पूर्वक कहिये।"

यह प्रश्न नया नहीं है। मैंने इसकी चर्चा 'नवजीवन' में इस रूप में नहीं, तो दूसरे ही रूप में अनेकों बार की है। किन्तु मैं देखता हूं कि अब तक यह सवाल हल नहीं हुआ है। इसे हल

करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। उसके हल में यत्किञ्चित हिस्सा दे सकूं, तो उतने से ही मैं अपने आपको कृतार्थ मानूंगा।

प्रश्न का पहला भाग हमारी संकुचित दृष्टि का सूचक है। जान पड़ता है कि इस फेर में पड़ कर कि मनुष्येतर प्राणियों को मारना चाहिये या नहीं. हम अपने सामने पड़े हुए रोज के धर्म को भूल जाते हुए से लगते हैं। सर्पादि को मारने के प्रसंग सबको नहीं पड़ते हैं। उन्हें न मारने योग्य दया या हिम्मत हमने नहीं पैदा की है। अपने में रहने वाले क्रोधादि सर्पों को हमने दया से, प्रेम से नहीं जीता है, मगर तो भी हम सर्पादि की हिंसा की बात छेड़ कर उभयभ्रष्ट होते हैं। क्रोधादि को तो जीतते नहीं, और सर्पादि को न मारने की शक्ति से वञ्चित रह कर आत्मवञ्चना करते हैं। अहिंसा-धर्म का पालन करने की इच्छा रखने वालों को साँप आदि को भूल जाने की जरूरत है। उन्हें मारने से हाल में न छूट सकें तो इसका दुख न मानते हुए, सार्वभौम प्रेम पैदा करने की पहली सीढ़ी के रूप में मनुष्यों के क्रोध द्वेषादि को सहन कर उन्हें जीतने का प्रयत्न करें।

आलू और बैंगन जिसे न खाने हों, वह न खाय। मगर यह बात कहते हुए भी हम लज्जित होवें कि उसे न खाने में महापुण्य है या उसमें अहिंसा का पालन है। अहिंसा खाद्याखाद्य के विषय से परे है। संयम की आवश्यकता सदा है। खाद्य पदार्थों में जितना त्याग करना हो, उतना सभी कोई करें। वह त्याग भला है, आवश्यक है। मगर उसमें अहिंसा तो नाममात्र को ही है।

पर-पीड़ा देख कर दया से पीड़ित होने वाला, राग-द्वेषादि से दूर, नित्य कन्द मूलादि खाने वाला आदमी अहिंसा की मूर्तिरूप और वन्दनीय है। पर पीड़ा के सम्बन्ध में उदासीन, स्वार्थ का वशवर्ती दूसरों को पीड़ा देने वाला, राग-द्वेषादि से भरा हुआ, कन्द-मूलादि का हमेशा के लिये त्याग करने वाला मनुष्य तुच्छ प्राणी है, अहिंसा देवी उससे भागती ही फिरती है।

राष्ट्र में फ़ौज का स्थान हो सकता है या नहीं, सरकार के विरुद्ध शरीर-बल लगाया जा सकता है या नहीं—ये अवश्य महा-प्रश्न हैं और किसी दिन हमें इनको हल करना ही होगा। कहा जा सकता है कि महासभा ने अपने काम के लिये उसके एक अङ्ग को हल किया है, तो भी यह प्रश्न जन-साधारण के लिये आवश्यक नहीं है। इसलिये शिक्षा के प्रेमी और विद्यार्थी के लिये अहिंसा की जो दृष्टि है, वह मेरी राय में ऊपर के दोनों प्रश्नों से भिन्न है अथवा परे है। शिक्षा में जो दृष्टि पैदा करनी है, वह परस्पर के नित्य सम्बन्ध की है। जहाँ वातावरण अहिंसा रूपी प्राणवायु के जरिये स्वच्छ और सुगन्धित हो चुका है, वहां पर विद्यार्थी और विद्यार्थिनियां सगे भाई बहिन के समान विचरती होंगी। वहां विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध होगा, एक दूसरे के प्रति आदर होगा। ऐसी स्वच्छ वायु ही अहिंसा का नित्य, सतत पदार्थ पाठ है। ऐसे अहिंसामय वातावरण में पले हुए विद्यार्थी निरन्तर सब के प्रति उदार होंगे, वे सहज ही समाज-सेवा के लिये लायक होंगे। उनके लिये सामाजिक बुराइयों, दोषों

का अलग प्रश्न नहीं होगा। अहिंसा रूपी अग्नि में यह भस्म हो गया होगा, अहिंसा के वातावरण में पला हुआ विद्यार्थी क्या बाल-विवाह करेगा? अथवा कन्या के माँ-बाप को दण्ड देगा? अथवा विवाह करने के बाद अपनी पत्नी को दासी गिनेगा? अथवा उसे अपने विषय का भाजन मानेगा, और अपने को अहिंसक मनवाता फिरेगा? अथवा ऐसे वातावरण में शिक्षित युवक सहधर्मी या परधर्मी के साथ लड़ाई लड़ेगा।

अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। यह भीरु से भी दूर-दूर भागती है। यह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतनमय है, यह आत्मा का विशेष गुण है। इसी लिये इसका वर्णन परम धर्म के रूपमें किया गया है, इसलिए शिक्षा में अहिंसा की दृष्टि है, और शिक्षण के प्रत्येक अङ्ग में नित्य, कया, लगता हुआ, उछलता उभराता, शुद्धतम प्रेम। इस प्रेम के सामने वैर-भाव टिक ही नहीं सकता। अहिंसारूपी प्रेम सूर्य है, वैर-भाव घोर अन्धकार है। जो सूर्य टोकरे के नीचे छिपाया जा सके तो शिक्षा में रही हुई अहिंसा दृष्टि भी छिपाई जा सकती है। ऐसी अहिंसा अगर विद्यापीठ में प्रगट होगी, तो फिर वहां अहिंसा की परिभाषा किसी के लिये पूछनी आवश्यक ही नहीं होगी।

यह क्या अहिंसा नहीं है ?

अन्नामलाई यूनिवर्सिटी के एक शिक्षक का पत्र मुझे मिला है जिसमें वह लिखते हैं:—

"गत नवम्बर की बात है, पांच या छः विद्यार्थियों के एक समूह ने संगठित रूप से यूनिवर्सिटी यूनियन के सेक्रेटरी—अपने ही साथी-एक विद्यार्थी पर हमला किया है। यूनिवर्सिटी के चांसलर श्री श्रीनिवास शास्त्री ने इस पर सख्त ऐतराज किया और उस समूह के नेता को यूनिवर्सिटी से निकाल दिया तथ बाकी को यूनिवर्सिटी के इस तालीमी साल के अन्त तक पढ़ाई में शामिल न करने की सजा दी।

सजा पाने वाले इन विद्यार्थियों से सहानुभूति रखने वाले इनके कुछ मित्रों ने इस पर क्लासों से गैरहाजिर रह कर हड़ताल करना चाहा। दूसरे दिन उन्होंने अन्य विद्यार्थियों से सलाह की और उन्हें भी इसके विरोध स्वरूप हड़ताल करने के लिए सम झाया बुझाया। लेकिन इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली, क्योंकि विद्यार्थियों के बहुमत को लगा कि छः विद्यार्थियों को जो सजा दी गई है वह ठीक ही है, और इस लिए उन्होंने हड़तालियों का साथ देने या उनके प्रति किसी तरह की हमदर्दी जाहिर करने से इन्कार कर दिया।

इस लिये दूसरे दिन कोई २० फीसदी विद्यार्थी पढ़ने नहीं आये, बाकी ८० फीसदी हस्बमामूल हाजिर रहे। यहां यह बत

देना ठीक होगा कि इस यूनिवर्सिटी में कुल ८०० के करीब विद्यार्थी हैं।

अब वह निकाला हुआ विद्यार्थी होस्टल में आया और हड़ताल का संचालन करने लगा। हड़ताल को नाकामयाब होते देख शाम के वक्त उसने दूसरे साधनों का सहारा लिया। जैसे उदाहरण के लिए होस्टल के चार मुख्य रास्तों पर लेट जाना, होस्टल के कुछ दरवाजों को बन्द कर देना, और कुछ छोटे लड़कों को खास कर निचले दर्जे के बच्चों को, जिनको कि अपनी बात मानने के लिये डराया, धमकाया जा सकता है, उनको कमरों में बन्द कर देना आदि, इससे तीसरे पहर कोई पचास-साठ व्यक्ति बाकी विद्यार्थियों को होस्टल के बाहर आने से रोकने में सफल हो गये।

अधिकारियों ने इस तरह दरवाजे बन्द देखकर 'फेनसिंग' को खोलना चाहा। जब यूनिवर्सिटी के नौकरों की मदद से वे फेनसिंग को हटाने लगे, तो हड़तालियों ने उससे बने हुए रास्तों पर पहुँच कर दूसरों को उधर से निकल कर कालेज जाने से रोका। अधिकारियों ने धरना देने वालों को पकड़ कर रोका, कामयाब न हो सके। तब परिस्थिति को अपने काबू से बाहर पाकर उन्होंने इस सब गड़बड़ की जड़ उस निकाले हुए विद्यार्थी को होस्टल की हद से हटाने की पुलिस से प्रार्थना की। जिस पर पुलिस ने उसे वहां से हटा दिया इस पर स्वभावतः कुछ और विद्यार्थी भी खीज उठे, और हड़तालियों के प्रति सहानुभूति दिखलाने लगे। अगले सवेरे हड़तालियों को होस्टल की सारी फेनसिंग हटाई हुई मिली। तब

वे कालेज की हद में घुस गये, और पढ़ाई के कमरे में जाने वाले रास्तों पर लेट कर धरना देने लगे। तब श्री श्रीनिवास शास्त्री ने डेढ़ महीने की लम्बी छुट्टी करके २६ नवम्बर से १६ जनवरी तक के लिये यूनिवर्सिटी को बन्द कर दिया।

अखबारों को उन्होंने एक वक्तव्य देकर विद्यार्थियों से अपील की कि वे छुट्टी के बाद घर से शिष्ट और सुखद भावनाओं के साथ पढ़ने के लिये आयें।

लेकिन कालेज के फिर से खुलने पर इन विद्यार्थियों की हलचल औरभी तेज होगई, क्योंकि छुट्टियों में इन्हें........ से और सलाह मिल गई थी। मालूम पड़ता है कि वे राजा जी के पास भी गये थे, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर वाइस चांसलर का हुक्म मानने के लिए कहा। उन्होंने वाइस चांसलर की मारफत हड़तालियो को दो तार भी दिये, जिनमें उनसे हड़ताल बन्द करके शान्ति के साथ पढ़ाई शुरू कर देने की प्रार्थना की।

अच्छे विद्यार्थियों के सामान्य बहुमत पर हालांकि इन तारों का अच्छा असर पड़ा, मगर हड़तालिये अपनी बात पर अड़े रहे। धरना देना अभी भी जारी है, यह तो लगभग मामूली हो गया है। इन हड़तालियों की तादाद ३५-४५ के करीब है। और लगभग ५० इनसे सहानुभूति रखने वाले ऐसे हैं जो सामने आकर हड़ताल करने का साहस तो नहीं रखते, पर अन्दर ही अन्दर गड़बड़ मचाते रहते हैं।

ये रोज इकट्ठे होकर जाते हैं, और क्लासों के दरवाजों पर व पहली मंजिल की क्लासों पर जाने वाले जीने पर लेट जाते और इस तरह विद्यार्थियों को क्लासों में जाने से रोकते हैं; लेकिन शिक्षक दूसरी ऐसी जगह जाकर पढ़ाई शुरू कर देते हैं कि जहाँ धरना देने वाले उनसे पहिले नहीं पहुँच पाते। नतीजा यह होता है कि हर घन्टे पढ़ाई का स्थान यहां से वहाँ बदलना पड़ता है, और कभी-कभी तो खुली जगह में पढ़ाना पड़ता है, जहाँ कि धरना देने वाले लेट नहीं सकते। ऐसे अवसरों पर वे शोर गुल मचाकर पढ़ाई में विघ्न डालते हैं, और कभी-कभी अपने शिक्षकों का व्याख्यान सुनते हुये विद्यार्थियों को परेशान कर डालते हैं।

कल एक नई बात हुई। हड़तालिये क्लासों में घुस आये और लेट कर चिल्लाने लगे। और कुछ हड़तालियों ने तो, मैंने सुना, शिक्षक के आने से पहले ही बोर्डों पर लिखना भी शुरू कर दिया था। कमजोर शिक्षक अगर कहीं मिल जाते, तो इनमें से कुछ हड़तालिये इन्हें भी डराने फुसलाने की कोशिश करते। सच तो यह है कि वाइस चांसलर को भी यह धमकी दी थी कि अगर उन्होंने हमारी मांगें मंजूर नहीं कीं, तो "हिंसा और रक्तपात" का सहारा लिया जायगा।

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मुझे आपको कहनी चाहिए वह यह है कि हड़तालियों को नगर से कुछ बाहरी आदमी मिल जाते हैं, जो यूनिवर्सिटी के अन्दर घुसने के लिए गुण्डों को भाड़े

पर लाते हैं। असलियत तो यह है कि मैंने बहुत से ऐसे गुन्डों और दूसरे आदमियों को, जो कि विद्यार्थी नहीं हैं बरामदे के अन्दर और दूसरी क्लासों के कमरों के पास भी घूमते हुए देखा है। इसके अलावा विद्यार्थी वाइस चाँसलर के बारे में अपशब्दों का भी व्यवहार करते हैं।

अब जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ वह यह है—हम सब याने कई शिक्षक और विद्यार्थियों की भी एक बड़ी तादाद यह महसूस कर रहे हैं कि ये प्रवृत्तियाँ सत्यपूर्ण और अहिंसात्मक नहीं है, और इस लिये सत्याग्रह की भावना के विरुद्ध हैं।

मुझे विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि कुछ हड़तालिये विद्यार्थी इसे अहिंसा ही कहते हैं। उनका कहना है कि अगर महात्मा जी यह घोषणा करदें कि यह अहिंसा नहीं है तो हम इन प्रवृत्तियों को बन्द कर देंगे।

यह पत्र १७ फरवरी का है, और काका कालेलकर को लिखा गया है, जिन्हें कि वह शिक्षक अच्छी तरह जानते हैं। इसके जिस अंश को मैंने नहीं छापा, उसमें इस बारे में काका साहब की राय पूछी गई है कि विद्यार्थियों के इस आचरण को क्या अहिंसामय कहा जा सकता है और भारत के कितने ही विद्यार्थियों में अवज्ञा की जो भावना आगई है, इस पर अफसोस जाहिर किया गया है।

पत्र में उन लोगों के नाम भी दिये गये हैं, जो हड़तालियों को अपनी बात पर अड़े रहने के लिये उत्तेजना दे रहे हैं। हड़ताल

के बारे में मेरी राय प्रकाशित होने पर किसी ने, जो स्पष्टतया कोई विद्यार्थी ही मालूम पड़ता है, मुझे एक गुस्से से भरा तार भेजा है कि हड़तालियों का व्यवहार पूर्ण अहिंसात्मक है। लेकिन ऊपर जो विवरण मैंने उद्धृत किया है, वह अगर सच है तो मुझे यह कहने में कोई पशोपेश नहीं है कि विद्यार्थियों का व्यवहार सचमुच अहिंसात्मक है। अगर कोई मेरे घर का रास्ता रोक दे, तो निश्चय ही उसकी हिंसा वैसी ही कारगर होगी, जैसे दरवाजे के बल-प्रयोग द्वारा मुझे धक्का देने में होती।

विद्यार्थियों को अगर अपने शिक्षकों के खिलाफ सचमुच कोई शिकायत है, तो उन्हें हड़ताल ही नहीं, बल्कि अपने स्कूल या कालेज पर धरना देने का भी हक़ है, लेकिन इसी हद तक कि पढ़ने के लिये जाने वालों से विनम्रता के साथ न जाने की प्रार्थना करें। बोलकर या पर्चे बाँटकर वे ऐसा कर सकते हैं। लेकिन उन्हें रास्ता नहीं रोकना चाहिए, न कोई उन पर अनुचित दबाव ही डालना चाहिए, जो कि हड़ताल नहीं करना चाहते।

और हड़ताल भला विद्यार्थियों ने की किसके खिलाफ़? श्री श्रीनिवास शास्त्री भारत के एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षक के रूप में उनकी तभी से ख्याति रही है, जब कि इनमें से बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदा ही नहीं हुए थे या अपनी किशोरावस्था में ही थे। उनकी महान् विद्वत्ता और उनके चरित्र की श्रेष्ठता दोनों ही ऐसी चीजें हैं कि जिनके कारण संसार की कोई भी यूनिवर्सिटी उन्हें अपना वाइस चांसलर बनाने में गौरव ही अनुभव करेगी।

काका साहब को पत्र लिखने वाले ने अगर अन्नामलाई यूनीवर्सिटी की घटनाओं का सही विवरण दिया है, तो मुझे लगता है कि शास्त्रीजी ने जिस तरह परिस्थिति को सँभाला, वह बिल्कुल ठीक है। मेरी राय में विद्यार्थी अपने आचरण से खुद अपनी ही हानि कर रहे हैं। मैं तो उस मत का मानने वाला हूं, जो शिक्षकों के प्रति श्रद्धा रखने में विश्वास करता है। यह तो मैं समझ सकता हूँ कि जिस स्कूल के शिक्षक के प्रति मेरे मन में सम्मान भाव पैदा न हो, उसमें मैं न जाऊँ, लेकिन अपने शिक्षकों की बेइज्जती या उनकी अवज्ञा को मैं नहीं समझ सकता। ऐसा आचरण तो असज्जनोचित है, और असज्जनता सभी हिंसा है।

———

धार्मिक शिक्षा

गुजरात विद्यापीठ का एक विद्यार्थी लिखता है—

विद्यापीठ में धार्मिक शिक्षा का क्या स्वरूप हो ?

मेरे निकट में धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा अथवा एक मात्र सत्य है। क्यों कि अहिंसा सत्यके अन्तर्गत है। अहिंसा सत्य की खोज का अनिवार्य साधन है। इसलिये कुछ भी इस गुणों के अभ्यास को बढ़ाती है। इसका मतलब यह है कि वह धार्मिक शिक्षा देने का साधन है और मेरे राय में इसका सब से अच्छा उपाय यह है कि अध्यापक इन गुणों का स्वयं ही

अभ्यास करें। उनके सम्पर्क से लड़कों को चाहे वह खेल के मैदान में हों अथवा कक्षा में इन मौलिक गुणों की शिक्षा का प्रसार होगा।

धर्म की सार्वभौमिक आवश्यकता की शिक्षा के सम्बन्ध में इतना काफी है। धार्मिक शिक्षा के पाठ्य क्रम में अपने धर्मके अतिरिक्त दूसरे धर्मों के तत्त्वों का अध्ययन भी शामिल होना चाहिए। इसके लिये विद्यार्थियों को संसार के विभिन्न श्रेष्ठ धर्मों के सिद्धान्तों को समझने और उनकी प्रशंसा करने की आदत डालने की शिक्षा दी जानी चाहिए। यदि यह अच्छी तरह से किया जाय तो उन्हें आध्यात्मिक विश्वास और अपने धर्म की उचित प्रशंसा करने में सहायता मिलेगी। सभी श्रेष्ठ धर्मों का अध्ययन करते समय एक नियम याद रखना चाहिये कि उसधर्म का अध्ययन उसी धर्म के प्रसिद्ध समर्थक की पुस्तक से किया जाय। उदाहरण के लिये यदि कोई भागवत् का अध्ययन करना चाहे तो उसे किसी विरोधी आलोचक के रचे हुए अनुवाद द्वारा नहीं, वरन् भागवत् प्रेमी द्वारा रचे ग्रन्थों से करना चाहिये। वैसे ही बाइबिल के अध्ययन के लिये ईसाई धर्म के भक्तों द्वारा रचित भाष्य को पढ़ना चाहिये। अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का अध्ययन करने से सभी धर्मों की मूलएकता को समझने में सहायता मिलेगी और इस सर्व भौमिक और पूर्ण सत्य की एक झलक पैदा करेगी जो धर्म और जाति से परे है किसी को एक क्षण के लिये भी यह संदेह न करना चाहिये

कि दूसरे धर्मों का गहन अध्ययन अपने धार्मिक विश्वास को डिगा देगा। हिन्दू दर्शन शास्त्र के अनुसार सभी धर्मों में सत्य का अंश है और वह सभी धर्मों का सम्मान और श्रद्धा करता है। निसन्देह इसमें अपने धर्म के प्रति सम्मान की भावना पहिले ही होती है। दूसरे धर्मों का गुण बोध और अध्ययन उस सम्मान की कमजोरी का कारण नहीं होता। इसका अर्थ है दूसरे धर्मों के लिए भी विकसित हो जाय।

इस पहलू से धर्म और संस्कृति एक ही स्थिति में है। जैसे अपनी संस्कृति की रक्षा का अर्थ यह नहीं कि दूसरे की संस्कृति के प्रति घृणा नहीं है बल्कि दूसरी संस्कृति की अच्छी बातों को अपने में मिलाना है। वैसे ही धर्म के साथ भी है।

हमारा वर्तमान भय और शंकायें देश में पीढियों के दूषित वायुमंण्डल की परिभाषा हैं। जो पूर्ण घृणा, दुर्भाव और अविश्वास से पूर्ण है। हमें सदा इस बात का भय लगा रहता है कि कहीं कोई गुप्त रीति से हमारे धर्म को या हमारे प्रियजनों के धर्म को नीचा न दिखादे। परन्तु यह अस्वाभाविक स्थिति तब दूर हो जायगी जब हम दूसरे धर्मों और उनके अनुयायिओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की भावना विकसित कर लेंगे।

विद्यार्थी और गीता

उस दिन एक पादरी मित्र ने बातों-बातों में मुझ से पूछा—"अगर हिन्दुस्तान सचमुच ही आध्यात्मिक देश है, तो फिर यहाँ पर बहुत ही थोड़े विद्यार्थी क्यों अपने धर्म को या गीता को ही जानते हैं?" वे खुद शिक्षक हैं। इसके समर्थन में उन्होंने कहा, मैं खास कर हर विद्यार्थी से पूछता हूँ कि तुम्हें अपने धर्म का या भगवद्‌गीता का कुछ ज्ञान है? उनमें से बहुत अधिक तो इसमें कोरे ही मिलते हैं।

मैं यहां इस निर्णय पर चर्चा नहीं करना चाहता कि चूंकि कुछ विद्यार्थियों को अपने धर्म का कुछ ज्ञान नहीं है, इस लिये हिन्दुस्तान आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत देश नहीं है। मैं तो इतना ही भर कहूँगा कि विद्यार्थियों के धर्मशास्त्रों के अज्ञान से यह निष्कर्ष निकलना जरूरी नहीं है कि उस समाज में जिससे वे विद्यार्थी आये हैं, धार्मिक-जीवन या आध्यात्मिकता है ही नहीं। मगर इसमें कोई शक नहीं कि सरकारी स्कूल, कालेजों के निकले हुए अधिकतर लड़के धार्मिक शिक्षण से कोरे ही होते हैं। पादरी साहब का इशारा मैसूर के विद्यार्थियों की तरफ था। मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मैसूर के विद्यार्थियों को राज्य के स्कूलों में कोई धार्मिक शिक्षण नहीं दिया जाता। मैं जानता हूं कि इस विचार वाले लोग भी हैं कि सार्वजनिक स्कूलों में सिर्फ अपने-अपने विषयों की ही शिक्षा देनी चाहिए। मैं यह भी जानता हूं

कि हिन्दुस्तान जैसे देश में, जहां पर संसार के अधिकतर धर्मों के अनुयायी मिलते हैं, और जहाँ एक ही धर्म के इतने भेद-उपभेद हैं, धार्मिक शिक्षण का प्रबन्ध करना कठिन होगा। मगर अगर हिन्दुस्तान को आध्यात्मिकता का दिवाला नहीं निकालना है, तो उसे धार्मिक शिक्षा को भी वैयक्तिक शिक्षण के बराबर ही महत्व देना पड़ेगा। यह सच है कि धार्मिक पुस्तकों के ज्ञान की तुलना धर्म से नहीं की जा सकती, मगर जब हमें धर्म नहीं मिल सकता, तो हमें अपने लड़कों को उससे उतर कर दूसरी ही वस्तु देने में सन्तोष मानना ही पड़ेगा; और फिर स्कूलों में ऐसी शिक्षा दी जाय या नहीं? मगर सयाने लड़कों को तो जैसे और विषयों में, वैसे धार्मिक विषय में भी स्वावलम्बन की आदत डालनी ही पड़ेगी। जैसे कि आज उनकी वाद विवाद या चर्खा-समितियाँ हैं, वे आप ही अपने धार्मिक वर्ग खोलें।

शिमोगा में कौलिजियट हाई स्कूल के लड़कों से भाषण करते समय पूछने पर मुझे पता चला कि कोई १०० हिन्दू लड़कों में मुश्किल से आठ ने भगवद्गीता पढ़ी थी। यह पूछने पर कि उनमें से भी कोई गीता का अर्थ समझता है कि नहीं, एक भी हाथ नहीं उठा। ५-६ मुसलमान विद्यार्थियों में से एक-एक ने कुरान पढ़ा था, मगर अर्थ समझने का दावा तो सिर्फ एक ही कर सका। मेरी समझ में तो गीता बहुत ही सरल ग्रन्थ है। जरूर ही इसमें कुछ मौलिक प्रश्न आते हैं, जिन्हें हल करना बेशक मुश्किल है, मगर गीता की साधारण शिक्षा को न समझना असम्भव है। इसे

सभी सम्प्रदाय प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। इसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं है। थोड़े में यह सम्पूर्ण संयुक्त नीतिशास्त्र है, यों यह दार्शनिक और भक्ति-विषयक ग्रन्थ दोनों ही है। इससे सभी कोई लाभ उठा सकते हैं। भाषा तो अत्यन्त ही सरल है, मगर तो भी मैं समझता हूँ कि हर प्रान्तीय भाषा में इसका एक प्रामाणिक अनुवाद होना चाहिये, और यह अनुवाद ऐसा हो, जिससे गीता की शिक्षा सर्व साधारण की समझ में आ सके। मेरी यह सलाह गीता के बदले में दूसरी किताब रखने की नहीं है क्योंकि मैं अपनी यह राय दुहराता हूं कि हर हिन्दू लड़के और लड़की को संस्कृत जानना चाहिये। मगर अभी तो कई जमानों तक करोड़ों आदमी संस्कृत से कोरे ही रहेंगे। केवल संस्कृत न जानने के कारण गीता की शिक्षा से वंचित रखना तो आत्मघात करना होगा।

हिन्दू विद्यार्थी और गीता

(मन्नारगुडी के विद्यार्थियों के आगे दिये गांधी जी के भाषण का एक अंश)

"तुम अपने मान-पत्र में कहते हो कि मेरे जैसा तुम रोज ही बाईबिल पढ़ते हो। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं रोज बाईबिल पढ़ता हूं, मगर यह कह सकता हूँ कि मैंने नम्रता और भक्ति से बाइबिल पढ़ी है। और अगर तुम भी उसी भाव से बाइबिल

पढ़ते हो, तो यह अच्छा ही है। मगर मेरा अनुमान है कि तुम में से अधिकांश लड़के हिन्दू हों, क्या ही अच्छा होता अगर तुम कह सकते हो कि तुम में से हिन्दू लड़के रोज ही गीता का पाठ आध्यात्मिकता पाने के लिये करते हैं। क्योंकि मेरा विश्वास है कि संसार के सभी धर्म कमोवेश सच्चे हैं। मैं कमोवेश इस लिये कहता हूँ कि जो कुछ आदमी छूते हैं, उनकी अपूर्णता से वह भी अपूर्ण हो जाता है। पूर्णता तो केवल ईश्वर का ही गुण है, और इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, तर्जुमा नहीं किया जा सकता। मेरा विश्वास है कि हर एक आदमी के लिये ईश्वर जैसा ही पूर्ण बन जाना सम्भव है। हम सब के लिये पूर्णता की उच्चाभिलाषा रखनी जरूरी है, मगर जब उस स्थिति पर हम पहुँच जाते हैं। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह समझायी नहीं जा सकती, इस लिये पूरी नम्रता से मैं मानता हूँ कि वेद, कुरान और बाइबिल ईश्वर के अपूर्ण शब्द हैं, और हम जैसे अपूर्ण प्राणी हैं, अनेक विषयों से इधर उधर डोलते रहते हैं। हमारे लिए ईश्वर का यह शब्द पूरा-पूरा समझना भी असम्भव है, और मैं इसीलिए हिन्दू लड़कों से कहता हूं कि तुम जिस परम्परा में पले हो, उसे उखाड़ मत फेंको जैसा कि मैं मुसलमान या इसाई बालकों से कहूँगा कि तुम अपनी परम्परा से सम्बन्ध न तोड़ डालो। इसलिए जब कि मैं तुम्हारे कुरान या बाइबिल पढ़ने का स्वागत करूँगा, मैं तुम सब हिन्दू लड़कों पर गीता पढ़ने के लिये जोर डालूँगा, अगर मैं जोर डाल सकता हूँ तो मेरा विश्वास है कि लड़कों में

हम जो अपवित्रता पाते हैं, जीवन की आवश्यक बातों के बारे में जो लापरवाही देखते हैं. जीवन के सबसे बड़े और परमावश्यक प्रश्नों पर वे जिस ढिलाई से विचार करते हैं, उसका कारण है उनकी वह परम्परा नष्ट हो जानी; जिससे अब तक उन्हें पोषण मिलता आया था।

मगर कोई ग़लतफ़हमी न होने पावे। मैं यह नहीं मानता कि केवल पुरानी होने से ही सभी पुरानी बातें अच्छी हैं। प्राचीन परम्परा के सामने ईश्वर की दी हुई तर्कबुद्धि का त्याग करने को मैं नहीं कहता चाहे कोई परम्परा हो, मगर नीति के विरुद्ध होने पर वह त्याज्य है। अस्पृश्यता शायद पुरानी परम्परा मानी जावे। बाल-वैधव्य, बाल विवाह और दूसरे कई बीभत्स विश्वास तथा वहम शायद पुरानी परम्परा के माने जायँ। अगर मुझ में ताक़त होती, तो मैं उन्हें धो बहाता, इसलिये शायद तुम अब समझ सकोगे कि मैं जब पुरानी परम्परा की इज्जत करने को कहता हूँ, तो मेरा क्या मतलब है? और चूंकि मैं उसी परमात्मा को भगवद्गीता में देखता हूं, जिसे बाइबिल और क़ुरान में। मैं हिन्दू बालकों को गीता पढ़ने को कहता हूँ, क्योंकि गीता के साथ उनका मेल और किसी दूसरी पुस्तक से कहीं अधिक होगा।

गीता पर उपदेश

आनन्द ध्रुवजी ने आज्ञा दी है कि गीता माता के बारे में कुछ कहना होगा। उनके और मालवीय जी के सामने जो गीता को घोंटकर पी गये हैं, मैं क्या कह सकता हूं। परन्तु मेरे जैसे आदमी पर गीता माता का क्या प्रभाव पड़ा है यह बतलाने के लिये मैं कुछ कहता हूं। ईसाई के लिये बाइबिल है, मुसलमान के लिये कुरान है और हिन्दुओं के लिये किसको कहें, स्मृति को कहें या पुराण को कहें? २२-२३ साल की उम्र में मुझे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। मालूम हुआ कि वेदों का अभ्यास करने के लिये पन्द्रह वर्ष चाहिये, पर इसके लिये मैं तैयार नहीं था। मुझे मालूम हुआ, मैंने कहीं पढ़ा था कि गीता सब शास्त्रों का दोहन है, कामधेनु है। मुझे बतलाया गया कि उपनिषद आदि का निचोड़ ७०० श्लोकों में आ गया है। थोड़ी संस्कृत की शिक्षा थी, मैंने सोचा कि यह तो सरल उपाय है। मैंने अध्ययन किया और मेरे लिये वह बाइबिल, कुरान नहीं रही, माता बन गयी। प्राकृतिक माता नहीं, ऐसी माता जो मेरे चले जाने पर भी रहेगी, उसके करोड़ों लड़के लड़कियाँ बिना आपस के द्वेष के उसका दुग्ध पान कर सकते हैं। पीड़ा के समय वे माता की गोद में बैठ सकते हैं और पूछ सकते हैं कि यह सङ्कट आ गया है, मैं क्या करूँ और माता ज्ञान बता देगी। अस्पृश्यता के सम्बन्ध में भी मेरे ऊपर कितना हमला होता है, कितने लोग विपरीत हैं। मैं माता से पूछता हूँ, क्या करूँ? वेद आदि तो पढ़ नहीं सकता।

वह कहती है, नवाँ अध्याय पढ़ ले। माता कहती है, मैं तो उन्हीं के लिये पैदा हुई हूं, मैं तो पतितों के लिये हूँ। इस तरह आश्वासन वे ही पा सकते हैं सच्चे मातृ भक्त हैं। जो सब उसी में से पान करना चाहते हैं वह उनके लिये कामधेनु हैं। कोई-कोई कहते हैं कि गीता माता बहुत गूढ़ ग्रन्थ है। लोकमान्य तिलक के लिये वह गूढ़ ग्रन्थ भले ही हो, पर मेरे लिये तो इतना ही काफी है। पहला, दूसरा और तीसरा अध्याय पढ़ लीजिये, बाकी में तो इसमें की बातों का दुहराना मात्र है। इसमें भी थोड़े से श्लोकों में सभी बातों का समावेश है और सब से सरल गीता माता में तीन जगह कहा है कि जो सब चीजों को छोड़ कर मेरी गोद में बैठ जाते हैं, उन्हें निराशा का स्थान नहीं, आनन्द ही आनन्द है। गीता माता कहती है कि पुरुषार्थ करो, फल मुझे सौंप दो। ऐसी मोटी,मोटी बातें मैंने गीता माता से पाई। यह भक्ति से पाना असम्भव है। मैं रोज-रोज उससे कुछ न कुछ प्राप्त करता हूँ, इसलिये मुझे निराशा कभी नहीं होती। दुनिया कहती है कि अस्पृश्यता आन्दोलन ठीक नहीं, गीता माता कह देती है कि ठीक है। आप लोग प्रतिदिन सुबह गीता का पाठ करें। यह सर्वोपरि है। १८ अध्याय कण्ठ करना बड़े परिश्रम की बात नहीं। जंगल में या कारागार में चले गये, तो कण्ठ करने से गीता साथ जायगी। प्राणान्त के समय जब आंखें काम नहीं देती, केवल थोड़ी बुद्धि रह जाती है, तो गीता से ही ब्रह्म-निर्वाण मिल जा सकता है। आपने जो मानपत्र और रुपया दिया है और

आप लोग हरिजनों के लिये जो कर रहे हैं, उसके लिये धन्यवाद देता हूं, पर इतने से मुझे सन्तोष नहीं। मैं सोचता हूं कि यहां इतने अध्यापक और लड़के लड़कियां हैं, फिर इतना कम काम क्यों हो रहा है?

प्रार्थना किसे कहते हैं?

एक डाक्टरी डिग्री प्राप्त किये हुए महाशय प्रश्न करते हैं:—

"प्रार्थना का सबसे उत्तम प्रकार क्या हो सकता है? इसमें कितना समय लगाना चाहिये। मेरी राय में तो न्याय करना ही उत्तम प्रकार की प्रार्थना है और मनुष्य सब को न्याय करने के लिये सच्चे दिल से तैयार होता है, उसे दूसरी प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कुछ लोग तो संध्या करने में बहुत सा समय लगा देते हैं, परन्तु सैकड़े पीछे ९५ मनुष्य तो उस समय जो कुछ बोलते हैं, उसका अर्थ भी नहीं समझते हैं। मेरी राय में तो अपनी मातृभाषा में ही प्रार्थना करनी चाहिए, उसका ही आत्मा पर अच्छा असर पड़ सकता है। मैं तो यह भी कहता हूं कि सच्ची प्रार्थना यदि एक मिनट के लिये भी की गई हो तो वह भी काफी होगी। ईश्वर को पाप न करने का अभिवचन देना भी काफी होगा।

प्रार्थना के माने हैं धर्म भावना और आदरपूर्वक ईश्वर से कुछ मांगना। परन्तु किसी भक्ति भाव युक्त कार्य को व्यक्त करने

के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेखक के मन में जो बात है, उसके लिये भक्ति शब्द का प्रयोग करना ही अधिक अच्छा है। परन्तु उसकी व्याख्या का विचार छोड़ कर हम इसी का ही विचार करें कि करोड़ों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई यहूदी और दूसरे लोग रोजाना अपने स्रष्टा की भक्ति करने के लिये निश्चित किये हुये समय में क्या करते हैं? मुझे तो यह मालूम होता है कि वह तो स्रष्टा के साथ एक होने की हृदय की उत्कटेच्छा प्रगट करना है और उसके आशीर्वाद के लिये याचना करना है। इसमें मन की वृत्ति और भावों को ही महत्व होता है, शब्दों को नहीं और अक्सर पुराने जमाने से जो शब्द रचना चली आती है, उसका भी असर होता है, जो मातृभाषा में उसका अनुवाद करने पर सर्वथा नष्ट हो जाता है। गुजराती में गायत्री का अनुवाद कर उसका पाठ करने पर उसका यह असर न होगा, जो कि असल गायत्री से होता है। राम शब्द के उच्चारण से लाखों-करोड़ों हिन्दुओं पर फौरन असर होगा और 'गॉड' शब्द का अर्थ समझने पर भी उसका उन पर कोई असर न होगा। चिरकाल के प्रयोग से और उनके प्रयोग के साथ संयोजित पवित्रता से शब्दों को शक्ति प्राप्त होती है, इसलिये सबसे अधिक प्रचलित मंत्र और श्लोकों की संस्कृत भाषा रखने के लिये बहुत सी दलीलें की जा सकती हैं। परन्तु उनका अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। यह बात तो बिना कहे ही मान लेनी चाहिये ऐसी भक्तियुक्त क्रियाएँ कब करनी चाहिएँ, इसका कोई निश्चित

नियम नहीं हो सकता। इसका आधार जुदी-जुदी व्यक्तियों के स्वभाव पर ही होता है मनुष्य के जीवन में ये क्षण बहुत ही कीमती होते हैं। ये क्रियायें हमें नम्र और शांत बनाने के लिये होती है और इससे हम इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है और हम तो "उस प्रजाति के हाथ में मिट्टी के पिण्ड हैं।" ये पलें ऐसी हैं कि इनमें मनुष्य अपने भूतकाल का निरीक्षण करता है। अपनी दुर्बलता को स्वीकार करता है और क्षमा-याचना करते हुये अच्छा बनने की और अच्छा कार्य करने की शक्ति के लिये प्रर्थना करता है। कुछ लोगों को इसके लिये एक मिनट भी बस होता है, तो कुछ लोगों को चौबीस घण्टे भी काफी नहीं हो सकते हैं उन लोगों के लिये जो ईश्वर के अस्तित्व को अपने में अनुभव करते हैं; केवल मिहनत या मजदूरी करना भी प्रार्थना हो सकती है। उनका जीवन ही सतत प्रार्थना और भक्ति के कार्य्यों से बना होता है, परन्तु वे लोग जो केवल पाप,कर्म ही करते हैं, प्रार्थना में जितना भी समय लगावेंगे, उतना ही कम होगा, यदि उनमें धैर्य्य और श्रद्धा होगी और पवित्र बनने की इच्छा होगी, तो वे तब तक प्रार्थना करें, जब तक कि उन्हें अपने में ईश्वर की पवित्र उपस्थिति का निर्णयात्मक अनुभव न होगा। हम साधारण वर्ग के मनुष्यों के लिये तो इन दो सिरों के मार्गों के मध्य का एक और मार्ग भी होना चाहिये। हम ऐसे उन्नत नहीं हो गये हैं कि यह कह सकें कि हमारे सब कर्म ईश्वरार्पण ही हैं और शायद इतने गिरे हुये भी नहीं हैं कि

केवल स्वार्थी जीवन ही बिताते हों। इसलिये सभी धर्मों ने सामान्य भक्ति-भाव प्रदर्शित करने के लिये अलग समय मुकर्रर किया है। दुर्भाग्य से इन दिनों यह प्रार्थनाएँ जहां दम्भिक नहीं होती हैं, वहां यन्त्रिक और औपचारिक हो गई हैं इसलिये यह आवश्यक है कि इन प्रार्थनाओं के समय वृत्ति भी शुद्ध और सच्ची हो।

निश्चयात्मक वैयक्तिक प्रार्थना जो ईश्वर से कुछ माँगने के लिये की गई हो, वह तो अपनी ही भाषा में होनी चाहिये। इसप्रार्थना से कि ईश्वर हमें हर एक जीव के प्रति न्यायपूर्वक व्यवहार करने की शक्ति दे और कोई बात बढ़कर नहीं हो सकती है।

"प्रार्थना में विश्वास नहीं"

किसी राष्ट्रीय संस्था के प्रधान के नाम एक विद्यार्थी ने एक पत्र लिखा है, उसने उनसे वहां की प्रार्थना में न शामिल होने के लिये क्षमा माँगी है। यह पत्र नीचे दिया जाता है:—

प्रार्थना पर मेरा विश्वास नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरी धारणा यह है कि ईश्वर जैसी कोई वस्तु है ही नहीं कि जिसकी प्रार्थना हमको करनी चाहिये। मुझे कभी यह जरूरी मालूम नहीं होता कि मैं अपने लिये एक ईश्वर की कल्पना करूँ। अगर मैं उसके अस्तित्व को मानने के झञ्झट में न पड़ूं, तथा शान्ति और साफदिली से अपना काम करता जाऊं, तो मेरा बिगड़ता क्या है?

सामुदायिक प्रर्थना तो बिल्कुल ही व्यर्थ है। क्या इतने एक आदमी मामूली से मामूली चीज पर भी मानसिक एकाग्रता के साथ बैठ सकते हैं ? यदि नहीं तो छोटे छोटे अबोध बच्चों से यह आशा कैसे रखी जाय कि वे अपने चञ्चल मन को हमारे महान् शास्त्रों के जटिल तत्व—मसलन् आत्मा परमात्मा और और मनुष्य मात्र की एकात्मा इत्यादि वाक्यों के गूढ़ तत्व पर एकाग्रचित हों ? इस महान् कार्य को अमुक नियत समय में तथा विशेष व्यक्ति की आज्ञा पाने पर ही करना पड़ता है। क्या उस कल्पित ईश्वर के प्रति प्रेम इस प्रकार की किसी यान्त्रिक क्रिया के द्वारा बालकों के दिलों में बैठ सकता है ? हर तरह स्वभाव वाले लोगों से यह आशा रखना कि वह कल्पित ईश्वर के प्रति यों ही प्रेम रखे—इसके बराबर नासमझी की बात और क्या हो सकती है ? इसलिये प्रार्थना जबरन न करायी जानी चाहिये। प्रार्थना करें, जिनको उसमें रुचि हो और प्रार्थना में रुचि न रखने वाले उसे न करें। बिना दृढ़ विश्वास के कोई काम करना अनीतिमूलक एवं पतनकारी है।"

हम पहले इस अन्तिम विचार की समीक्षा करते हैं, क्या नियम पालन की आवश्यकता को भली भांति समझने लगने के पहले उसमें बंधना अनीतिपूर्ण और पतनकारी है ? स्कूल के पाठ्यक्रम की उपयोगिता को अच्छी तरह जाने बिना उस पाठ्य क्रम के अनुसार उसके अन्तर्गत विषयों का अध्ययन करनाक्या अनीतिपूर्ण और पतनकारी है ? अगर कोई लड़का अपनी मातृभाषा

सीखना व्यर्थ मानने लग पड़े, तो क्या उसे मातृभाषा पढ़ने से मुक्त कर देना चाहिये ? क्या यह कहना ज्यादा ठीक न होगा कि लड़कों को इन वातों में पड़ने की जरूरत नहीं कि मुझे फलाँ विषय पढ़ना चाहिये और फलाँ नियम पालन करना चाहिये ? अगर इस वारे में उसके पास खुद की कोई पसन्दगी थी भी; तो जब वह किसी संस्था में प्रवेश होने के लिये गया, तब ही वह खतम हो चुकी। अमुक संस्था में उसके भरती होने के अर्थ यह हैं कि वह उस संस्था के नियमों का पालन सहर्ष किया करेगा। वह चाहे तो उस संस्था को छोड़ भले ही दे, लेकिन जब तक वह उसमें है, तब तक यह बात उसके अख्तियार के बाहर है कि मुझे क्या पढ़ना चाहिये और कैसे ? यह काम तो शिक्षकों का है कि वे उस विषय को जो कि विद्यार्थियों को शुरू में घृणा और अरुचि उत्पन्न करने वाला मालूम हो, उसे रुचिकर और सुगम बना दें।

यह कहना कि मैं ईश्वर को नहीं मानता, बड़ा आसान है, क्यों कि ईश्वर के वारे में चाहे जो कुछ कहा जाय, उनको ईश्वर विना सजा दिये कहने देता है। वह तो हमारी कृतियों को देखता है। ईश्वर के बनाये हुये किसी भी क़ानून के खिलाफ काम करने वाला सजा जरूर पाता है, लेकिन वह सजा, सजा के लिये नहीं होती; बल्कि उसे शुद्ध करने और उसे अवश्य ही सुधारने की सिफ़त रखती है। ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो नहीं सकता और न उसके सिद्ध होने की जरूरत ही है। ईश्वर तो है ही अगर यह

दीख नहीं पड़ता, तो हमारा दुर्भाग्य है। उसे अनुभव करने की शक्ति का अभाव एक रोग है और उसे हम किसी न किसी दिन दूर कर देंगे, ख्वाह हम चाहें या न चाहें ।

लेकिन विद्यार्थी तर्क करने में न पड़ें । जिस संस्था में वे पढ़ते हैं अगर उस संस्था में सामुदायिक प्रार्थना करने का नियम है, तो नियम पालन के विचार से भी प्रार्थना में जरूर शरीक होना चाहिये । विद्यार्थी अपनी शङ्काएँ अपने शिक्षक के सामने रख सकता है। जो बात उसे नहीं जँचती, उस पर विश्वास करने की जरुरत उसे नहीं है। अगर उसके चित्त में गुरुओं के प्रति आदर है, तो वह गुरु के बताये हुये काम को उसकी उपयोगिता में दृढ़ विश्वास रखे बिना भी करेगा—भय के मारे या बेढंगेपन से नहीं, बल्कि इस निश्चय के साथ कि उसे करना उसका कर्त्तव्य है और यह आशा रखे हुए कि जो आज उसकी समझ में नहीं आता, वह किसी न किसी दिन जरूर आ जायगा ।

प्रार्थना करना याचना करना नहीं है, वह तो आत्मा की पुकार है। वह अपनी त्रुटियों को नित्य स्वीकार करना है। हम में से बड़े से बड़े की मृत्यु रोग, वृद्धावस्था, दुर्घटना इत्यादि के सामने अपनी तुच्छता का भान हर दम हुआ करता है। जब अपने मनसूबे क्षण भर में मिट्टी में मिलाये जा सकते हैं, या जब अचानक और पल भर में हमारी खुद हस्ती तक मिटाई जा सकती है, तब 'हमारे मन्सूबों" का मूल्य ही क्या रहा ? लेकिन अगर हम यह कह सकें कि "हम तो ईश्वर के निमित्त तथा उसी

की रचना के अनुसार ही काम करते हैं, तब हम अपने को मेरु की भांति अचल मान सकते हैं, तब तो कुछ फसाद ही नहीं रह जाता। उस हालत में नाशवान कुछ भी नहीं है तथा दृश्य-जगत ही नाशवान मालूम होगा। तब लेकिन केवल मृत्यु और विनाश सब असत् मालूम होते हैं, क्योंकि मृत्यु या विनाश उस हालत में एक रूपान्तर मात्र है। उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक शिल्पी अपने एक चित्र को उससे उत्तम चित्र बनाने के हेतु नष्ट कर देता और जिस प्रकार घड़ी साज अच्छी कमानी लगाने के अभिप्राय से रद्दी को फेंक देता है।

सामुदायिक प्रार्थना बड़ी बलवती वस्तु है। जो काम हम प्रायः अकेले नहीं करते, उसे हम सबके साथ करते हैं। लड़कों को निश्चय की आवश्यकता नहीं। अगर वे महज अनुशासन के पालनार्थ ही सच्चे दिल से प्रार्थना में सम्मिलित हों, तो उनको प्रफुल्लता का अनुभव होगा, लेकिन अनेक विद्यार्थी ऐसा अनुभव नहीं करते। वे तो प्रार्थना के समय उल्टे शरारत किया करते हैं, लेकिन तिस पर भी अप्रकट रूप से होने वाला फल रुक नहीं सकता। वे क्या लड़के नहीं हैं, जो अपने आरम्भकाल में प्रार्थना में महज ठट्टा करने के लिये ही शरीक होते थे, लेकिन जो कि बाद को सामुदायिक प्रार्थना की विशिष्टता में अटल विश्वास रखने वाले हो गये। यह बात सभी के अनुभव में आई होगी कि जिनमें दृढ़ विश्वास नहीं होता, वे सामुदायिक प्रार्थना का सहारा लेते हैं। वे सब लोग जो कि गिर्जाघरों, मन्दिरों और मसजिदों

में इकट्ठा होते हैं, न तो कोरे ठेकाबाज हैं और न पाखण्डी ही। वे वेईमान लोग हैं, उनके लिए तो सामुदायिक प्रार्थना नित्य स्नान की भांति एक आवश्यक नित्य क्रम है। प्रार्थना के स्थान महज़ वहम नहीं हैं जिनको जल्दी से जल्दी मिटा देना चाहिये। वे आघात सहते रहने पर भी अब तक मौजूद हैं। और अनन्त काल तक बने रहेंगे।

शब्दों का अत्याचार

१० सितम्बर के "हिन्दी-नवजीवन" में प्रकाशित मेरे लेख, "प्रार्थना में विश्वास नही" पर एक पत्र लेखक लिखते हैं:—

"उपर्युक्त शीर्षक के अपने लेख में न तो उस लड़के के प्रति और न एक महान् विचारक के रूप में, न अपने ही प्रति आप न्याय करते हैं। यह सच है कि उसके पत्र के सभी शब्द बहुत मुनासिब नहीं हैं, किन्तु उसके विचारों की स्पष्टता के विषय में तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। 'लड़का' शब्द का जो अर्थ आज समझा जाता है, उसके अनुसार यह स्पष्ट मालूम होता है कि वह लड़का नहीं है। मुझे यह सुनकर बहुत आश्चर्य होगा कि वह २० वर्ष से कम उम्र का है। अगर वह कमसिन भी हो, तो भी उसका इतना मानसिक-विकास हो चुका है कि, उसे यह कह कर चुप नहीं कराया जा सकता कि—"बच्चों को बहस नहीं करनी चाहिए।" पत्र लेखक बुद्धिवादी हैं; और आप हैं श्रद्धावादी। ये दोनों भेद युग प्राचीन हैं और उनका झगड़ा भी उतना ही

पुराना है। एक की मनोवृत्ति है—'मुझे कायल कर दो और मैं विश्वास करने लगूंगा।" दूसरे की मनोवृत्ति है—"पहिले विश्वास करो, पीछे से आप ही कायल हो जाओगे।" पहिला अगर बुद्धि को प्रमाण मानता है, तो दूसरा श्रद्धालु पुरुषों को। मालूम होता है कि आपकी समझ में कम उम्र लोगोंकी नास्तिकता अल्पस्थायी होती है और जल्दी या देरी से, कभी न कभी विश्वास पैदा होता ही है। आपके समर्थन में स्वामी विवेकानन्द का प्रसिद्ध उदाहरण भी मिलता है। इसलिये आप लड़के को, उसी के लाभ के लिए—प्रार्थना का एक घूंट जबरन् पिलाना चाहते हैं, उसके लिये आप दो प्रकार के कारण बतलाते हैं। पहला-अपनी तुच्छता अशक्तता और ईश्वर कहे जाने वाले उस महा प्राणी के बड़प्पन और भलमनसाहत को अपने आप स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करना। यानी प्रार्थना एक स्वतंत्र कर्त्तव्य है, इसलिये। दूसरा—जिन्हें शान्ति या सन्तोष की जरूरत है, उन्हें शान्ति और संतोष देने में यह उपयोगी है इसलिये। पहले मैं दूसरे तर्क का ही खण्डन करूंगा। यहां प्रार्थना को कमजोर आदमियों के लिए सहारा के रूप में माना गया है। जीवन संग्राम की जांच इतनी कड़ी है और मनुष्यों की बुद्धि का नाश कर देने की उनमें इतनी अधिक ताकत है कि बहुत लोगों को प्रार्थना और विश्वास की जरूरत पड़ सकती है। उन्हें इसका अधिकार है; और यह उन्हें मुबारक हो। लेकिन प्रत्येक युग में ऐसे कुछ सच्चे बुद्धिवादी थे; और हमेशा हैं—उनकी संख्या बेशक बहुत कम रही है—जिन्हें प्रार्थना या विश्वास की जरूरत का कभी अनुभव नहीं हुआ। इसके अलावा

ऐसे लोग भी तो हैं जो धर्म के प्रति लोहा न लेवें मगर, उससे उदासीन तो अवश्य हैं।

"चूंकि सब किसी की अन्त में प्रार्थना की सहायता की जरुरत नहीं पड़ती है' और जिन्हें इसकी जरुरत मालूम होती है, उन्हें इसे शुरू करने का पूरा अधिकार है और सच पूछो तो जरुरत पड़ने पर वे करते भी हैं, इसलिये उपयोगिता की दृष्टि से तो प्रार्थना में बल-प्रयोग का समर्थन किया ही नहीं जा सकता। शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अनिवार्य शारीरिक व्यायाम और शिक्षण आवश्यक हो सकते हैं, किन्तु नैतिक उन्नति के लिये प्रार्थना और ईश्वर में विश्वास वैसे ही आवश्यक नहीं हैं। संसार के कुछ सबसे बड़े नास्तिक, सबसे अधिक नीतिमान हुये हैं। मैं समझता हूँ कि इनके लिये आप, मनुष्य की अपनी नम्रता स्वीकार करने के रूप में, प्रार्थना की सिफ़ारिश करेंगे। यह आपका पहला ही तर्क है। इस नम्रता का नाम बहुत लिया जा चुका है। ज्ञान का सागर इतना बड़ा है कि बड़े से बड़े वैज्ञानिकों को भी अपना छोटापन स्वीकार करना पड़ा है। किन्तु सत्य के शोध में उन्होंने बहुत शौर्य दिखलाया है। प्रकृति के ऊपर जैसी बड़ी बड़ी विजयें उन्होंने पायीं, वैसा ही, बड़ा विश्वास भी उनको अपनी शक्ति में था। अगर ऐसी बात न होती, तो आज तक हम या तो खाली उङ्गलियों से जमीन में कन्द-मूल फल नोंचते होते, या सच पूछो तो शायद दुनियाँ से हमारा अस्तित्व ही गायब हो गया रहता।"

"हिमयुग में जब शीत से लोग गमर रहे थे, जिसने पहिले पहल

आग का पता लगाया होगा, उससे आपकी श्रेणी के लोगों ने व्यङ्ग से कहा होगा कि—'तुम्हारी योजनाओं से क्या लाभ है? ईश्वर की शक्ति और कोप के सामने उनकी क्या हकीकत है?" उसके बाद से नम्र पुरुषों के लिये इस जीवन के बाद स्वर्ग का राज्य दिया गया। इसका तो हमें पता नहीं कि वे उसे सचमुच पावेंगे या नहीं, किन्तु इस संसार में तो उनके हिस्से गुलामी ही पड़ी है। अब प्रकृत विषय की ओर हम फिरें। आपका दावा कि—"विश्वास करो। श्रद्धा अपने आप ही आ जायगी"—बिलकुल सही है, भयङ्कर रूप से सही है। इस दुनियां की बहुत कुछ धर्मान्धता की जड़ इसी प्रकार की शिक्षा में मिलती है। अगर आप कुछ लोगों को बचपन में ही पकड़ पावें। उन्हें एक ही बात बहुत दिनों तक बार बार बतलाते रहें, तो आप उनका विश्वास किसी भी विषय में जमा सकते हैं, इसी प्रकार आपके पक्के धर्मान्ध हिन्दू और मुसलमान तैयार किये जाते हैं। दोनों सम्प्रदायों में ऐसे थोड़े आदमी जरूर होंगे, जो अपने ऊपर लादे गये विश्वास के जामे से बाहर निकल पड़ेंगे। आपको क्या इसकी खबर है कि अगर हिन्दू और मुसलमान अपने धर्मशास्त्रों को परिपक्व बुद्धि होनेके पहले न पढ़ें तो वे उनके माने हुये सिद्धान्तोंके ऐसे अन्ध-विश्वासी न होंगे और उनके लिये झगड़ना छोड़ देंगे। हिन्दू-मुसलिम दङ्गों की दवा है लड़कों की शिक्षा में धर्म को दूर रखना, किन्तु आप उसे पसन्द नहीं करेंगे। आपकी प्रकृति ही ऐसी नहीं है।

"आपने इस देश में, जहाँ साधारणतः लोग बहुत डरते हैं, साहस कार्यशीलता और त्याग का अपूर्व उदाहरण दिखलाया है। इसके लिये हम लोगों के ऊपर आपका बहुत बड़ा ऋण है। किन्तुजब आपके कामों की अन्तिम आलोचना होने लगेगी, तब कहना ही पड़ेगा कि आपके प्रभाव से इस देशमें मानसिक उन्नति को बहुत बड़ा आघात पहुंचा है।"

अगर २० वर्ष के किशोर को लड़का नहीं कहा जा सके, तो फिर मैं लड़का शब्द के रूप का 'प्रचलित' अर्थ ही नहीं जानता। सचमुच में मैं तो उम्र का खयाल किये विना ही स्कूल में पढ़ने वाले सभी किसी को लड़का या लड़की ही कहूँगा। मगर उस विद्यार्थी को हम लड़का कहें या सयाना आदमी? मेरा तर्क तो जैसा तैसा ही रहता है। विद्यार्थी एक सैनिक जैसा होता है और सैनिक की उम्र ४० साल की हो सकती है। जो नियम-सम्बन्धी बातों के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता अगर उसने उसे स्वीकार कर लिया है और उसके आधीन रहना पसन्द किया है। अगर सिपाही को किसी आज्ञा के पालन करने या न करने का अधिकार अपनी स्वेच्छा से प्राप्त हो तो वह अपनी सेना में नहीं रखा जा सकता। उसी प्रकार कोई भी विद्यार्थी चाहे वह कितना ही सयाना और बुद्धिमान क्यों न हो, किन्तु एक बार किसी स्कूल में जभी आप दाखिल हो जाता है, तभी उसके नियमों के विरुद्ध चलने का अधिकार खो बैठता है। यहां उस विद्यार्थी की बुद्धि क कोई अनादर या अवगणना नहीं करता। संयम के नीचे स्वेच्छ

से आना ही बुद्धि के लिये एक सहायतास्वरूप है। किन्तु मेरे पत्र-लेखक शब्दों के अत्याचार का भारी जुआ अपने कन्धे पर सहते हैं। काम करने वाले के हर एक काम में, जो उसे पसन्द न पड़े, उन्हें बलात्कार की गन्ध मिलती है, मगर बलात्कार भी तो कई प्रकार का होता है। स्वेच्छा से स्वीकृत बलात्कार का नाम हम आत्म-संयम रखते हैं। उसे हम छाती से लगा लेते हैं और उसीके नीचे हमारा विकास होता है। किन्तु हमारी इच्छाके विरुद्ध जो बलात्कार हमारे ऊपर लादा जाता है और वह भी इस नीयत से कि हमारा अपमान किया जाय और मनुष्य या यों कहो कि लड़के की हैसियत से हमारे मनुष्यत्व का हरण किया जाय वह दूसरा बलात्कार ऐसा है जिसका प्राणपन से त्याग करना चाहिये।

सामाजिक संयम साधारणतः लाभदायक ही होते हैं, किन्तु उनका हम त्याग करके अपार हानि उठाते हैं। रेंगकर चलने की आज्ञाओं का पालन करना नामर्दी और कायरता है। इससे भी बुरा है उन विकारों के समूह के आगे झुकना, जो दिन-रात हमें घेरे रहते हैं और हमें अपना गुलाम बनाने को तैयार रहते हैं।

किन्तु पत्र-लेखक को अभी एक और शब्द है, जो अपने बन्धन में बांधे हुए हैं; वह महाशब्द है 'बुद्धिवाद'। हाँ, मुझे इसकी पूरी मात्रा मिली थी। अनुभव ने मुझे इतना नम्र बना दिया कि मैं बुद्धि के ठीक २ हदों को समझ सकूं। जिस प्रकार ग़लत स्थान पर रखे जाने से कोई वस्तु गन्दी गिनी जाने लगती

है, उसी प्रकार बेमौके प्रयोग करने से बुद्धि को भी पागलपन कहा जाता है। जिसका जहां तक अधिकार है, अगर उसका प्रयोग हम वहीं तक करें तो सब कुछ ठीक रहेगा।

बुद्धिवाद के समर्थक पुरुष प्रशंसनीय होते हैं, किन्तु बुद्धिवाद को तब भयङ्कर राक्षस का नाम देना चाहिए, जब वह सर्वज्ञता का दावा करने लगे। बुद्धि को ही सर्वज्ञ मानना उतनी ही बुरी मूर्ति-पूजा है, जितनी ईंट-पत्थर को ही ईश्वर मानकर पूजा करना।

प्रार्थना की उपयोगिता को किसने तर्क से निकाल कर जाँचा है? अभ्यास के बाद ही इसकी उपयोगिता का पता चलता है। संसार की गवाही यही है। जिस समय कार्डिनल न्यूमैन ने गाया था कि "मेरे लिये एक पग ही काफ़ी है"—उन्होंने बुद्धि का त्याग ही नहीं कर दिया था, किन्तु प्रार्थना को उससे ऊँचा स्थान दिया था।

शङ्कराचार्य तो तर्कों के राजा थे। संसार के साहित्य में ऐसी ही कोई वस्तु हो जो शङ्कर के तर्क-वाद से आगे बढ़ सके। किन्तु उन्होंने पहला स्थान प्रार्थना और भक्ति को ही दिया था।

पत्र लेखक ने क्षणिक और क्षोभक घटनाओं को लेकर साधारण नियम बनाने में जल्दी की है। इस संसार में सभी वस्तुओं का दुरुपयोग होने लगता है। मनुष्य की सभी वस्तुओं के लिए यह नियम लागू होता है। इतिहास में कई एक बड़े बड़े अत्याचारों के लिए धर्म के झगड़े ही उत्तरदायी हैं। या धर्म का दोष

नहीं है, किन्तु मनुष्य के भीतर की दुर्दमनीय पशुता का है। मनुष्य के पूर्वज पशुओं का गुण उसमें भी अभी शेष है।

मैं एक भी ऐसे बुद्धिवादी को नहीं जानता हूं, जिसने कभी एक भी काम केवल विश्वास के वशीभूत होकर न किया हो, बल्कि सभी कामों का तर्क के द्वारा निश्चय करके किया हो, किन्तु हम सब उन करोड़ों आदमियों को जानते हैं, जो अपना नियमित जीवन इसी कारण बिता पाते हैं कि हम सब के बनाने वाले सृष्टिकर्ता में उनका विश्वास है। वह विश्वास ही एक प्रार्थना है। वह लड़का जिसके पत्र के आधार पर मैंने अपना लेख लिखा था, उस बड़े मनुष्य समुदाय में एक है और उसे और उसी के समान दूसरे सत्य शोधकों को अपने पथ पर दृढ़ करने के लिये लिखा गया था। पत्र लेखक के समान बुद्धिवादियों की शान्ति को लूटने के लिए नहीं।

मगर वे तो उस झुकाव से ही झगड़ते हैं जो शिक्षक या गुरुजन बालकों को बचपन में देना चाहते हैं मगर यह कठिनाई अगर कठिनाई है तो बचपन की उस उम्र के लिए जब कि असर डाला जा सकता है बराबर ही बनी रहेगी। शुद्ध धर्म विहीन शिक्षा भी बच्चों के मन की शिक्षा का एक ढंग ही है। पत्र लेखक यह स्वीकार करने की भलमनसाहत दिखलाते हैं कि मन और शरीर को तालीम दी जा सकती है और रास्ता सुझाया जा सकता है। आत्मा के लिये जो शरीर और मन को बनाती है, उन्हें कुछ परवाह नहीं है। शायद उसके अस्तित्व में ही उन्हें कुछ शंका

है; मगर उनके अविश्वास से उनका कुछ काम नहीं सरेगा। वे अपने तर्क के परिणाम से वच नहीं सकते। क्योंकि कोई विश्वासी सज्जन क्यों पत्र लेखक के ही क्षेत्र पर बहस करें कि जैसे दूसरे लोग बच्चों के मन और शरीर पर असर डालना चाहते हैं, वैसे ही आत्मा पर भी असर डालना जरूरी है। सच्चा धार्मिक भावना के उदय होते ही, धार्मिक शिक्षा के दोप गायब हो जायेंगे। धार्मिक शिक्षा को छोड़ देना वैसा ही है कि जैसे किसी किसान ने यह न जान कर कि खेत का कैसे उपयोग करना चाहिये, उसमें खर पात उग जाने दिया हो।

आलोच्य विषय से, महान् आविष्कारों का वर्णन जैसा कि लेखक ने किया है, बिलकुल अलग है। उन आविष्कारों की उपयोगिता या चमत्कारिता में कोई नहीं सन्देह करता है मैं नहीं करता। बुद्धि के समुचित उपयोग के लिए वे ही साधारणतः समुचित क्षेत्र थे। किन्तु प्राचीन लोगों ने प्रार्थना और भक्ति की मूल भित्ति को अपने जीवन से दूर नहीं कर दिया था। श्रद्धा और विश्वास के विना जो काम किया जाता है, वह उस बनावटी फूल के समान होता है जिसमें सुवास न हो। मैं बुद्धि को दबाने को नहीं कहता, किन्तु हमारे बीच जिस वस्तु ने बुद्धि को ही पवित्र बनाया है, उसे स्वीकार करने को कहता हूं।

वर्ण और जाति

एक विद्यार्थी अपने नाम-ठाम के साथ लिखते हैं—

"मैं जानता हूं कि आप हिन्दुस्तान के क़ौमी सवाल के बारे में रात दिन उग्रता पूर्वक विचार कर रहे हैं। और आपने यह ऐलान किया है कि गोल मेज परिषद् में आपके शामिल होने की दो शर्तों में इस सवाल का हल एक शर्त है। आज छोटी क़ौम की समस्या का हल खास कर उन उन क़ौमों के नेताओं पर निर्भर करता है, परन्तु सारे क़ौमी झगड़ों की जड़ को ही उखाड़ फेंकने के लिये वे लोग किसी काम चलाऊ समझौते पर पहुँच भी सकें तो भी वह काफ़ी न होगा।

तमाम क़ौमी भेदभाव की जड़ें काटने के लिये बहुत अधिक गाढ़ा सामाजिक संसर्ग अनिवार्य है। आज तो हर एक क़ौम का सामाजिक जीवन दूसरी सब जातियों और क़ौमों के जीवन से एक दम अछूता सा होता है। हिन्दू मुसलमानों को ही लीजिये। हिन्दुओं के बड़े बड़े त्योहारों के मौके पर मुसलमान भाई हिन्दुओं का सत्कार नहीं करते, यही हाल मुस्लिम त्योहारों का है। इसके फलस्वरूप क़ौमी एकान्तिकता की जो भावना पैदा होती है, वह देश के हित के लिए बहुत ही हानिकारक है।

दूसरा उपाय जो कुछ लोगों ने बताया है, वह क़ौमों के परस्पर व्याह-सम्बन्ध का होना है। परन्तु जहां तक मैं जानता हूँ, आप जाति पांति में दृढ़ आस्था रखते हैं यानी इसका मतलब यह हुआ

कि आपकी राय में अन्तर्जातीय व्याह सुदूर भविष्य में भारतीयों के लिये आपत्ति रूप सिद्ध होंगे। जब तक इन दो कौमों में थोड़ा भी अलगाव रहेगा, तब तक कौमी भेद भाव को पूरी तरह नष्ट करना टेढ़ी खीर है।

'नवीन भारत' के धर्मराज में जुदा जुदा कौमों के दरम्यान आप अपने मतानुसार कैसे सम्बन्ध की कल्पना करते हैं? क्या भिन्न-भिन्न कौमें आज की तरह सामाजिक व्यवहार में अलग ही रहेंगी? मैं मानता हूं कि इस सवाल के निपटारे पर भारतीय राष्ट्र का भावी कल्याण निर्भर है।

एक बात और। यदि हम जाति-पांति को मानते हैं, तो 'अस्पृश्य' कहे जाने वाले लोगों की स्थिति बहुत नाजुक हो जाती है। यदि हमें 'अस्पृश्यों' का उद्धार करना हो तो हम जातियों के बन्धन को चालू रख ही नहीं सकते। जाति और धर्म का भेद पृथक्ता का जो वातावरण उत्पन्न करता है, वह विश्व बन्धुत्व की वृद्धि की दृष्टि से शाप रूप है। जाति-पांति की व्यवस्था उच्चता की मिथ्या भावना पैदा करती है, जिसका नतीजा बुरा होता है। तो इन पुराने जाति-पांति के बन्धनों में अपनी श्रद्धा उचित है, यह कैसे साबित किया जाय?

ये सवाल महीनों से मेरे दिमाग में चक्कर काट रहे हैं, पर मैं आपका दृष्टिकोण समझ नहीं सका हूँ? इन प्रश्नों का निपटारा करने के लिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरी कठिनाई दूर करें।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० का विद्यार्थी हूं। चाहे जिस तरह क्यों न हो, हिन्दू मुसलमानो के दरम्यान भाई-चारे के खयाल पैदा करने के लिये मैं आतुर हूँ। परन्तु मेरे सामने कठिनाइयां सचमुच ही बहुतेरी हैं। उनमें से एक जाति-पांति के बारे में है, जो मैं आप से अर्ज कर चुका हूँ। दूसरी मांसाहारके बारेमें है। जिस मुसलमान खानेमें मांस परोसा जाय उसमें मैं किस प्रकार शामिल हो सकता हूं। मेरी रहनुमाई कर सकने वालों में आपसे बेहतर दूसरा कोई नहीं है, इसलिए इस पत्र द्वारा मैं आपकी सेवा में उपस्थित होता हूं।"

यह कहना एक दम सच तो नहीं है कि हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों के अवसर पर परस्पर सत्कार नहीं करते। परन्तु यह अवश्य ही अभीष्ट है कि ऐसे सत्कार का आदान प्रदान बहुत ही अधिक अवसरों पर और अधिक व्यापक रूप में हो।

जाति-पांति के बारे में मैं कई बार कह चुका हूँ कि आधुनिक अर्थ में मैं जाति-पांति नहीं मानता। वह विजातीय चीज है और प्रकृति में विघ्न रूप है। इस तरह मैं मनुष्य-मनुष्य के बीच की असमानताओं को भी नहीं मानता। हम सब सम्पूर्णतया समान हैं, पर समानता आत्माओं की है, शरीरों की नहीं। इसलिये यह एक मानसिक अवस्था है। समानता का विचार करने और जोर देकर उसे प्रकट करने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि इस भौतिक जगत में हम बड़ी-बड़ी असमानतायें देखते हैं। इस बाह्य असमानता के आभास में हमें समानता सिद्ध करनी है। कोई

भी आदमी किसी भी दूसरे आदमी की अपेक्षा अपने को उच्च माने, तो वह ईश्वर और मनुष्य के समक्ष पाप है। इस प्रकार जाति-पांति जिस हद तक दर्जे के भेद की सूचक है, बुरी चीज़ है।

परन्तु वर्ण मैं अवश्य मानता हूं। वर्ण की रचना वंश परम्परागत धन्धों की बुनियाद पर है। मनुष्य के चार सर्वव्यापी धन्धों—ज्ञान देना, आर्त की रक्षा करना, कृषि और वाणिज्य और शारीरिक श्रम द्वारा सेवा की समुचित व्यवस्था करने के लिये चार वर्णों का निर्माण हुआ है। ये धन्धे समस्त मानव जाति के लिये एक से हैं। परन्तु हिन्दू धर्म ने इन्हें जीवन धर्म के रूप में स्वीकार करके समाजिक सम्बन्ध और आचार व्यवहार के नियमन के लिये इनका उपयोग किया है।" गुरुत्वाकर्षण के अस्तित्व को हम जानें या न जानें, तो भी हम सब पर उसका असर होता है। लेकिन वैज्ञानिकों ने, जो इस नियम को जानते हैं, उसमें से जगत् को आश्चर्य चकित करने वाले फल उपजाये हैं। इसी तरह हिन्दू धर्म ने वर्ण धर्म की खोज और उसको प्रयोग करके जगत को आश्चर्य में डाला है, जब हिन्दू जड़ता के शिकार हो गये तब वर्ण के दुरुपयोग के फल स्वरूप बेशुमार जातियां बन गईं और रोटी-बेटी व्यवहार के अनावश्यक बन्धन पैदा हुये, वर्ण धर्म का इन बन्धनों से कोई सम्बन्ध नहीं है जुदा जुदा वर्ण के लोग परस्पर रोटी बेटी का व्यवहार रख सकते हैं। शील और आरोग्य के खातिर ये बन्धन आवश्यक हो सकते हैं। परन्तु जो

ब्राह्मण शूद्र कन्या को या शूद्र ब्राह्मण कन्या को ब्याहता है वह वर्ण धर्म का लोप नहीं करता।

अपने धर्म के बाहर ब्याह करने वाला सवाल जुदा है इसमें जब तक स्त्री-पुरुष में से हर एक को अपने अपने धर्म का पालन करने की छूट होती है, तब तक नैतिक दृष्टि से मैं ऐसे विवाह में कोई आपत्ति नहीं समझता, परन्तु मैं नहीं मानता कि ऐसे विवाह सम्बन्धों के फलस्वरूप शान्ति कायम होगी। शान्ति स्थापित होने के बाद ऐसे सम्बन्ध किये जा सकते हैं सही। जब तक हिन्दू मुसलमान के दिल फटे हुए हैं, तब तक हिन्दू मुसलमान विवाह सम्बन्धों की हिमायत करने का फल मेरी दृष्टि में सिवा आपत्ति के और कुछ न होगा। अपवाद रूप परिस्थिति में ऐसे सम्बन्धों का सुखदायी साबित होना, उन्हें सर्व व्यापक बनाने की हिमायत करने के लिए कारण रूप माने ही नहीं जा सकते, हिन्दू मुसलमानों में खान पान का व्यवहार आज भी बड़े पैमाने पर होता है। परन्तु इससे भी शान्ति में वृद्धि तो नहीं ही हुई। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि रोटी-बेटी व्यवहार का कौमी इत्तिफाक से कोई सम्बन्ध नहीं है। झगड़े के कारण तो आर्थिक और राजनैतिक हैं और उन्हीं को दूर करना है। यूरोप में रोटी-बेटी व्यवहार है, फिर भी जिस तरह यूरोप वाले आपस में कट मरे हैं, वैसे तो हम हिन्दू मुसलमान इतिहास में कभी लड़े नहीं। हमारे जन-समूह तो तटस्थ ही रहे हैं।

'अछूतों' का एक जुदा वर्ग है और हिन्दू धर्म के सिर

कलङ्क का टीका है। जातियाँ विघ्न रूप हैं, पाप रूप नहीं। अस्पृश्यता तो पाप है और भयंकर अपराध है; और यदि हिन्दू धर्म ने इस सर्प का समय रहते नाश नहीं किया, तो यह हिन्दू धर्म को ही खा जायगा। अस्पृश्य अब हिन्दू धर्म के बाहर कभी गिने ही न जाने चाहिये। वे हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित सदस्य माने जाने चाहिये; और उनके पेशे के अनुसार, वे जिस वर्ण के योग्य हों, उस वर्ण के वे माने जाने चाहिये।

वर्ण की मेरी व्याख्यानुसार तो आज हिन्दू धर्म में वर्ण-धर्म का पालन होता ही नहीं। ब्राह्मण नाम धारियों ने विद्या पढ़ाना छोड़ दिया है, वे दूसरे अनेक धन्धे करने लगे हैं, यही बात कमोवेश दूसरे वर्णों के लिये भी सच है। वस्तुतः तो विदेशियों के जुए के नीचे होने की वजह से हम सब गुलाम हैं और इस कारण शूद्रों से भी हल्के—पश्चिम के अस्पृश्य हैं।

इस पत्र के लेखक अन्नाहारी होने की वजह से, मांसाहारी मुसलमान के साथ खाने के लिये मन को समझाने में, कठिनाई अनुभव करते हैं, परन्तु वह याद रखें कि मांसाहार करने वाले मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू ज्यादा हैं। जब तक अन्नाहारी को स्वच्छता पूर्वक पकाया हुआ, ऐसा भोजन न परोसा जाय; जिसे खाने में कोई बाधा न हो, तब तक उसे हिन्दू या अन्य मांसाहारी के साथ बैठकर खाने की छूट है। फल और दूध तो उसे जहाँ जायगा, सदा मिल सकेंगे।

माता पिताओं के पहिले संस्था का अधिकार

बंगाल के दौड़े में मैंने एक आश्चर्यजनक वक्तव्य सुना कि एक सार्वजनिक संस्था के सदस्य यह कहते हैं कि अपनी संस्था का पालन वे अपनी माता पिता के पालन करने से पहिले करेंगे। कहा जाता है कि इस पर मैंने अपनी स्वीकृति भी दी है। यदि कोई चीज इन लाइनों में मैंने लिखी है जो ऐसा प्रभाव पैदा करती है तो मैं पाठकों से क्षमा मांगता हूं। मुझे ऐसे किसी अपराध का ज्ञान नहीं। जो कुछ भी मैं आज हूँ इसका श्रेय मेरे माता पिता को है, मैं उनकी उतनी ही श्रद्धा करता हूँ जैसा कि श्रवण अपने माता पिता की करते कहे जाते हैं। इससे जब मैंने यह वक्तव्य सुना तो बड़ी कठिनता से अपने हृदय में उठते हुए क्रोध को रोक सका। वह नवयुवक जिसने यह स्थिति पैदा की थी इसके लिये बहुत गम्भीर नहीं था। परन्तु आजकल नवयुवकों में पूर्णता का अवतार समझने का फैशन हो गया है। मेरे विचार में अपने बूढ़े और रोगी माता पिता का पालन करना वयस्क पुत्रों का पहिला कर्तव्य है। उन लड़कों को तब तक शादी न करना चाहिये जब तक वे अपने माता पिता के पोषण करने लायक न हो जावें। उन्हें तब तक कोई सार्वजनिक काम न करना चाहिये जब तक यह प्रारम्भिक शर्त पूरी न हो जाय। उनको भूखों रहकर अपने माता पिता को भोजन वस्त्र देना चाहिये। विवेक हीन और अज्ञानी माता पिता की मांग को पूरा करना ही उनके लिए धर्म है। ऐसे ही माता पिता होते हैं जो अपने भोजन वस्त्र के लिये

ही धन नहीं मांगते वल्कि झूठे दिखावे और अपनी लड़कियों के विवाह में वेजा खर्च के लिये धन मांगते हैं। मेरी राय से सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का यह कर्तव्य है कि आदर के साथ ऐसी मांगो को पूरा करने से इन्कार करदें। वास्तविकता यह है कि मुझे आज तक कोई ऐसा सार्वजनिक कार्यकर्ता नहीं मिला जो भूखों मरता हो। कुछ ऐसे मिले हैं जो अभाव में जीवन निर्वाह कर रहे हैं। कुछ लोगों को देखा गया है कि जितना कि उन्हें आवश्यकता है उससे अधिक पाते हैं। परन्तु ज्यों ज्यों उनका कार्य उन्नति करता है और उनकी योग्यता प्रसिद्ध हो जाती है तब उन्हें अभाव न सहना पड़ेगा। कठिनाइयाँ और परीक्षा ही मनुष्य का निर्माण करती है। वे उन्नति के चिह्न हैं। यदि प्रत्येक नवयुवक के पास पर्याप्त हो और वह यह कभी न जान सके कि जीवन की आवश्यकताओं को न पूरी कर सकना कैसा होता है तो परीक्षा का समय आने पर वह अपने में कमी का अनुभव करेगा, त्याग भी आनन्द है।

इस लिये जनता के सामने किसी को अपना त्याग दिखलाना ठीक नहीं है। प्रश्न करने पर मुझ से उन्होंने कहा कि वे किसी त्याग की परवाह नहीं करते। प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि शिक्षा या दूसरे शब्दों में चन्दे पर निर्वाह करना त्याग है। मैंने उनसे कहा कि चन्दे के ऊपर जीवित रहना कोई त्याग नहीं। कितने ही सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने ऐसा किया है परन्तु वे इसके लिये त्याग करने का दावा नहीं कर सकते। कितने ही

नवयुवकों ने ऐसे जीवन को त्याग दिया है जिसमें उन्हें आधी आय होती थी। यह उनके लिये सचमुच गौरव की बात है। परन्तु उसमें भी मैं नम्रता से कहूंगा कि यह प्रशंसा की हद है। त्याग तब तक त्याग नहीं है जब तक उससे आनन्द न मिले। त्याग और पश्चात्ताप साथ-साथ नहीं चल सकते। अपने को पवित्र करना ही त्याग है। अपने त्याग के लिये सहानुभूति चाहने वाला एक क्षुद्र व्यक्ति है। बुद्ध ने इस लिये सब कुछ त्याग दी क्योंकि वे ऐसा करने के लिये विवश थे। कुछ भी लेना उनके लिये कष्टप्रद था। लोकमान्य तिलक गरीब बने रहे क्योंकि धनी होना उनके लिये दुःखदायी था। एण्ड्रयूज थोड़े रुपये को भी एक बोझा समझते हैं। इस लिये जब वे कुछ पाते भी हैं तो उसे खर्च कर देते हैं। मैंने उनसे अक्सर कहा कि उन्हें एक ऐसे आदमी की जरूरत है जो उनकी देख भाल करे। वे सुनते हैं, हँस देते हैं और बिना तनिक भी पश्चात्ताप के फिर वहीं काम करते हैं। मातृ-भूमि एक भयंकर देवी है। यह कहने के पहिले कि शाबास मेरे बच्चो अब तुम स्वतन्त्र हो। युवकों और युवतियों से कितने ही इच्छित और अनिच्छित त्याग कर लेगी। अभी तुम हम केवल त्याग के निकट खेल रहे हैं। वास्तविकता तो अभी आने को ही है।

विद्यार्थियों का भाग

पच्चियप्पा कालेज में बोलते हुए गान्धी जी ने कहा:—

"दरिद्र नारायण के लिये, आपकी भेंटों के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यह मैं पहले ही पहल इस मकान में नहीं घुस रहा हूँ। पहले पहल तो मैं यहां पर १८९६ की साल में दक्षिण अफ्रीका के युद्ध के सम्बन्ध में आया था। उस सभा की याद दिलाने की वजह यह है कि उसी बार पहले-पहल मैंने हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों से परिचय किया था, जैसा कि शायद तुम जानते होगे, मैंने सिर्फ मैट्रीकूलेशन परीक्षा भर पास की है, इसीलिये कालेज की शिक्षा तो हिन्दुस्तान में मुझे नहीं सी ही मिली थी। उस बार सभा समाप्त होने के बाद, मैं विद्यार्थियों के पास गया, जो मेरा रास्ता देख रहे थे। उन्होंने मुझ से उस हरी चौपतिया की सभी प्रतियां ले लीं, जो उन दिनों मैं बांट रहा था। उन विद्यार्थियों के ही लिये मैंने स्व० मि० जी० परमेश्वरन पिल्ले को जिन्होंने सब से अधिक प्रेम मेरे और मेरे कामों के प्रति दिखलाया था, उसकी और प्रतियां बांटने को कहा। उन्होंने बड़ी खुशी से १०,००० प्रतियाँ छापीं। दक्षिण अफ्रीका की स्थिति समझने के लिये विद्यार्थी इतने आतुर थे। इसे देख मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैंने अपने मन में कहा "हिन्दुस्तान को अपने लड़कों पर गर्व हो सकता है और उन पर वह अपनी सभी उम्मीदें बांध सकता है।" तब से विद्यार्थियों के साथ मेरा परिचय दिन-दिन बढ़ता ही गया है, घनिष्ट होता गया है। जैसा कि मैंने बंगलौर में

कहा था जो अधिक देते हैं, उनसे और अधिक की आशा रखी जाती है, और चूंकि तुम ने मुझे इतना दिया है कि तुम से और अधिक की उम्मीद का मुझे हक मिल गया है जो कुछ तुम मुझे दो, मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मेरे कुछ कामों का तुमने समर्थन किया है। मानपत्र में तुमने दरिद्र नारायण का नाम प्रेम और श्रद्धा से लिया है, और आप (मुख्याध्यापक) ने चर्खे की ओर से मेरे दावे का समर्थन किया है, और इससे मुझे कोई शक नहीं है कि सच्चे दिल से किया है। मेरे कई प्रतिष्ठित और विद्वान् देश बन्धुओं ने उस दावे को इनकार किया है। वे कहते हैं कि इस चर्खे को अलग हटा कर हमारी माँ-बहिनों ने ठीक ही किया है और इससे स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। मगर तो भी आपने मेरा दावा मान कर, मुझे बहुत आनन्द दिया है। अगर्चे कि तुम विद्यार्थियो ने इसके बारे में बहुत कुछ नहीं कहा है, मगर इतना जरूर कहा है जिससे यह आशा की जा सके कि तुम्हारे दिल के किसी कोने में चर्खे को सच्ची जगह है। इसलिये तुम चर्खे के लिये सारा प्रेम इस थैली से शुरू करके इसी पर खत्म न कर दो। मैं तुम्हें कहे देता हूँ कि चर्खे के लिये तुम्हारे प्रेम का यही आखिरी चिह्न होवे, तो यह मेरे लिये भार होगा। क्योंकि अगर तुम खादी पहनोगे ही नहीं, तो इन रुपयों को करोड़ों गरीबों में बाँट कर और खादी बनवाकर ही मैं क्या करूँगा। आखिर चर्खे से जबानी प्रेम दिखलाने और मेरे आगे कुछ रुपये घमण्ड से फेंक देने से स्वराज्य नहीं मिल सकेगा, भूखों मरते हुए और

सख्त परिश्रम करते हुए करोड़ों की दिन-दिन बढ़ती हुई गरीबी का सवाल हल नहीं होगा। इस वाक्य को सुधारना होगा। मैंने कहा था सख्त परिश्रम करते हुए करोड़ों। क्या ही अच्छा होता, अगर यह वर्णन सही होता। दुर्भाग्य से हमने करोड़ों के लिये अपनी पसन्दगी बदली नहीं है, इन भुक्खड़ करोड़ों के लिये साल भर तक काम करना असम्भव कर दिया है : उनके ऊपर हमने साल में कम से कम चार महीनों की छुट्टी जबरदस्ती लाद दी है, जो उन्हें नहीं चाहिये। इस लिये अगर यह थैली लेकर मैं जाऊँ और भूखी बहनों में बांट दूँ, तो सवाल हल नहीं होता। इससे उल्टे उसकी आत्मा का नाश होगा। वे भिखारिन बन जाँयगी। हम और तुम तो उन्हें काम देना चाहते हैं जो वे घर पर महफूज बैठी कर सकें और सिर्फ यही काम उन्हें दे सकते हैं। मगर जब यह किसी गरीब बहन के पास पहुंचता है, इसके सोने के फल लगते हैं। अगर तुम आगे से सिर्फ खादी ही खादी पहनने का इरादा न कर लो, तो तुम्हारी वह थैली मेरे लिये भार रूप ही बन जायगी।

अगर चर्खे में आपका जीवन-विश्वास न हो, तो उसे छोड़ दीजिये। तुम्हारे प्रेम का यह अधिक सच्चा प्रदर्शन होगा और तुम मेरी आँखें खोल दोगे। मैं गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाता फिरूँगा कि "तुमने चर्खे को त्याग कर दरिद्र नारायण को ठुकरा दिया है।"

विद्यार्थी परिषद्

सिन्ध की छठी विद्यार्थी परिषद् के मन्त्री ने मुझे एक छपा हुआ पत्र भेजा है जिसमें मुझसे सन्देश मांगा गया है। इसी बात के लिये मुझे एक तार भी मिला है, परन्तु मैं ऐसे स्थान में था, जो एक तरफ था। इसलिये वह चिट्ठी और तार भी मुझे इतनी देर से मिले कि मैं परिषद् को कोई सन्देश नहीं भेज सका, और न अब मैं ऐसी परिस्थिति में हूं, जो इन सन्देश, लेख आदि को भेजने के लिये की जाने वाली प्रार्थनाओं को स्वीकृत कर सकूं पर चूंकि मैं विद्यार्थियों से सम्बन्ध रखने वाली हर एक बात में दिलचस्पी रखने का दावा करता हूँ और चूंकि मैं भारत के विद्यार्थी-वर्ग के सम्पर्क में अक्सर रहता हूं। अपने मन ही मन उस छपे पत्र में लिखे कार्यक्रम पर टीका किये बिना मुझसे नहीं रहा गया। इस लिये अब यह सोच कर कि वह टीका उपयोगी होगी मैं उसे लिख कर विद्यार्थी जगत के सामने पेश करता हूँ। मैं नीचे लिखा अंश उस पत्र से उद्धृत करता हूं, जो एक तो छपा भी बुरी तरह है और जिसमें ऐसी-ऐसी गलतियां रह गई हैं, जो विद्यार्थियों की संस्था के लिये अक्षम्य हैं।

"इस परिषद् के सङ्गठन कर्ता इसे मनोरंजन और शिक्षाप्रद बनाने के लिये अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहे हैं। हम शिक्षा विषयक कई वार्तालाप कराने की भी सोच रहे हैं और हम आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप भी हमें अपनी उपस्थिति का लाभ दें। सिन्ध में स्त्री शिक्षा का प्रश्न खास तौर से विचारणीय

है। विद्यार्थियों की अन्य आवश्यकतायें भी हमारे ध्यान से छूटी नहीं हैं। खेल-कूद प्रतियोगितायें आदि भी होंगी। साथ ही वक्तृत्व में भी प्रतियोगिता होगी, इससे परिषद् और भी मनोरंजक हो जावेगी। नाटक और संगीत को भी हमने छोड़ा नहीं है। अंग्रेजी और उर्दू के प्रबन्धों को भी रङ्गभूमि पर खेला जायगा।"

इस पत्र में से मैंने ऐसे एक भी वाक्य को नहीं छोड़ा है, जो हमें परिषद् के कार्य की कुछ कल्पना दे सकता हो। और फिर भी हमें इसमें ऐसी एक भी वस्तु नहीं दिखाई देती जो विद्यार्थियों के लिये चिरस्थायी महत्व रखती हो। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि नाटक-संगीत और खेल, कूद आदि "Grand scale" बड़े समारोह के साथ किये गये होंगे। उपर्युक्त शब्दों को मैंने उस पत्र से ज्यों का त्यों अवतरण चिन्हों में रख दिया है। मुझे इसमें भी सन्देह नहीं है कि इस परिषद् में स्त्री-शिक्षा पर आकर्षक प्रबन्ध पढ़े गये होंगे। परन्तु जहां तक इस पत्र से सम्बन्ध है, उस लज्जाजनक 'देने लेने' की प्रथा का उसमें कहीं भी उल्लेख नहीं है, जिससे कि विद्यार्थियों ने अभी अपने को मुक्त नहीं कर लिया है, जो सिन्धी लड़कियों के जीवन को प्रायः नरकवास और उनके माता पिता के जीवन को एक घोर यम-यातना का काल बना देती है। पत्र से यह भी पता नहीं लगता कि परिषद् विद्यार्थियों के चरित्र और नीति के प्रश्न को भी सुलझाना चाहती है। वह पत्र यह भी नहीं कहता कि परिषद् विद्यार्थियों को निर्भय राष्ट्र-निर्माता बनने की राह बताने के लिये कुछ करेगी। सिन्ध ने कितनी

ही संस्थाओं को तेजस्वी प्रोफेसर दिये हैं। निस्सन्देह यह उसके लिये एक गौरव की बात है। पर जो ज्यादह देते हैं, उनसे और भी ज्यादह की आशा की जाती है। मैं अपने सिंधी मित्रों का कृतज्ञ हूं, जिन्होंने गुजरात विद्यापीठ में मेरे साथ काम करने के लिये बढ़िया कार्यकर्त्ता मुझे दिये हैं। पर मैं प्रोफेसर और खादी कार्यकर्त्ता लेकर ही सन्तुष्ट होने वाला आदमी नहीं हूं। सिंध में साधू वास्वानी हैं। सिंध और भी अपने कितने ही महान् सुधारकों पर अभिमान कर सकता है। परन्तु सिंध के विद्यार्थी ग़लती करेंगे यदि वे अपने साधुओं और सुधारकों से ज्ञान तथा गुण ग्रहण करके ही सन्तुष्ट होकर रह जावेंगे। उन्हें राष्ट्र-निर्माता बनना है। पश्चिम के इस नीच अनुकरण से तथा अंगरेजी में शुद्ध रीति से लिख पढ़ तथा बोल लेने से स्वाधीनता के मन्दिर की एक भी ईंट नहीं बनेगी। विद्यार्थी वर्ग इस समय ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है, जो भूखों मरने वाले भारत के लिये बड़ी मँहगी है। इसे तो बहुत थोड़े लोग एक नगण्य संख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिये भारत विद्यार्थियों से आशा करता है कि वे राष्ट्र को अपना जीवन देकर उसके योग्य अपने को साबित करें। विद्यार्थियों को तमाम धीमी गति से चलने वाले सुधारों के नायक हो जाना चाहिये। राष्ट्र में जो अच्छी बातें हों उनकी रक्षा करते हुए समाज शरीर में घुसी हुई असंख्य बुराइयों को दूर करने में निर्भयता पूर्वक लग जाना चाहिये।

विद्यार्थियों की बातों को खोल कर वास्तविक बातों की ओर

उनका ध्यान आकर्षित करने का काम इन परिषदों को करना चाहिये। इनको उन्हें उन बातों पर विचार करने का अवसर देना चाहिये, जिन्हें विदेशी वायुमण्डल से दूषित विद्यालयों में पढ़ने का मौक़ा उन्हें नहीं मिलता। सम्भव है, ऐसी परिषदों में वे शुद्ध राजनैतिक समझे जाने वाले प्रश्नों पर बहस न भी कर सकते हों। पर वे आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों पर तो जरूर विचार-विनिमय कर सकते हैं और उन्हें जरूर करना भी चाहिये। आज हमारे लिये वे प्रश्न भी उतना ही महत्व रखते हैं, जितना कि राजनैतिक प्रश्न। एक राष्ट्र विधायक कार्य-क्रम राष्ट्र के किसी भी हिस्से को अछूता नहीं छोड़ सकता। विद्यार्थियों को करोड़ों मूक देश भाइयों में काम करना होगा। उन्हें एक प्रान्त, एक शहर, एक वर्ग या एक जाति की भाषा में नहीं, बल्कि समस्त देश की भाषा में विचार करना सीख लेना चाहिये। उन्हें उन करोड़ों का विचार करना होगा जिनमें अत्यन्त शराब खोर, गुण्डे और वेश्याएँ भी शामिल हैं और जिनके हमारे बीच अस्तित्व के लिये हम में से हर एक शख्स जिम्मेदार है।

विद्यार्थी प्राचीन काल में ब्रह्मचारी कहे जाते थे। ब्रह्मचारी के माने हैं वह, जो ईश्वर भीरु है। राजा और बड़े बूढ़े भी उनका आदर करते थे। देश स्वेच्छा पूर्वक उनका भार वहन करता था और इसके बदले में वे उसकी सेवा में सौगुने बलिष्ठ आत्मा, मस्तिष्क और बाहु अर्पण करते थे।

आज कल भी आपद्ग्रस्त देशों में वे देश की आशा के

अवलम्ब समझे जाते हैं, और उन्होंने स्वार्थ त्याग पूर्वक प्रत्येक विभाग में सुधारों का नायकत्व किया है। मेरे कहने का मतलब यह हर्गिज नहीं कि भारत में ऐसे उदाहरण नहीं हैं। वे हैं तो, पर बहुत थोड़े। मैं चाहता हूं कि विद्यार्थियों की परिषदों को इस तरह के संगठनात्मक कामों को अपने हाथों में लेना चाहिये जो ब्रह्मचारियों की सुप्रतिष्ठा को शोभा दें।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा के बारे में कुछ समय पूर्व मैंने डरते-डरते संक्षेप में जो विचार प्रगट किये थे, उनकी माननीय श्री श्रीनिवास शास्त्री जी ने नुकताचीनी की थी, जिसका कि उन्हें पूरा हक़ है। मनुष्य देशभक्त और विद्वान् के रूप में मेरे हृदय में उनके लिये बहुत ऊँचा आदर है। इसलिये जब मैं अपने को उनसे असहमत पाता हूँ, तो मेरे लिये हमेशा ही वह बड़े दुख की बात होती है। इतने पर भी कर्त्तव्य मुझे इस बात के लिये बाध्य कर रहा है कि उच्च शिक्षा के बारे में मेरे जो विचार हैं उन्हें मैं पहले से भी अधिक पूर्णता के साथ फिर से व्यक्त करदूं, जिससे कि पाठक खुद ही मेरे और उनके विचारों के भेद को समझ लें।

अपनी मर्यादाओं को मैं स्वीकार करता हूँ। मैंने विश्वविद्यालय की कोई नाम लेने योग्य शिक्षा नहीं पाई है। मेरा स्कूली जीवन भी औसत दर्जे से अधिक अच्छा कभी नहीं रहा। मैं तो यही

बहुत समझता था कि किसी तरह इम्तहान में पास हो जाऊँ। स्कूल में डिस्टिंक्शन (यानी विशेष योग्यता) पाना तो ऐसी बात थी। जिसकी मैंने कभी आकांक्षा भी नहीं की। मगर फिर भी शिक्षा के विषय में जिसमें कि वह शिक्षा भी शामिल है, जिसे उच्च शिक्षा कहा जाता है, आम तौर पर मैं बहुत दृढ़ विचार रखता हूं। और देश के प्रति मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि मेरे विचार स्पष्ट रूप से सबको मालूम हो जांय और उनकी वास्तविकता उनके सामने आ जाय। इसके लिये मुझे अपनी उस भीरुता या संकोच भावना को छोड़ना ही पड़ेगा जो लगभग आत्मदमन की हद तक पहुँच गई है। इसके लिये न तो मुझे उपहास का भय रहना चाहिये न लोकप्रियता या प्रतिष्ठा घटने की ही चिन्ता होनी चाहिये; क्योंकि अगर मैं अपने विश्वास को छिपाऊँगा तो निर्णय की भूलों को कभी दुरुस्त न कर सकूंगा। लेकिन मैं तो हमेशा उन्हें ढूंढने और उससे भी अधिक उन्हें सुधारने के लिये उत्सुक हूँ।

अब मैं अपने उन निष्कर्षों को बता दूं। जिन पर कि मैं कई बरसों से पहुंचा हुआ हूँ और जब भी कभी मौक़ा मिला है उनको अमल में लाने की कोशिश की है।

१—दुनियां में प्राप्त होने वाली ऊँची से ऊँची शिक्षा का भी मैं विरोधी नहीं हूं।

२—राज्य को जहां भी निश्चत रूप से इसकी जरूरत हो वहां इसका खर्च उठाना चाहिये।

३—साधारण आमदनी द्वारा सारी उच्च शिक्षा का खर्च चलाने के मैं खिलाफ हूं।

४—मेरा यह निश्चित विश्वास है कि हमारे कालेजों में साहित्य की जो इतनी भारी तथा कथित शिक्षा दी जाती है, वह सब बिलकुल व्यर्थ है और उसका परिणाम शिक्षित वर्गों की बेकारी के रूप में हमारे सामने आया है। यही नहीं बल्कि जिन लड़के लड़कियों को हमारे कॉलेजों की चक्की में पिसने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है। उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी इसने चोपट कर दिया है।

५—विदेशी भाषा के माध्यम ने, जिसके जरिये कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुंचाया है। अभी हम अपने इस जमाने के इतने नजदीक हैं कि इस नुकसान का निर्णय नही कर सकते और फिर ऐसी शिक्षा पाने वाले हमी को इसका शिकार और न्यायधीश दोनों बनना है, जो कि लगभग असम्भव काम है।

अब मेरे लिये यह बतलाना आवश्यक है कि मैं इन निष्कर्षों पर क्यों पहुँचा। यह शायद अपने कुछ अनुभवों के द्वारा ही मैं सबसे अच्छी तरह बतला सकता हूं।

१२ बरस की उम्र तक मैंने जो भी शिक्षा पाई, वह भी अपनी मातृ भाषा गुजराती में पाई थी। उस वक्त गणित, इतिहास और भूगोल का मुझे थोड़ा थोड़ा ज्ञान था। इसके बाद मैं एक हाईस्कूल में दाखिल हुआ। इसमें भी पहिले तीन साल

तक तो मातृ भाषा ही शिक्षा का माध्यम रही। लेकिन स्कूल मास्टर का काम तो विद्यार्थियों के दिमाग में जबर्दस्ती अंगरेजी ठूंसना था। इसलिये हमारा आधा से अधिक समय अँगरेजी और उसके मनमाने हिज्जों को कण्ठस्त करना एक अजीब सा अनुभव था। लेकिन यह तो मैं प्रसंग वश कह गया, वस्तुतः मेरी दलील से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मगर पहले तीन साल तो तुलनात्मक रूप में ठीक ही निकल गये।

जिल्लत तो चौथे सालमें शुरू हुई। अलजबरा, (बीज गणित) केमीस्ट्री (रसायन), एस्ट्रानामी (ज्योतिष) हिस्ट्री (इतिहास) ज्याग्राफ़ी (भूगोल) हरेक विषय मातृ भाषा के बजाय अंग्रेजी में ही पढ़ना पड़ा। कक्षा में अगर कोई विद्यार्थी गुजराती जिसे कि वह समझता था, बोलता तो उसे सजा दी जाती थी। हाँ, अंग्रेजी को, जिसे न तो वह पूरी तरह समझ सकता था और न शुद्ध बोल ही सकता था, अगर वह बुरी तरह बोलता तो भी शिक्षक को कोई आपत्ति नहीं होती थी। शिक्षक भला इस बात की फिक्र क्यों करे? क्योंकि खुद उसकी ही अंग्रेजी निर्दोष नहीं थी। इसके सिवा और हो भी क्या सकता था? क्योंकि अंग्रेजी उसके लिये भी उसी तरह विदेशी भाषा थी, जिस तरह की उसके विद्यार्थियों के लिये थी। इससे बड़ी गड़बड़ होती। हम विद्यार्थियों को अनेक बातें कण्ठस्त करनी पड़ीं, हालांकि हम उन्हें पूरी तरह नहीं समझ सकते थे और कभी कभी तो बिलकुल ही नहीं समझते थे। शिक्षक के हमें ज्यामेट्री (रेखा गणित) समझाने

की भरपूर कोशिश करने पर मेरा सिर घूमने लगता। सच तो यह है कि यूक्लिड (रेखा गणित) की पहली पुस्तक के १३ वें साध्य तक जब तक हम न पहुंच गये, मेरी समझ में जोमेट्री बिल्कुल नहीं आई। और पाठकों के सामने मुझे यह मंजूर करना चाहिये कि मातृभाषा के अपने सारे प्रेम के बावजूद आज भी मैं यह नहीं जानता कि ज्योमेट्री अलजबरा आदि की परिभाषिक बातों को गुजराती में क्या कहते हैं? हाँ, यह अब मैं जरूर देखता हूं कि जितना रेखागणित; बीजगणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने में मुझे चार साल लगे, अगर अंग्रेजी के बजाय गुजराती में मैंने उन्हें पढ़ा होता, तो उतना मैंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता। उस हालत में मैं आसानी और स्पष्टता के साथ इन विषयों को समझ लेता। गुजराती का मेरा शब्द-ज्ञान कहीं समृद्ध हो गया होता और उस ज्ञान का मैंने अपने घर में उपयोग किया होता। लेकिन इस अंग्रेजी के माध्यम ने तो मेरे और मेरे कुटुम्बियों के बीच, जो कि अंग्रेजी स्कूलों में नहीं पढ़े थे, एक अगम्य खाड़ी कर दी। मेरे पिता को यह कुछ पता नहीं था कि मैं क्या कर रहा रहा हूँ? मैं चाहता तो भी अपने पिता की इस बात में दिलचस्पी पैदा नहीं कर सकता था कि मैं क्या पढ़ रहा हूँ? क्यों कि यद्यपि बुद्धि की उनमें कोई कमी नहीं थी, मगर वह अंग्रेजी नहीं जानते थे। इस प्रकार अपने ही घर में मैं बड़ी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था। निश्चय ही मैं औरों से ऊँचा आदमी बन गया था। यहाँ तक कि मेरी पोशाक भी

अपने आप बदलने लगी। लेकिन मेरा जो हाल हुआ वह कोई असाधारण अनुभव नहीं था बल्कि अधिकांश का यही हाल होता है।

हाईस्कूल के प्रथम तीन वर्षों में मेरे सामान्य ज्ञान में बहुत कम वृद्धि हुई। यह समय तो लड़कों को हरेक चीज़ अंग्रेजी के जरिये सीखने की तैयारी का था। हाईस्कूल तो अंग्रेजों की सांस्कृतिक विजय के लिये थी। मेरे हाईस्कूल के तीन सौ विद्यार्थियों ने जो ज्ञान प्राप्त किया वह तो हमीं तक सीमित रहा, वह सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिये नहीं था।

एक दो शब्द साहित्य के बारे में भी। अंग्रेजी गद्य और पद्य की हमें कई किताबें पढ़नी पड़ी थीं। इसमें शक नहीं कि यह सब बढ़िया साहित्य था। लेकिन सर्वसाधारण की सेवा या उसके सम्पर्क में आने में उस ज्ञान का मेरे लिये कोई उपयोग नहीं हुआ है। मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि मैंने अंग्रेजी गद्य न पढ़ा होता तो मैं एक बेश कीमत खजाने से वंचित रह जाता। इसके बजाय, सच तो यह है, कि अगर मैंने सात साल गुजराती पर प्रभुत्व प्राप्त करने में लगाये होते और गणित विज्ञान तथा संस्कृत आदि विषयों को गुजराती में पढ़ा होता तो इस तरह प्राप्त किये हुए ज्ञान में मैंने अपने अड़ोसी-पड़ोसियों को आसानी से हिस्सेदार बनाया होता। उस हालत में मैंने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया होता, और कौन कह सकता है कि अमल में उतारने की अपनी आदत तथा देश और मातृ-भाषा के

प्रति अपने बेहद प्रेम के कारण सर्वसाधारण की सेवा में मैं और भी अपनी देन क्यों न दे सकता ?

यह हर्गिज न समझना चाहिये कि अंग्रेजी या उसके श्रेष्ठ साहित्य का मैं विरोधी हूँ। 'हरिजन' मेरे अंग्रेजी प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है। लेकिन उसके साहित्य की महत्ता भारतीय राष्ट्र के लिये उससे अधिक उपयोगी नहीं जितना कि इंग्लैण्ड के लिये उसका समशीतोष्ण जल वायु या वहाँ के सुन्दर दृश्य हैं। भारत को तो अपने ही जलवायु, दृश्यों और साहित्य में तरक्की करनी होगी, फिर चाहे ये अंग्रेजी जलवायु, दृश्यों और साहित्य से घटिया दर्जे के ही क्यों न हों। हमें और हमारे बच्चों को तो अपनी खुद की विरासत बनानी चाहिये। अगर हम दूसरों की विरासत लेंगे तो अपनी नष्ट हो जायगी। सच तो यह है कि विदेशी सामग्री पर हम कभी उन्नति नहीं कर सकते। मैं तो चाहता हूँ कि राष्ट्र अपनी ही भाषा का कोष और इसके लिये संसार की अन्य भाषाओं का कोष भी अपनी ही भाषाओं में सञ्चित करे। रवीन्द्रनाथ की अनुपम कृतियों का सौन्दर्य जानने के लिये मुझे बङ्गाली पढ़ने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि सुन्दर अनुवादों के द्वारा मैं उसे पा लेता हूँ। इसी तरह टाल्सटाय की संक्षिप्त कहानियों की कद्र करने के लिये गुजराती लड़के-लड़कियों को रूसी भाषा पढ़ने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि अच्छे अनुवादों के जरिये वे उसे पढ़ लेते हैं। अंग्रेजों को इस बात का फख है कि संसार की सर्वोत्तम साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होने

के एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर सरल अंग्रेजी में उनके हाथों में पहुंचती हैं। ऐसी हालत में शेक्सपीयर और मिल्टन के सर्वोत्तम विचारों और रचनाओं के लिये मुझे अंग्रेजी पढ़ने की जरूरत क्यों हो?

यह एक तरह की अच्छी मितव्ययता होगी कि ऐसे विद्यार्थियों का अलग ही एक वर्ग कर दिया जाय, जिनका यह काम हो कि संसार की विभिन्न भाषाओं में पढ़ने लायक जो सर्वोत्तम सामग्री हो, उसको पढ़ें और देशी भाषाओं में उसका अनुवाद करें। हमारे प्रभुओं ने तो हमारे लिये गलत ही रास्ता चुना है और आदत पड़ जाने के कारण गलती ही हमें ठीक मालूम पड़ने लगी है।

हमारी इस झूठी अभारतीय शिक्षा से लाखों भारतीयों का दिन-दिन जो नुकसान हो रहा है, उसके तो रोज ही मैं प्रमाण पा रहा हूं। जो ग्रेजुएट मेरे आदरणीय साथी हैं, उन्हें जब अपने आन्तरिक विचारों को व्यक्त करना पड़ता है, तो वही खुद परेशान हो जाते हैं। वे तो अपने ही घरों में अजनबी हैं। अपनी मातृभाषा के शब्दों का उनका ज्ञान इतना सीमित है कि अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों तक का सहारा लिये बगैर वे अपने भाषण को समाप्त नहीं कर सकते। न अंग्रेजी किताबों के बगैर वे रह सकते हैं। आपस में भी वे अंग्रेजी में लिखा-पढ़ी करते हैं। अपने साथियों का उदाहरण मैं यह बताने के लिये दे रहा हूं कि इस बुराई ने कितनी गहरी जड़ जमा ली है; क्योंकि हम लोगों ने अपने को सुधारने का खुद जान-बूझ कर प्रयत्न किया है।

हमारे कालेज में जो यह समय की बरबादी होती है, उसके पक्ष में दलील यह दी जाती है कि कालेजों में पढ़ने के कारण इतने विद्यार्थियों में से अगर एक जगदीश बोस भी पैदा हो सके, तो हमें इस बर्बादी की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। अगर यह बर्बादी अनिवार्य होती, तो मैं भी जरूर इस दलील का समर्थन करता। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि मैंने यह बतला दिया है कि यह न तो अनिवार्य थी और यह न अभी ही अनिवार्य है, क्योंकि जगदीश बोस कोई वर्त्तमान शिक्षा की उपज नहीं थे। वह तो भयङ्कर कठिनाइयों और बाधाओं के बावजूद अपने परिश्रम की बदौलत ऊँचे उठे और उनका ज्ञान लगभग ऐसा बन गया, जो सर्वसाधारण तक नहीं पहुँच सकता। बल्कि मालूम ऐसा पड़ता है कि हम यह सोचने लगे हैं कि जब तक कोई अंग्रेजी न जाने, तब तक वह बोस के सदृश्य महान् वैज्ञानिक होने की आशा नहीं कर सकता। यह ऐसी मिथ्या धारणा है, जिससे अधिक की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। जिस तरह हम अपने को लाचार समझते मालूम पड़ते हैं, उस तरह एक भी जापानी अपने को नहीं समझता।

यह बुराई, जिसका कि वर्णन करने की मैंने कोशिश की है, इतनी गहरी पैठी हुई है कि कोई साहसपूर्ण उपाय ग्रहण किये बिना काम नहीं चल सकता। हाँ, कांग्रेसी मन्त्री चाहें, तो इस बुराई को दूर न भी कर सकें तो इसे कम तो कर ही सकते हैं।

विश्वविद्यालयों को स्वावलम्बी जरूर बनाना चाहिये। राज्य

को तो साधारणतः उन्हीं की शिक्षा देनी चाहिये जिनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता हो। अन्य रुक्ष दिशाओं के अध्ययन के लिये उसे खानगी प्रयत्न को प्रोत्साहन देना चाहिये। शिक्षा का माध्यम तो एक दम और हर हालत में वदला जाना चाहिये और प्रान्तीय भाषाओं को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिये। यह जो काविले सजा वर्बादी रोज-ब-रोज हो रही है, इसके बजाय तो अस्थायी रूप से अव्यवस्था हो जाना भी मैं पसन्द करूँगा।

प्रान्तीय भाषाओं का दरजा और व्यावहारिक मूल्य बढ़ाने के लिये मैं चाहूँगा कि अदालतों की कार्रवाई अपने-अपने प्रान्त की भाषाओं में हो। प्रान्तीय धारा सभाओं की कार्रवाई भी प्रान्तीय भाषा या जहां एक से अधिक भाषाएँ प्रचलित हों, उनमें होनी चाहिए। धारा सभाओं के सदस्यों को मैं कहना चाहता हूं कि वे चाहें तो एक महीने के अन्दर अन्दर अपने प्रान्तों की भाषाएँ भली भांति समझ सकते हैं। तामिल भाषी के लिये ऐसी कोई रुकावट नहीं जो वह तेलगू, मलयालम और कन्नड़ के जो कि सब तामिल से मिलती जुलती हुई ही हैं, मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्दों को आसानी से न सीख सके।

मेरी सम्मति में यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका निर्णय साहित्यिज्ञों के द्वारा हो। वे इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि किस स्थान के लड़के-लड़कियों की पढ़ाई किस भाषा में हो। क्योंकि इस प्रश्न का निर्णय तो हरेक स्वतन्त्र देश में पहले ही हो चुका है। न वे यही निर्णय कर सकते हैं कि किन विषयों की

पढ़ाई हो; क्योंकि यह उस देश की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है, जिस देश के बालकों की पढ़ाई होती है। उन्हें तो बस यही सुविधा प्राप्त है कि राष्ट्र की इच्छा को यथा सम्भव सर्वोत्तम रूप में अमल में लायें अतः हमारा देश जब वस्तुतः स्वतन्त्र होगा तब शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल एक ही तरह से हल होगा। साहित्यिक लोग पाठ्यक्रम बनायेंगे और फिर उसके अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार करेंगे और स्वतन्त्र भारत की शिक्षा पाने वाले विदेशी शासकों को करारा जवाब देंगे। जब तक हम शिक्षित वर्ग इस प्रश्न के साथ खिलवाड़ करते रहेंगे, मुझे इस बात का बहुत भय है कि हम जिस स्वतन्त्र और स्वस्थ भारत का स्वप्न देखते हैं, उसका निर्माण नहीं कर पायेंगे। हमें तो सतत प्रयत्न पूर्वक अपनी गुलामी से मुक्त होना है, फिर वह चाहे शिक्षणात्मक हो या आर्थिक अथवा सामाजिक या राजनैतिक। तीन चौथाई लड़ाई तो वही प्रयत्न होगा जो कि उसके लिये किया जायगा।

इस प्रकार, मैं इस बात का दावा करता हूं कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मैं विरोधी जरूर हूँ जो कि इस देश में दी जा रही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक संख्या में और अच्छी रसायनशाला में और प्रयोगशालाएँ होंगी। उसके अन्तर्गत हमारे पास ऐसे रसायन शास्त्रियों, इंजीनियरों तथा अन्य विशेषज्ञों की फौज की फौज होनी चाहिये जो राष्ट्र के सच्चे सेवक

हों और उस प्रजा की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें जो अपने अधिकारों और अपनी आवश्यकताओं को दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करती जा रही हैं, और ये सब विशेषज्ञ विदेशी भाषा नहीं बल्कि जनता की ही भाषा बोलेंगे। ये लोग जो ज्ञान प्राप्त करेंगे, वह सब की संयुक्त सम्पत्ति होगी। तब खाली नकल की जगह सच्चा असली काम होगा, और उसका खर्च न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजित होगा।

शिक्षा में अहिंसा का स्थान

गुजरात विद्यापीठ में महात्मा गांधी प्रति सप्ताह वार्तालाप करते थे यह प्रश्न एक बार उनसे वहीं पूछा गया था।

जो भी कोई अहिंसा की बातचीत शुरु करता है, उसके सामने कुछ छोटे मोटे प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जैसे क्या कुत्ता, शेर, भेड़िया, साँप आदि को मारना वांच्छनीय है? या बैंगन अथवा आलू खाना चाहिये या नहीं? या फिर यह प्रश्न किया जाता है कि सेना रखना अथवा शस्त्र द्वारा आक्रमण का सामना करना ठीक है या नहीं? कोई यह जानने का कष्ट करता है कि अहिंसा के सिद्धान्त शिक्षा पर कैसे लागू किये जायँ? क्या आप इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

प्रश्न के प्रारम्भिक भाग से यह प्रगट है कि बहुधा कितने

सीमित दृष्टिकोण के प्रश्न किये जाते हैं। अक्सर हिंसक जीव और निम्न कोटि के जानवरों पर अपनी शक्ति का प्रयोग करके हम यह प्रकट करते हैं कि हम अपने मौलिक कर्त्तव्यों को भूल जाते हैं। प्रायः हम लोगों में बहुत कम को अपने दैनिक जीवन में प्राण घातक जीवों को मारने का प्रश्न उठता है। हम लोग अधिकांश ऐसे हैं जिनमें घातक सांपों को मारने के लिये अहिंसा में काम में लाने के प्रति साहस और प्रेम विकसित नहीं हुआ। हमारे अपने अन्दर के दुर्भाव और क्रोध के सर्पों को कष्ट नहीं दे सकते। पर हम आक्रमणकारी जीवों के मारने का तुच्छ प्रश्न उठाने का साहस करते हैं और इस प्रकार हम एक दुर्वृत्ति की वृत्ति में चक्कर काटते रहते हैं। हम मौलिक कर्त्तव्यों में असफल होते हैं और उससे अपनी आत्मा को सन्तोष देते हैं कि हम घातक जीवों की हत्या करने से विमुख होते हैं। जो अहिंसा का प्रयोग करने की इच्छा रखता है उसे थोड़े दिन के लिये सारे सांप इत्यादि को भूल जाना चाहिये। यदि उसको उन्हें मानना ही पड़ता है तो उसे परेशान न होना चाहिये। परन्तु उसे लोगों के क्रोध और दुर्भावना को सहने का प्रयत्न करना चाहिये। विश्व प्रेम जागृत करने की यह पहिली सीढ़ी है। यदि आप चाहें तो बैंगन और आलू न खायें लेकिन इससे यह न समझें कि आप शुद्ध आत्मा के व्यक्ति हैं या हिंसा का प्रयोग कर रहे हैं। यह विचार ही लज्जित करने के लिए काफी है। अहिंसा केवल भोजन शास्त्र से सम्बन्ध नहीं रखता। यह इसके भी ऊपर है। मनुष्य जो कुछ खाता पीता है वह कुछ भी नहीं है। बल्कि इसके

क्रोध आदि के अन्धकार को मिटाने के बाद उदय होता है। शिक्षा में अहिंसा अधिक तेज और दूर तक चमकता है और यह किसी प्रकार छिप नहीं सकती। हर एक को विश्वास रखना चाहिये कि जब विद्यापीठ अहिंसा के इस वातावरण से भर जायगा तब इसके विद्यार्थी किसी भी संकटपूर्ण स्थिति से परेशान न होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्

१—शिक्षा की वर्तमान पद्धति किसी भी तरह देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। उच्च शिक्षा की तमाम शाखाओं में अंग्रेजी भाषा को माध्यम बना देने के कारण, उसने उच्च शिक्षा पाये हुए मुट्ठी भर लोगों तथा अपढ़ जन समुदाय से जन साधारण तक छन छन कर ज्ञान में जाने में बड़ी रुकावट पड़ गयी है। अंग्रेजी को इस तरह अधिक महत्व देने के कारण शिक्षित लोगों पर इतना अधिक भार पड़ गया है कि प्रत्यक्ष जीवन के लिये उनकी मानसिक शक्तियां पंगु हो गयी हैं और वे अपने ही देश में विदेशियों के भांति बेगाने बन गये हैं। धन्धों के शिक्षण के अभाव ने शिक्षितों को उत्पादक काम के सर्वथा अयोग्य बना दिया है और शारीरिक दृष्टि से भी उनका बड़ा नुकसान हो रहा है प्राथमिक शिक्षा पर आज जो खर्च हो रहा है, वह बिल्कुल निरर्थक है, क्योंकि जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसे पढ़ने वाले

बहुत जल्दी भूल जाते हैं और शहरों तथा गांवो की दृष्टि से उनका दो कौड़ी का भी मूल्य नहीं है। वर्तमान शिक्षा पद्धति से जो कुछ भी लाभ होता है, उससे देश का प्रधान कर दाता तो वंचित ही रहता है। उसके बच्चों के पल्ले तक़रीबन कुछ नहीं आता

२—प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य क्रम कम-से-कम सात साल का हो। उसमें बच्चों को इतना सामान्य ज्ञान मिल जाना चाहिये जो उन्हें साधारणतया मैट्रिक तक की शिक्षा में मिल जाता है। इसमें अंग्रेजी नहीं रहेगी। उसकी जगह कोई एक अच्छा सा धंधा सिखाया जाय।

३—इसलिये कि लड़कों और लड़कियों का सर्वतोमुखी विकास हो सारी शिक्षा जहां तक हो सके एक ऐसे धन्धे द्वारा दी जानी चाहिये, जिसमें कुछ उपार्जन भी हो सके। इसे यों भी कह सकते हैं कि इस धंधे द्वारा दो हेतु सिद्ध होने चाहिये-एक तो विद्यार्थी उस धन्धे की उपज और अपने परिश्रम से अपनी पढ़ाई का खर्चा अदा कर सके, और साथ ही स्कूल में सीखे हुए इस धन्धे के द्वारा उस लड़के या लड़की में उन सभी गुणों और शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाय, जो एक पुरुष व स्त्री के लिये आवश्यक है।

पाठशाला की जमीन, इमारतें और दूसरे जरूरी सामान का खर्च विद्यार्थी के परिश्रम से निकालने की कल्पना नहीं की गई है।

कपास, रेशम और उनकी चुनाई से लेकर सफाई, (कपास लुढ़ाई, पिंजाई, कताई रंगाई, मांड लगाना, ताना लगाना, दो सूती

"उनके लेखों में जो कुछ मूल्यवान और काम का अंश है, वह पश्चिमीय संस्कृति का ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष फल है।......

साठ क्या बल्कि सौ वर्ष पीछे तक देख सकते हैं कि राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक, किसी हिन्दुस्तानी ने जो कुछ भी किसी दिशा में कोई उल्लेखनीय काम किया है तो वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पश्चिमी शिक्षा का ही फल है, या था।"

इन उतारों में इस पर विचार नहीं किया गया है कि हिन्दुस्तान में उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी के माध्यम की क्या कीमत है, बल्कि ऊपर लिखे पुरुषों पर पश्चिमीय संस्कृति के प्रभाव पर तथा उनके लिए उस महत्व पर विचार किया गया है। न तो नवाब साहब ने और न किसी ने ही पश्चिमीय संस्कृति के महत्व या प्रभाव को इनकार किया है। विरोध तो इसका किया जाता है कि पश्चिमीय संस्कृति की वेदी पर पूर्वीय या भारतीय संस्कृति की बलि चढ़ा दी जाय। अगर यह साबित भी किया जा सके कि पश्चिमीय संस्कृति पूर्वीय से ऊँची है, तो भी कुल मिलाकर भारत वर्ष के लिये यह हानिकर ही होगा कि उसके अत्यन्त होनहार पुत्र और पुत्रियाँ पश्चिमीय संस्कृति में पाली जायँ और यों अराष्ट्रीय बनाकर, अपने साधारण लोगों से उनका सम्बन्ध तोड़ दिया जाय।

मेरी राय से ऊपर लिखे हुए पुरुषों का प्रजा पर जो कुछ कि अच्छा प्रभाव पड़ा, उसका मुख्य कारण यह था कि पश्चिमीय संस्कृति का विरोधी दबाव होते हुए भी वे अपने में कुछ न कुछ

पूर्वीय संस्कृति को बचाये रख सके थे, इस सम्बन्ध में, इस अर्थ में कि पूर्वीय संस्कृति की अच्छी से अच्छी बातें उसमें पूरी पूरी खिल न सकीं, उन पर अपना प्रभाव पूरा पूरा डाल न सकीं, पाश्चिमीय संस्कृति को विरोधिनी या हानिकारक समझता हूँ। अपने बारे में तो, जब कि मैंने पश्चिमीय संस्कृति का ऋण भली भांति स्वीकार किया है, यह कह सकता हूं कि जो कुछ राष्ट्र की सेवा मैं कर सका हूं उसका एक मात्र कारण यह है, कि जहां तक मेरे लिये सम्भव हो सका है, वहां तक मैंने पूर्वीय संस्कृति अपने में बचायी है। अंग्रेजी बना हुआ. अराष्ट्रीय रूप में तो मैं जनता के लिये उनके बारे में कुछ भी नहीं जानता हुआ, उनके तौर तरीकों की कुछ भी पर्वाह न करता हुआ, शायद उसके ढंग, आदतों और अभिलाषाओं से घृणा भी करता हुआ, उनके लिये बिल्कुल ही बेकार होता। आज राष्ट्र के इतने लड़कों के अपनी संस्कृति में दृढ़ हो जाने के पहले ही पश्चिमीय संस्कृति के तो अपने स्थान पर ही जितनी भली क्यों न हो, मगर यहां तो, दबाव से छूटने के प्रयत्नों में जाया जाने वाली राष्ट्रीय शक्ति के माप का अनुमान लगाना कठिन है।

जरा इस प्रश्न को हम तोड़कर विचार करें। क्या, चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास या कई दूसरे ऐसे ही लोगों ने जो काम किया है, उससे वे अच्छा कर सकते थे। अगर वे अपने बचपन से ही किसी अत्यन्त सुव्यवस्थित अँग्रेजी शाला में भरती कर दिये गये होते? क्या इस लेख में उल्लिखित पुरुषों ने इन

महान् सुधारकों से ज्यादा अच्छा काम किया है? दयानन्द और अच्छा काम कर लेते? इन आराम तलब अंग्रेजीदाँ राजाओं, महाराजाओं में, जो अपने बचपन से ही पश्चिमीय संस्कृति के प्रभाव में रखकर पाले गये हैं, कौन सा ऐसा है जिसका नाम शिवाजी के साथ एक सांस में भी लिया जा सके। जिन्होंने अपने कष्ट-सहिष्णु आदमियों के साथ उनके खतरों और उनके कष्ट के जीवन में उनका दुख बँटाया? क्या वे निर्भय प्रताप से अच्छे शासक हैं? क्या वे बहादुर लोग पश्चिमीय संस्कृति के भी अच्छे नमूने हैं, जब कि ये पेरिस या लन्दन में बैठे तानारीर कर मजे उड़ाते रहते हैं और इधर इनके राज्यों में आग लगी हुई है? इनकी संस्कृति में गर्व करने की कोई बात नहीं है कि ये अपने ही देश में विदेशी बन गये हैं और अपनी जिस प्रजा पर शासन करने के लिये नियति ने बैठाया है, उसके सुख दुखों में शामिल होने के बदले ये उसका धन और अपनी आत्माएँ योरुप में नष्ट किया करते हैं।

मगर प्रश्न तो पश्चिमीय संस्कृति का नहीं है। सवाल यह है कि किस भाषा के जरिये शिक्षा दी जाय? अगर यह बात न होती कि हमें जो थोड़ी सी उच्च शिक्षा मिली है, वह अंग्रेजी के ही द्वारा मिली है तो ऐसी स्वयंसिद्ध बात को सिद्ध करने की जरूरत नहीं होती कि किसी देश के बच्चों को अपनी राष्ट्रीयता से बचाये रखने के लिये अपनी ही स्वदेशी भाषा या भाषाओं के जरिये ऊँची से ऊँची सभी शिक्षायें मिलनी चाहिएँ। निश्चय यह ही तो स्व

स्पष्ट है कि किसी देश के युवक वहां की प्रजा से न तो जीवन-सम्बन्ध पैदा कर सकते हैं और न कायम ही रख सकते हैं, जब तक कि वे ऐसी ही भाषा के जरिये शिक्षा पाकर उसे अपने में जज्ब न कर लें जिसे प्रजा समझ सके। आज इस देश के हजारों नवयुवक एक ऐसी विदेशी भाषा और महावरों को सीखने में जो उनके दैनिक जीवन के लिये बिल्कुल बेकार हैं और जिसे सीखने में उन्हें अपनी मातृभाषा या उसके साहित्य की उपेक्षा करनी पड़ती है, कई साल नष्ट करने को लाचार किये जाते हैं। इससे होने वाली राष्ट्र की बेहिसाब हानि का अन्दाजा कौन लगा सकता है? इससे बढ़कर कोई वहम पहले था ही नहीं, कि अमुक भाषा का विस्तार हो ही नहीं सकता या उसके जरिये गूढ़ या वैज्ञानिक बातें समझाई ही नहीं जा सकतीं। भाषा तो अपने बोलने वालों के चरित्र तथा विकास की सच्ची छाया है।

विदेशी शासन के कई दोषों में से देश के बच्चों पर विदेशी भाषा का मारक छाया डालना सबसे बड़े दोषों में से एक गिना जायगा। इसने राष्ट्र की शक्ति हर ली है, विद्यार्थियों की आयु घटा दी है, उन्हें प्रजा से दूर कर दिया है और बे जरूरत ही शिक्षा खर्चीली कर दी है। अगर यह क्रिया अब भी जारी रही, तो जान पड़ता है कि यह राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी। इस लिये जितनी जल्दी शिक्षित भारतवर्ष विदेशी माध्यम के वशीकरण से निकल जाय, प्रजा को तथा उसको उतना ही लाभ होगा।

———

वर्धा शिक्षा-पद्धति

उन्होंने कहा कि, "मैंने जो प्रस्ताव विचारार्थ रखे हैं, उनमें प्राइमरी शिक्षा और कालेज की शिक्षा दोनों का ही निर्देश है, पर आप लोग अधिकतर प्राथमिक शिक्षा के बारे में ही अपने ही विचार जाहिर करें। माध्यमिक शिक्षा को मैंने प्राथमिक शिक्षा में शामिल कर लिया है, क्योंकि प्राथमिक कही जाने वाली शिक्षा हमारे गांवों के बहुत ही थोड़े लोगों को मुयस्सर है। मैं महज गांवों के ही इन लड़कों और लड़कियों की जरूरतों के बारे में कह रहा हूं, जिनका कि बहुत बड़ा भाग बिल्कुल निरक्षर है। मुझे कालेज की शिक्षा का अनुभव नहीं है, हालांकि कालेज के हजारों लड़कों के सम्पर्क में मैं आया हूं, उनके साथ दिल खोलकर बातें की हैं और खूब पत्र-व्यवहार भी हुआ है। उनकी आवश्यकताओं को, उनकी नाकामयाबियों को और उनकी तकलीफ़ों को मैं जानता हूँ। पर अच्छा हो कि आप अपने को प्राथमिक शिक्षा तक ही महदूद रखें। कारण यह है कि मुख्य प्रश्न के हल होते ही कालेज की शिक्षा का गौड़ प्रश्न भी हल हो जायगा।

"मैंने खूब सोच समझकर यह राय कायम की है कि प्राथमिक शिक्षा की यह मौजूदा प्रणाली न केवल धन और समय का अपव्यय करने वाली है, बल्कि नुकसान कारक भी है अधिकांश लड़के अपने मां बाप के तथा अपने खानदानी पेशे धन्धे के काम के नहीं रहते वे बुरी बुरी आदतें सीख लेते हैं, शहरी तौर तरीकों के रंग में रंग जाते हैं और थोड़ी सी ऊपरी बातों की जानकारी

ही उन्हें हासिल होती है, जिसे और चाहे जो नाम दिया जाय, पर जिसे शिक्षा नहीं कहा जा सकता। इसका इलाज मेरे ख्याल में, यह है कि उन्हीं औद्योगिक और दस्तकारी की तालीम के जरिये शिक्षा दी जाय। मुझे इस प्रकार की शिक्षा का कुछ जाति अनुभव है। मैंने दक्षिण अफ्रीका में खुद अपने लड़कों को और दूसरे हर जाति और धर्म के बच्चों को टाल्सटाय फार्म में किसी न किसी दस्तकारी द्वारा इस प्रकार की तालीम दी थी। जैसे बढ़ईगीरी या जूते बनाने का काम सिखाया था, जिसे कि मैंने केलनबेक से सीखा था और केलनबेक ने एक ट्रैपीस्ट मठ में जाकर इस हुनर की शिक्षा प्राप्त की थी। मेरे लड़कों ने और उन सब बच्चों ने मुझे विश्वास है कुछ गँवाया नहीं है, यद्यपि मैं उन्हें ऐसी शिक्षा नहीं दे सका। जिससे कि खुद मुझे या उन्हें सन्तोप हुआ हो। क्योंकि समय मेरे पास बहुत कम रहता था, और काम इतने अधिक रहते थे कि जिनका कोई शुमार नहीं।

दस्तकारी की तालीम द्वारा शिक्षण

'मैं असल जोर धंधे उद्यम पर नहीं, किन्तु हाथ उद्योग द्वारा शिक्षण पर दे रहा हूं—साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विपयों की शिक्षा पर। शायद इस पर यह आपत्ति उठाई जाय कि माध्यमिक युगों में तो ऐसी कोई चीज नहीं सिखाई जाती थी मगर पेशे धंधे की तालीम तब ऐसी होती थी कि उससे कोई शैक्षणिक मतलब नहीं निकलता था। इस युग में यह दशा हुई कि लोग उन पेशों को जो उनके घरों में होते थे

भूल गये हैं। पढ़ लिख कर क्लर्कों का काम हाथ में ले लिया है और उस तरह वे आज देहात के काम के नहीं रहे हैं। नतीजा इसका यह हुआ कि किसी भी औसत दर्जे के गांव में हम जांय तो वहां अच्छे निपुण बढ़ई या लुहार का मिलना असम्भव हो गया है। दस्तकारियां करीब-करीब अदृश्य हो गई हैं और कताई का उद्योग जो उपेक्षा की नजर से देखा जा रहा था लङ्काशायर चला गया, जहाँ कि उसका विकास हुआ, धन्यवाद है अंग्रेजों की कमाल की प्रतिभा को कि हुनर उद्योगों को उन्होंने आज किस हद तक विकसित कर दिया है। पर मैं जो यह कहता हूँ इसका मेरे उद्योगीकरण सम्बन्धी विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं।

इलाज इसका यह है कि हर एक दस्तकारी की कला और विज्ञान को व्यावहारिक शिक्षण द्वारा सिखाया जाय और फिर उस व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा शिक्षा दी जाय। उदाहरण के लिये तकली पर की कताई कला को ही ले लीजिये। इसके द्वारा कपास की मुख्तलिफ किस्मों का और हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्त की किस्म-किस्म की जमीनों का ज्ञान दिया जा सकता है। वस्त्र-उद्योग हमारे देश में किस तरह नष्ट हुआ इसका इतिहास हम अपने बच्चों को बता सकते हैं, इसके राजनीतिक कारणों को बतायेंगे तो भारत में अंग्रेजी राज्य का इतिहास भी आ जायगा। गणित इत्यादि की भी शिक्षा इसके द्वारा उन्हें दी जा सकती है। मैं अपने छोटे पोते पर इसका प्रयोग कर रहा हूँ जो शायद ही यह महसूस करता हो कि उसे कुछ सिखाया जा रहा है। क्योंकि

वह तो हमेशा खेलता कूदता रहता है, और हँसता है और भूल जाता है।

साहित्य जो मैं चाहता हूँ

'हमारा यह साहित्य आखिर किसके लिये है? अहमदाबाद के इन लक्ष्मीपुत्रों के लिये तो हरगिज नहीं। उनके पास तो इतना धन पड़ा हुआ है वे विद्वानों को अपने संग्रह में रख सकते हैं और अपने घर पर ही बड़े बड़े ग्रन्थालय रख सकते हैं। पर आप उस गरीब देहाती के लिये क्या निर्माण कर रहे हैं, जो कुएँ पर गन्दी से गन्दी गालियां बकते हुये अपने बैलों को वह भारी चड़स खींचने के लिये आर लगाता है? बरसों पहले मैंने श्री नरसिंह राव से–जो कि मुझे अफसोस है कि इतने बूढ़े और बीमार हैं कि यहाँ तक नहीं आ सकते—कहा था कि वह इस चड़स चलाने वाले के लिये कोई ऐसी सजीव लय या छोटा सा गाना बतावें जिसे वह मस्त हो कर गा सके और उन गन्दी गालियों को जिन्हें वह जानता ही नहीं कि ये गालियां हैं, हमेशा के लिए भूल जाय। वह आदमी कोचरब का रहने वाला था, जहाँ कि हमारा सत्याग्रह आश्रम शुरू-शुरू में रखा गया था। पर कोचरब कोई गाँव थोड़ा ही है, वह तो अहमदाबाद की एक गन्दी बस्ती है। अब मेरे पास ऐसे सैकड़ों लोग हैं, जिन्हें ऐसे जानदार साहित्य की जरूरत है। मैं उन्हें कहाँ से दूं? आज कल मैं सेगाँव में रहता हूँ जिसकी आबादी करीब ६०० की है। उनमें मुश्किल से

दस वीस आदमी कुल पचास भी नहीं लिख पढ़ सकते हैं। इन दस वीस आदमियों में से तीन चार भी ऐसे नहीं जो खुद क्या पढ़ रहे हैं, यह समझ सकें। औरतों में तो एक भी पढ़ी लिखी नही हैं। कुल आवादी के तीन चौथाई आदमी हरिजन हैं। मैंने सोचा कि मैं उनके लिये एक छोटा सा पुस्तकालय खोलूं। किताबें तो ऐसी ही होनी चाहिये थीं, जिन्हें वे समझ सकें। इसलिये मैंने दो तीन लड़कियों से १०—१२ स्कूली किताबें इकठ्ठी कीं जो उनके पास यों ही पड़ी हुई थीं। मेरे पास एक वकालत पास नवयुवक है। पर वह तो सारा कानून भूल भुला गया है और उसने अपनी किस्मत मेरे साथ जोड़ दी है। वह हर रोज गाँव जाता है और इन किताबों में से पढ़ कर उन लोगों को ऐसी वातें सुनाता रहता है, जिसे वे समझ सकें और हजम भी कर सकें। वह अपने साथ दो-एक अखबार भी ले जाता है। पर वह उन्हें हमारा अखबार कैसे समझावे? वे क्या जानें कि स्पेन और रूस क्या हैं और कहाँ हैं? वे भूगोल को क्या जानें? ऐसे लोगों को मैं क्या पढ़ के सुनाऊँ? क्या मैं उन्हें श्री मुन्शी के उपन्यास पढ़ करके सुनाऊँ? या श्री कृष्णलाल झवेरी का बंगला से उल्था किया हुआ श्रीकृष्ण चरित्र सुनाऊँ? किताब तो वह अच्छी है, परन्तु मुझे भय है कि मैं उसे उन अपढ़ लोगों के सामने नहीं रख सकता। उसे वे आज नहीं समझ सकते।

"आपको जानना चाहिये कि सेगाँव के एक लड़के को यहाँ

लाने की मेरी बहुत इच्छा होने पर भी मैं उसे नहीं लाया हूं। वह बेचारा यहाँ क्या करता? वह तो अपने आप को एक दूसरी ही दुनिया में पाता, लेकिन दूसरे देहातियों के साथ साथ उसका भी प्रतिनिधि बनकर मैं यहाँ आया हूँ। यही सच्चा प्रतिनिधिक शासन है। किसी दिन मैं कहूंगा कि आप खुद वहाँ मेरे साथ चलिये, तब तक मैं आपका रास्ता साफ करलूं। रास्ते में काँटे जरूर हैं, पर मैं यह कोशिश करूँगा कि ये कांटे निरे काँटे न हों, बल्कि उनमें फूल भी हों।"

"आपसे यह कहते हुए मुझे डीन फरार की और उसकी लिखी ईसा की जीवनी याद आ रही है। अंग्रेजों के राज्य से भले ही मुझे लड़ना पड़े पर मुझे अंग्रेजों और उनकी भाषा से द्वेष नहीं है। सच तो यह है कि मैं उनके साहित्य-भंडार की दिल से कद्र करता हूं। डीन फरार की किताब अंग्रेजी भाषा की अमूल्य निधि में से एक चीज है। आपको पता है कि यह किताब लिखने में उसने कितना परिश्रम किया है? पहले तो ईसामसीह पर अंग्रेजी भाषा में जितनी किताबें उसे मिल सकीं, वे सब उसने पढ़ डालीं। फिर वह फिलिस्तीन पहुँचा और बाइबिल में लिखी हर जगह और मुक़ाम को ढूंढने की कोशिश की और फिर इंग-लैंड से जन-साधारण के लिये श्रद्धा और भक्ति भरे हृदय से ऐसी भाषा में पुस्तक लिखी, जिसे सब समझ सकें। वह डाक्टर जॉनसन की नहीं, बल्कि डिकन्सन की सीधी-सादी शैली में लिखी हुई है। क्या हमारे यहां भी ऐसे लोग हैं, जो

फरार की तरह गांव के लोगों के लिये ऐसी महान कृतियां निर्माण कर सकें ? हमारे साहित्यिकों की आंखों और दिमाग में तो कालिदास, भवभूति तथा अंग्रेजी लेखक घूमा करते हैं और वे नक़ली चीजें ही निर्माण करते हैं। मैं चाहता हूं कि वे गांवों में जावें, ग्रामीण जीवन का अध्ययन करें और जीवनदायी साहित्य निर्माण करें।"

"निस्सन्देह आज सुबह प्रदर्शिनी में मैंने जो कुछ देखा, उसे देखकर मुझे बड़ी खुशी और गर्व हो रहा है। गुजरात में मैंने कभी ऐसी प्रदर्शिनी नहीं देखी थी, पर मुझे आपसे यह भी कह देना चाहिये कि मुझे कहीं अपने आप बोलती हुई तसवीर नहीं दिखाई दी। एक कलाकृति को समझाने के लिये किसी कलाकार की मुझे क्यों जरूरत पड़नी चाहिये, खुद तसवीर ही मुझसे क्यों न अपनी कहानी कहे ? अपना मतलब मैं आपसे और भी साफ़ करदूं। मैंने पोप के कला भवन में क्रूसारोहण करते हुए हजरत ईसा की एक मूर्ति देखी थी इतनी सुन्दर चीज थी वह कि मैं तो मंत्र-मुग्ध की तरह देखता ही रह गया। उसे देखे पाँच साल हो गये पर आज भी वह मेरी आंखों के सामने खड़ी हुई है। उसका सौन्दर्य समझाने के लिये वहाँ कोई नहीं था। यहां भी बेलूर (मैसूर) में पुराने मन्दिरों में दीवारगिरी पर एक तसबीर देखी, जो खुद ही मुझसे बोलती थी और जिसे समझाने के लिये किसी की जरूरत नहीं थी। जो कामदेव के बाणों से अपने आपको बचाने का प्रयत्न कर रही थी और अपनी

साड़ी को सम्हाल रही थी। और आख़िर उसने उस पर विजय पा ही तो ली जो विच्छू के रूप में उसके पैरों में पड़ा हुआ था। उस ज़हरदार विच्छू के ज़हर से उसे जो असह्य पीड़ा हो रही थी, उसे मैं उसके चेहरे पर साफ़, साफ़ देख सकता था। कम से कम उस विच्छू और स्त्री के चित्र का मैंने तो यही अर्थ लगाया, सम्भव है श्री रविशङ्कर रावल कोई दूसरा भी अर्थ बता दें।

"मैं क्या चाहता हूँ, यह बताते हुए घण्टों में आपके सामने बोल सकता हूँ। मैं ऐसा साहित्य और ऐसी कला चाहता हूँ, जिसे करोड़ों लोग समझ सकें। तस्वीर का ख़ाका मैं आपको बता चुका हूँ, तफ़सील से उसे आप पूरा करेंगे। मुझे जो कुछ कहना था, वह कह चुका इस समय तो मेरा हृदय रो रहा है, लेकिन समय की टक्करों ने उसे पर्याप्त रूप से इतना सख्त बना दिया है कि दिल टुकड़े-टुकड़े होने के अवसरों पर भी विदीर्ण नहीं हो जाता। जब मैं सेगांव और उसके अस्थि-पञ्जर लोगों का ख्याल करता हूं जब मुझे सेगांव और उसके निवासियों का ख्याल आता है, तब मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि हमारा साहित्य बहुत ही शोचनीय स्थिति में है। आचार्य आनन्द शङ्कर ध्रुव ने मेरे पास चुनी हुई सौ पुस्तकों की एक सूची भेजी थी, लेकिन उनमें एक भी ऐसी नहीं, जो उन लोगों के काम आसके। बताईये, मैं उनके सामने क्या रक्खूं ? और वहां की स्त्रियां, मुझे आश्चर्य होता है कि मेरे सामने अहमदाबाद की जो बहिनें मौजूद हैं, उनमें और उन (सेगांव) की स्त्रियों में क्या कोई सम्बन्ध है ?

सेगांव की स्त्रियां नहीं जानतीं कि साहित्य क्या है ? वे तो मेरे साथ 'रामधुन' भी नहीं दोहरा सकतीं। वे तो बस गुलामों की तरह पीसना और काम करना जानती हैं। बिना इस काम की परवा किये कि धूप है या बारिश, सांप है या बिच्छू—वे तो पानी भर लाती हैं, घास काटतीं और लकड़ियां चीरती हैं, और मैं उन्हें कुछ पैसे देकर कोई काम कराता हूँ, तो मुझे अपना बड़ा भारी हितैषी समझती हैं। इन मूक बहिनों के पास मैं क्या ले जाऊं ? ऐसे करोड़ों लोग अहमदाबाद में नहीं रहते, बल्कि भारत के गांवों में रहते हैं। उनके पास क्या ले जाना चाहिये ? यह मैं जानता हूँ, पर आपसे कह नहीं सकता। मैं न तो वक्ता हूँ न लिखना ही मेरा धन्धा है। मैंने तो वही लिखा है, जो मेरे पास था और जिसे प्रगट किये बगैर मैं रह नहीं सकता था। और एक वक्त तो मैं बिल्कुल मूक ही था, यहां तक कि जब तक मैंने वकालत शुरू नहीं करदी, तब तक मेरे मित्र मुझे निरा बुद्धू ही कहा करते थे, और अदालतों में भी मुश्किल से ही मैं होठ खोलकर कुछ बोला था। सच तो यह है कि लिखना या बोलना मेरा काम नहीं है। मेरा तो काम यह है कि उनके बीच रहकर उन्हें बताऊं कि कैसे रहना चाहिये। स्वराज्य की चाभी शहरों में नहीं, गावों में है। इसलिए मैं वहां जाकर बस गया हूं—वह गांव भी मेरा ढूंढ़ा हुआ नहीं है, बल्कि मेरे सामने वह खुद-ब-खुद आ गया है।"

"मैं तो आप से यह कहना चाहता हूँ कि अगर हमारे साहित्य

में 'नवल कथायें' और 'नवलिकायें' न भी हों तो गुजराती साहित्य सूना तो नहीं रहेगा। कल्पना जगत में हम जितना भी कम विचरण करें उतना ही अच्छा है। चालीस साल पहले जब मैं दक्षिण अफ्रिका गया, तो अपने साथ कुछ पुस्तकें भी ले गया था। इनमें टेलर नामक एक अंग्रेज का लिखा गुजराती भाषा का व्याकरण भी था। इस पुस्तक ने मानों मुझ पर जादू डाल दिया था, पर अफ़सोस उसे फिर से पढ़ने का मुझे मौका नहीं मिला। जिस रोज मैं यहां इस परिषद का सभापति बनकर आया, मैंने पुस्तकालय से इस पुस्तक को निकाल कर मँगाया। पर पुस्तक के अन्त में दिये हुए लेखक के कुछ उद्गारों को छोड़ कर मैं उसमें से कुछ नहीं पढ़ सका। लेखक के इस अन्तिम वक्तव्य के कुछ शब्द तो मानों मेरे हृदय पर अङ्कित से हो गये। टेलर महोदय भावावेश में आकर लिखते हैं—"कौन कहता है कि गुजराती दरिद्र या हीन है? गुजराती, संस्कृति की पुत्री, दरिद्र हो ही कैसे सकती है? हीन कैसे हो सकती है? यह दरिद्रता तो भाषा का कोई अपना निजी दोष नहीं। वह तो गुजराती भाषा भाषी लोगों की दरिद्रता है, जो भाषा में प्रतिबिम्बित हो रही है। जैसा बोलने वाला, वैसी उसकी भाषा वह दरिद्रता इन मुट्ठी भर उपन्यासों से कभी दूर की जा सकती है? इसमें हमें क्या लाभ होना है? मैं एक उदाहरण लूँ। हमारी भाषा में कई "नन्द बत्रीसियों" हैं। नहीं, मैं तो आपसे फिर ग्रामों की ओर लौट चलने के लिये कहूँगा और सुनाऊँगा कि मैं क्या चाहता हूं। ज्योतिष शास्त्र को ही लीजिये। इस विषय में मेरा घोर अज्ञान है। यरवदा जेल में

मैंने देखा कि काका साहब रोज रात में नक्षत्रों को देखते रहते हैं और उन्होंने यह शौक मुझे भी लगा दिया। मैंने खगोल की कुछ पुस्तकें और एक दूरबीन भी मंगाई। अंग्रेजी में तो बहुत सी पुस्तकें मिल गईं। पर गुजराती में एक भी पुस्तक नहीं मिली। यों नाम मात्र को एक पुस्तक मेरे पास आई थी। पर वह भी कोई पुस्तक कही जा सकती है ? अब बतलाइये, अपने लोगों को, ग्रामवासियों को ज्योतिष शास्त्र पर अच्छी पुस्तकें हम क्यों नहीं दे सकते ? पर ज्योतिष की बात छोड़िये। भूगोल की भी काम चलाने लायक पुस्तकें हमारे पास हैं ? कम से कम मेरी जान में तो एक भी नहीं है। बात यह है कि हमने अब तक गांव के लोगों की परवाह ही नहीं की और यद्यपि अपने भोजन के लिये हम उन्हीं पर निर्भर करते हैं तो भी हम तो अब तक यही समझते आये हैं, मानों हम उनके आश्रयदाता हैं और वे हमारे आश्रित हैं। हमने उनकी जरूरतों का भी ख्याल ही नहीं किया। सारे संसार में यही एक अभागा देश है, जहां सारा कारोबार एक विदेशी भाषा के जरिये होता है। तब इसमें आश्चर्य ही क्या, अगर हमारी आत्मिक दुर्बलता भाषा में भी प्रगट हो। फ्रेंच या जर्मन भाषा में एक भी ऐसी अच्छी किताब नहीं जिसका अनुवाद कि उसके प्रकाशन के बाद अंग्रेजी भाषा में न हो गया हो। अंग्रेजी भाषा का प्राचीन काव्य और इतिहास सम्बन्धी साहित्य भी साधारण पढ़े लिखे और बच्चों तक के लिये संक्षिप्त रूप में और सस्ते से सस्ते मूल्य में मिल सके इस तरह सुलभ कर दिया गया है।

क्या हमने इस तरह कुछ किया है ? क्षेत्र बड़ा विशाल और अछूता पड़ा हुआ है और मैं चाहता हूं कि हमारे साहित्य-सेवक और भाषाविद् इस काम में लग जांय। मैं चाहता हूं कि वे गांवों में जांय, लोगों की नब्ज देखें, उनकी जरूरतों की जांच करें और उन्हें पूरा करें। वर्धा में हमारा एक ग्राम सेवक विद्यालय है. मैंने उसके आचार्य से कहा कि अगर आप बुद्धिमत्ता के साथ ग्रामोद्योगों पर कोई किताब लिखना चाहें तो खुद कुछ ग्रामोद्योग सीख लें। यह कभी न सोचिये कि गांवों की कुन्द हवा में आपकी बुद्धि अपनी ताजगी खो देगी। मैं तो कहूँगा कि इसका कारण गांवों का संकुचित वायुमण्डल नहीं है। आप खुद ही संकुचित वायुमंडल लेकर वहां जाते हैं। अगर आप वहां अपनी आंखें, कान और बुद्धि को खोल कर जायेंगे तो गांवों के शुद्ध सात्विक वायुमण्डल के सजीव सम्पर्क में आपकी बुद्धि खूब ताजापन अनुभव करेगी।

इसके बाद वे उस विषय पर आये, जिस पर कि विषय-समिति में उन्होंने अपने विचार प्रगट किये थे। वायु-मण्डल अनुकूल नहीं था, इसलिये उस विषय पर वे कोई प्रस्ताव नही ला सके। "ज्योतिसंघ" नामक आन्दोलन की संचालिका बहनों ने उन्हें एक पत्र लिखा था। इसी को लेकर उन्होंने कुछ कहा। इस पत्र के साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमें उन्होंने उस वृत्ति की निन्दा की जो आज कल स्त्रियों का चित्रण करने के विषय में वर्तमान साहित्य में चल रही है। गांधीजी को लगा कि उनकी शिकायत में काफी वजह है और उन्होंने कहा—"इस आरोप में

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आज कल के लेखक स्त्रियों का बिलकुल झूठा चित्रण करते हैं। जिस अनुचित भावुकता के साथ स्त्रियों का चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर सौन्दर्य का जैसा भद्दा और असभ्यता पूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देखकर इन कितनी ही बहिनों को घृणा होने लग गई है। क्या उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही में है? पुरुषों की लालसा भरी विकारी आंखों को तृप्त करने की क्षमता में ही है? इस पत्र की लेखिकाएँ पूछती हैं और उनका पूछना बिलकुल न्याय है कि क्यों हमारा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानो हम कमजोर और दब्बू औरतें हों, जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घर के तमाम हल्के से हल्के काम करते रहें और जिनके एक मात्र देवता उनके पति हैं. जैसी वे हैं वैसी ही उन्हें क्यों नहीं बतलाया जाता? वे कहती हैं 'न तो हम स्वर्ग की अप्सराएँ हैं, न गुड़ियां हैं और न विकार और दुर्बलताओं की गठरी ही हैं। पुरुषों की भांति हम भी तो मानव प्राणी ही हैं। जैसे वे वैसे ही हम भी हैं। हम में भी आजादी की आग है। मेरा दावा है कि उन्हें और उनके दिल को मैं अच्छी तरह जानता हूं। दक्षिण अफ्रीका में एक समय मेरे पास स्त्रियां ही स्त्रियां थीं। मर्द सब उनके जेलों में चले गये थे। आश्रम में कोइ ६० स्त्रियां थीं। और मैं उन सब लड़कियों और स्त्रियों का पिता और भाई बन गया था। आपको सुन कर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुये उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहां तक कि अन्त में वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गईं।

मुझसे यह भी कहा गया है कि हमारे साहित्य में स्त्रियों का खामखा देवता के सदृश वर्णन किया गया है। मेरी राय में इस तरह का चित्रण भी बिलकुल गलत है। एक सीधी सी कसौटी मैं आपके सामने रखता हूं। उनके विषय में लिखते समय आप उनकी किस रूप में कल्पना करते हैं? आपको मेरी यह सूचना है कि आप कागज पर कलम चलाना शुरू करें, इससे पहले यह ख्याल करलें कि स्त्री जाति आपकी माता है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आकाश से जिस तरह इस प्यासी धरती पर सुन्दर जल की धारा वर्षा होती है, इसी तरह आपकी लेखनी से भी शुद्ध से शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिये, एक स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता थी। कितने ही लेखक स्त्रियों की आध्यात्मिक प्यास को शान्त करने के बजाय उनके विकारों को जागृत करते हैं। नतीजा यह होता है कि कितनी ही भोली स्त्रियां यही सोचने में अपना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासों में चित्रित स्त्रियों के वर्णन के मुकाबिले में वे अपने को किस तरह सजा और बना सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्य में उनका नख-शिख वर्णन क्या अनिवार्य है? क्या आपको उपनिषदों, कुरान और बाइबिल में ऐसी चीजें मिलती हैं? फिर भी क्या आपको पता नहीं कि बाइबिल को अगर निकाल दें, तो अंग्रेजी भाषा का भण्डार सूना हो जायगा? उसके बारे में कहा जाता है कि उसमें तीन हिस्सा बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर। कुरान के अभाव में अरबी को सारी दुनिया भूल जायगी और तुलसीदास

के अभाव में जरा हिन्दी की तो कल्पना कीजिये। आज कल के साहित्य में स्त्रियों के बारे में जो कुछ मिलता है, ऐसी बातें आपको तुलसीकृत रामायण में मिलती हैं।

स्पष्टीकरण

"आपने गत ६ जुलाई के 'हरिजन' में उच्च शिक्षा पर जो विचार प्रगट किए हैं, उन्हें जरा और स्पष्ट करने की आवश्यकता है। मैं आप के बहुत से विचारों, खास कर इस विचार से सहमत हूं, कि शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होने के कारण विद्यार्थी को भारी हानि पहुँचती है। मैं यह भी महसूस करता हूं कि आज-कल जिसे उच्च शिक्षा कह कर पुकारा जाता है, उसे यह नाम देना वैसा ही है, जैसे कोई पीतल को ही सोना समझ बैठे। मैं यह जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ, क्योंकि मैं अभी हाल तक तथा कथित उच्च शिक्षा का एक अध्यापक था।

"साधारण आय और उच्च शिक्षा का दावा और उसका नतीजा अर्थात् विश्वविद्यालय स्वावलम्बी होने चाहिएं यह आपका तीसरा निष्कर्ष है जो मुझे कायल नहीं कर सका।"

"मेरा विश्वास है कि हरेक देश उन्नति की ओर जारहा है। और उसे न केवल रसायन शास्त्र, डाक्टरी तथा इञ्जीनियरी

सीखने की ही सुविधाएँ हों वल्कि साहित्य दर्शन, इतिहास और समाज शास्त्र आदि सभी प्रकार की विद्याएँ सीखने की काफ़ी सुविधाएँ अवश्य प्राप्त होनी चाहिएँ।

"तमाम उच्चशिक्षाओं की प्राप्ति के लिए ऐसी वहुत सी सुविधाओं की आवश्यकता है, जो राज की सहायता के वगैर प्राप्त नहीं हो सकतीं। ऐसी चेष्टा में जो देश स्वेच्छा पूर्वक प्रयत्न पर ही आश्रित हो, उसका पिछड़ जाना और हानि उठाना अनिवार्य है, यह कभी आशा ही नहीं की जा सकती कि वह देश स्वतन्त्र हो सकता है, या अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में समर्थ होगा। राज को हर प्रकार की शिक्षा की स्थिति पर सतर्कता पूर्वक निगाह रखनी चाहिए इसके साथ ही साथ निजी प्रयत्नभी अवश्य होने चाहिए सार्वजनिक संस्थाओं को मुक्त हस्त होकर दान देने के लिए हमारे अन्दर लार्ड नफ़ूफ़ील्ड्स और मि० राकफेलर जैसे दानी होने ही चाहिए। राज्य इस शिक्षा में खामोश दर्शक की तरह नहीं रह सकता और न उसे ऐसा रहने ही देना चाहिए। उसे क्रियाशीलता के साथ आगे आकर संगठन, सहायता और पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप इस सवाल के इस पहलू को और भी स्पष्ट करें।

आपने अपने लेख के अन्त में कहा है 'मेरी योजना के अनुसार अधिक और वेहतर पुस्तकालय होंगे।'

"मैं इस योजना को ऐसा नहीं समझता और न मैं यह समझ सका कि इस योजना के अनुसार अधिक और वेहतर पुस्तकालय

तथा प्रयोगशालाएँ कैसे स्थापित हो सकेंगी। मेरा यह मत है कि ऐसे पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ अवश्य कायम रहने चाहिएँ और जब तक दाता सार्वजनिक संस्थाएँ काफ़ी तादाद में आगे न आयें—राज तब तक अपनी हर प्रकार की जिम्मेवारी का परित्याग नहीं कर सकता।"

लेख तो मेरा काफ़ी स्पष्ट है, अगर उसमें जो "निश्चित प्रयोग" का उल्लेख हुआ है, उसका विस्तृत अर्थ न दे दिया जाय। मैंने ऐसे दारिद्र पीड़ित भारत का चित्र नहीं खींचा था, जिसमें लाखों आदमी अन-पढ़ हैं। मैंने तो अपने लिये ऐसे भारत का चित्र खींचा है, जो अपनी बुद्धि के अनुसार मुतवातर तरक्की कर रहा है। मैं इसे पश्चिम की मरणासन्न सभ्यता की थर्डक्लास या फर्स्टक्लास की भी नकल नहीं कहता। यदि मेरा स्वप्न पूरा हो जाय तो भारत के सात लाख गाँवों में से हरेक गाँव समृद्ध प्रजातन्त्रात्मक बन जायगा। उस प्रजातन्त्र का कोई भी व्यक्ति अनपढ़ न रहेगा, काम के अभाव में कोई बेकार न रहेगा, बल्कि किसी-न-किसी कमाऊ धंधे में लगा होगा। हरेक आदमी को पौष्टिक चीजें खाने को, रहने को अच्छे हवादार मकान, और तन ढकने को काफ़ी खादी मिलेगी, और हरेक देहाती को सफ़ाई और आरोग्य के नियम मालूम होंगे और वह उनका पालन किया करेगा। ऐसे राज की विभिन्न प्रकार की और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताएँ होनी चाहिए, जिन्हें या तो वह पूरा करेगा अथवा उसकी गति रुक जायगी। इसलिये मैं ऐसे राज्य की

अच्छी तरह कल्पना कर सकता हूँ, जिसमें सरकार ऐसी शिक्षा के लिये आर्थिक सहायता देगी, जिसकी पत्र-प्रेषक ने चर्चा की है। इस सिलसिले में बस इतना ही कहना चाहता हूँ। और यदि राज की ऐसी आवश्यकताएँ होंगी, तो निश्चय ही उसे ऐसे पुस्तकालय रखने होंगे।

मेरे विचार के अनुसार ऐसी सरकार के पास जो चीज़ नहीं होगी, वह है बी० ए० और एम० ए० डिग्रीधारियों की फ़ौज, जिनकी बुद्धि दुनियाँ भर का किताबी ज्ञान ठूँसते-ठूँसते कमजोर हो चुकी है और जिनके दिमाग़ अंग्रेजों की तरह फर-फर अंग्रेजी बोलने की असम्भव चेष्टा में प्रायः निःशक्त हो गये हैं। इनमें से अधिकांश को न केवल काम मिलता है और न नौकरी। और कभी कहीं नौकरी मिलती भी है तो वह आम तौर पर क्लर्की की होती है और उसमें उनका वह ज्ञान किसी काम नहीं आता जो उन्होंने स्कूलों और कालेजों में बारह साल गंवा कर प्राप्त किया है।

विश्व-विद्यालय की शिक्षा उसी समय स्वावलम्बी होगी, जब राज उसका उपयोग करेगा। उस शिक्षा पर खर्च करना तो जुर्म है, जिससे न राष्ट्र का लाभ होता है और न किसी व्यक्ति का ही। मेरी राय में ऐसी कोई बात नहीं है कि किसी व्यक्ति को तो लाभ पहुँचे और वह राष्ट्र के लिये लाभदायी सिद्ध न हो सकती हो। और चूँकि मेरे बहुत से आलोचक वर्तमान उक्त शिक्षा सम्बन्धी मेरे विचारों से सहमत जान पड़ते हैं और चूँकि प्राइमरी या

सैकण्डरी शिक्षा का वास्तविकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये यह राज के किसी काम के लिये नहीं है। जब प्रत्यक्ष रूप से उसका आधार वास्तविकताओं पर होगा, और माध्यम मातृ-भाषा होगा—तो शायद उसके विरुद्ध कहने की कुछ गुंजाइश न रहे। शिक्षा का आधार वास्तविकता का होने का अर्थ ही यही है कि उसी आधार पर राष्ट्रीय अर्थात् राज्य की आवश्यकताएँ है। उस हालत में राज उसके लिये खर्च करेगा। जब वह शुभ दिन आयगा तो हम देखेंगे कि बहुत सी शिक्षण संस्थायें स्वेच्छा से दिये हुए दान के सहारे चल रही हैं, भले ही उनसे राज को लाभ पहुँचे या न पहुँचे। आज हिन्दुस्तान में शिक्षा पर जो खर्च किया जा रहा है, वह इसी प्रकार से सम्बन्ध रखता है। इसलिये उसका भुगतान, यदि मेरा बस चले, जनरल रेवेन्यू से नहीं होना चाहिये।

पर मेरे आलोचकों का दो मुख्य प्रश्नों—शिक्षा के माध्यम और वास्तविकताओं पर सहमत हो जाने से ही मैं खामोश नहीं हो सकता। उन्होंने इतने दिनों तक वर्तमान शिक्षा पद्धति की आलोचना की और उसे बर्दाश्त किया, पर अब जब कि उसमें सुधार करने का समय आ गया है, तो काँग्रेसजनों को अधीर हो जाना चाहिये। यदि शिक्षा का माध्यम धीरे धीरे बदलने के बजाय एकदम बदल दिया जाय तो हम देखेंगे, कि आवश्यकता को पूरा करने के लिये पाठ्य पुस्तकें भी प्राप्त हो रही हैं और अध्यापक भी। और यदि हम व्यावहारिक बुद्धि से असली काम करना चाहते

हैं. तो एक ही साल में हमें यह मालूम हो जायगा कि हमें विदेशी माध्यम द्वारा सभ्यता का पाठ पढ़ने के प्रयत्न में राष्ट्र का समय और शक्ति नष्ट करने की दरकार नहीं थी। सफलता की शर्त यही है, कि सरकारी दफ्तरों में और अगर प्रान्तीय सरकारों का अपनी अदालतों पर अधिकार हो तो उन अदालतों में भी प्रान्तीय भाषायें तुरन्त जारी करदी जायें। यदि सुधार की आवश्यकता में हमारा विश्वास हो तो हम उसमें तुरन्त सफल हो सकते हैं।

संयुक्तप्रान्त के विद्यार्थियों की सभा में

यहाँ दो कालेजों के, अर्थात् आगरा कालेज और सेन्टजान्स कालेज के विद्यार्थी आगरा कालेज के भवन में गांधी जी को मानपत्र देने के लिये इकट्ठे हुए थे। गांधी जी ने पहले ही से सुन रखा था, कि और प्रान्तों के मुकाबले संयुक्त प्रान्त के विद्यार्थी वर्ग में बाल विवाह की कुप्रथा अधिक भयंकर रूप धारण किये हुए है। गांधी जी ने अपना भाषण शुरू करने से पहले विवाहित विद्यार्थियों को हाथ खड़े करने की प्रार्थना की। तुरत ८० फी सदी से भी ज्यादा हाथ ऊपर उठ गये। इसी तरह सदा खादी पहनने वालों की संख्या भी दस या बारह से ज्यादा न निकली। कालेज के विद्यार्थियों ने गान्धी जी को दिये मान-पत्र में कहा था—"हम गरीब हैं, अत एव मात्र हमारे हृदय ही आपको अर्पण करते हैं।

हमें आपके आदर्शों में विश्वास है, परन्तु उनके अनुसार आचरण करने में हम असमर्थ हैं।" इस तरह की निराशा और कमजोरी की बातें किन्हीं युवकों के मुँह में शोभा दे सकती हैं? गांधी जी को यह सब देख सुनकर दुःख हुआ। अपना दुःख प्रगट करते हुए वे बोले "मैं अपने युवकों के मुँह से ऐसी अश्रद्धा और निराशा की बातें सुनने को जरा भी तैयार न था। मेरे समान मौत के किनारे पहुँचा हुआ आदमी अपना भार हल्का करने के लिये अगर युवकों से आशा न रखे तो और किन से रखे? ऐसे समय आगरा के नौजवान आकर मुझ से कहते हैं, कि वे मुझे अपना हृदय तो अर्पण करते हैं, मगर कुछ कर धर नहीं सकते, मेरी समझ में नहीं आता। वे क्या कहते हैं?" 'दरिया में लगी आग, बुझा कौन सकेगा?' कहते कहते गांधी जी का कंठ भर आया। वह बोले "अगर आप अपने चरित्र को बलवान् नहीं बना पाते, तो आपका तमाम पठन पाठन और शेक्सपियर, वर्ड-स्वर्थ वगैरा महाकवियों की कृतियों का अभ्यास निरर्थक ही ठहरेगा। जिस दिन आप अपने मालिक बन जायेंगे, विकारों को अधीन रखने लगेंगे, उस दिन आपकी बातों में भरी हुई अश्रद्धा और निराशा का अन्त होगा।" साथ ही उन्होंने अविवाहित विद्यार्थियों को उनके विद्यार्थी जीवन की समाप्ति तक और विवाहितों को विवाह हो जाने पर भी विद्यार्थी अवस्था में ब्रह्मचर्य से रहने का अचूक उपाय बतलाया। गांधी जी से यह भी कहा गया था कि संयुक्त प्रान्त के विद्यार्थी अपने विवाह के लिए माता-पिता को विवश करते हैं, यही नहीं बल्कि विवाह के लिये उन्हें

कर्जदार बनाने से नहीं झिझकते। अगर विवाह धार्मिक क्रिया है, तो उसमें धूमधाम या विलास को अवकाश नहीं रहता। अतएव गांधी जी ने विद्यार्थियों को सलाह दी कि वे ऐसे अनावश्यक और समर्यादित खर्च के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंकें। अन्त में खादी पर बोलते हुए गांधी जी ने विद्यार्थियों के महलनुमा और सजे हुए छात्रालयों तथा देश के झोंपड़ों में रहने वाली असंख्य गरीब बेहाल जनता का हृदय द्रावक चित्र खींचा और इन दो वर्गों के बीच की भयंकर खाई को पाटने के लिये खादी को ही एक मात्र सुवर्ण साधन बताया।

कराँची के विद्यार्थियों से

"तरुणों के लिये मेरे हृदय में स्नेहपूर्ण स्थान है और इसी से मैं तुम लोगों से मिलने को तुरन्त राजी हो गया, यद्यपि तबियत तो मेरी आजकल कुछ ऐसी है कि किसी रोगी तक को देखने को जी नहीं करता।"

इस हरिजन प्रवृत्ति को तो स्वयं ईश्वर ही चला रहा है। लाख-करोड़ों सवर्णों के हृदय-परिवर्तन की बात मनुष्य के वश की नहीं है, यह ईश्वर ही चाहे तो कर सकता है। अधिक से अधिक मनुष्य का किया इतना ही हो सकता है कि आत्म-शुद्धि और आत्म-तितिक्षा के सहारे वह ईश्वर के कार्य का एक निमित्त

मात्र बन जाय। मैं तो इस पर जितना ही अधिक विचार करता हूँ, उतना ही मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पुरुषार्थहीनता का अनुभव होता है।

विद्यार्थियों को सबसे पहले नम्रता का अभ्यास करना चाहिये। बिना नम्रता के, बिना निरहङ्कारिता के वे अपनी विद्या का कोई सदुपयोग नहीं कर सकते। भले ही तुम लोग बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ पास करलो और ऊँचे ऊँचे पद भी प्राप्त करलो। पर यदि तुम्हें लोक सेवा में अपनी विद्या का; अपने ज्ञान का उपयोग करना है, तो तुम में नम्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैं तुम से पूछता हूं, भारत के उन दीन-दुखी ग्रामवासियों की सेवा में तुम्हारे ज्ञान का आज क्या उपयोग हो रहा है? दुनियाँ भर में आदर्श तो यह है कि मनुष्य के बौद्धिक तथा अध्यात्मिक गुणों का मुख्य उद्देश्य लोक-सेवा ही हो और अपना जीवन निर्वाह तो उसे अपना हाथ पैर चलाकर लेना चाहिये। ज्ञान उदर-पूर्ति का साधन नहीं, किन्तु लोक-सेवा का साधन है। प्राचीन काल में कानूनी सलाह का अपने आसामियों से एक पैसा भी नहीं लेते थे और आज भी यही होना चाहिये। विद्यार्थी अगर देश सेवा करना चाहते हैं, तो सूट-बूट और हैट धारण करके नक़ली साहब बनने से काम नहीं चलता। तुम्हें एक ऐसे राष्ट्र की सेवा करनी है, जहाँ प्रति मनुष्य की औसत आमदनी मुश्किल से ४०) सालाना है। यह हिसाब मेरा नहीं, लार्ड कर्जन का लगाया हुआ है। इस दरिद्र देश की तुम लोग तभी सेवा कर

सकते हो, जब कि मोटे खद्दर से तुम्हें सन्तोष हो और यूरोपियन ढङ्ग से रहने का यह सारा लोभ छोड़ दो।

हरिजन-कार्य के लिये तुम लोगों ने मुझे जो यह थैली भेंट की है, उसका मूल्य तो तभी आँका जा सकता है, जब कि इसमें हरिजन-सेवा का तुम्हारा सङ्कल्प भी पूरा-पूरा सन्निहित हो। तुम्हारे जीवन में यदि नम्रता और सादगी नहीं, तो तुम गरीब हरिजनों की सेवा कैसे कर सकते हो? ये बढ़िया बढ़िया रेशमी सूट पहन कर तुम उन गन्दी हरिजन बस्तियों को साफ़ कर सकते हो? तुम्हें अवकाश का जितना समय मिले, उसमें हरिजनों की सेवा तुम बड़ी अच्छी तरह से कर सकते हो। लाहौर और आगरे के कुछ विद्यार्थी इस प्रकार बराबर हरिजन-सेवा कर रहे हैं। गर्मी की छुट्टियाँ भी तुम इस काम में लगा सकते हो।

हरिजन को हमने इतना नीचा गिरा दिया है कि अगर उन्हें जूठन देना बन्द कर दिया जाता है, तो वे इसकी शिकायत करते हैं। ऐसे दयनीय मनुष्यों की सेवा तभी हो सकती है, जब सेवकों का हृदय शुद्ध हो और अपने कार्य में उनकी पूरी आस्था हो। सिर्फ आर्थिक स्थिति में सुधार कर देना ही काफी नहीं।

जरा डाक्टर अम्बेडकर जैसे मनुष्यों की हालत पर तो सोचो। डाक्टर अम्बेडकर के समान मेरी जानकारी में सुयोग्य, प्रतिभा-सम्पन्न और निःस्वार्थ मनुष्य इने गिने ही हैं। तो भी जब वे पूना गये तो उन्हें एक होटल की शरण लेनी पड़ी, किसी ने उन्हें मेहमान की तरह अपने यहां न टिकाया। यह हमारे लिये शर्म

में डूब मरने के लिये काफी है। एक तरफ से तो हमें डाक्टर अम्बेडकर जैसे मनुष्यों का हृदय स्पर्श करना है और दूसरी तरफ शंकराचार्यों को अपने पक्ष में लाना है। हरिजनों को तो हमने उन्हें लाख योग्य होते हुए भी बुरी तरह पद-दलित कर दिया है और शंकराचार्यों को नकली प्रतिष्ठा दे रखी है। काम हमें दोनों ही से लेना है, जो कि एक दूसरे से बिल्कुल प्रतिकूल दिशा में जा रहे हैं। नम्रता, सहनशीलता और धैर्य के बिना यह कैसे हो सकता है ?

स्व० श्री विट्ठल भाई के सम्बन्ध में गान्धी जी ने कहा, "सिर्फ विट्ठल भाई का चित्र कालेज-हाल में लटका देने से ही तुम लोग उत्तीर्ण नहीं हो सकते। उनसे ऋणमुक्त तो तुम तभी हो सकोगे, जब उनको निःस्वार्थता, उनकी सेवा-भावना और उनकी सादगी को तुम लोग ग्रहण कर लोगे। वह चाहते तो वकालत या दूसरा कोई अच्छा सा धन्धा करके लाखों रुपया कमा कर मालामाल हो जाते, पर वह तो सारी जिन्दगी सादगी से ही रहे और अन्त में गरीबी की हालत में ही मरे। क्या अच्छा हो कि तुम लोग भी स्व० विट्ठल भाई पटेल का इसी तरह पदानुसरण करो।

उस दिन सायंकाल महिलाओं की सभा हुई! देखने लायक दृश्य था वह। स्त्रियाँ सभा मंच पर आतीं, बापू जी के हाथ में अपनी अपनी पत्र-पुष्प की भेंट रख देतीं और अपने बाल बच्चों के लिये बापू का आशीर्वाद लेकर प्रसन्न चित्त चली जाती थीं।

लाहौर के विद्यार्थियों से

"आप लोगों ने मुझे जो मान-पत्र और थैलियाँ दी हैं, इसके लिये मैं आपका आभार मानता हूँ। जिस बात का मुझे डर था वही हुआ। यह सभा केवल विद्यार्थियों के लिये की गई थी, किन्तु जनता ने उनकी सभा पर व्यर्थ ही कब्जा कर लिया है, यह तो उचित नहीं है। आप लोगों की भीड़ को देख कर मुझे कल भी भय था कि कहीं मेरी मोटर मार्ग ही में न टूट जाय। कल जो काम १५ मिनट का था उसी में आपने मेरा सवा घंटा नष्ट कर दिया। इस लिये भविष्य में जो सभा जिनके लिये हो उन्हीं को उसमें आना चाहिये। हरिजन सेवा का कार्य एक धार्मिक कार्य है, इस लिये वह तप से ही सिद्ध हो सकता है। ऐसे काम केवल शान्ति से ही किये जा सकते हैं। मुमकिन है कि पंजाब में मेरा यह आखिरी दौरा हो, क्योंकि शायद मैं दुबारा यहां न आ सकूँ। इसलिये इसी दौरे में मैं आप पर अधिक से अधिक प्रभाव डाल देना चाहता हूँ। जो विद्यार्थी हरिजन सेवा के कार्य में रस ले रहे हैं, उनको मैं धन्यवाद देता हूं। जैसा कि आपने मान पत्र में कहा है, मुझे आशा है कि आप लोग हरिजनों को अपने से अलग नहीं समझते। अगर आपका यह निश्चय ठीक है, तो आपको गांवों में जाकर काम करना चाहिये। उन लोगों से आपको प्रेम करना चाहिये। यद्यपि उनमें कुछ लोग शराब पीते और अन्य बुरे काम करते हैं, तो भी आपको उनसे घृणा नहीं आनी चाहिये। आप उनके घरों को जाकर पदार्थ।

देहातों में इस काम की बड़ी आवश्यकता है। वहां काम करने के लिये आपको कालेज की शिक्षा भुला देनी होगी। इस कार्य के लिये सत्यशीलता, तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। आप में यह सब बातें होंगी तभी आप कुछ कर सकेंगे। आपको वहां हरिजनों के सेवक बनकर रहना होगा और ऊपर की सब शर्तों को पूरी तरह से पालना होगा। आपका जो समय खाली बचे, उसमें आप यह काम करें तो मेरा भी बहुत सा काम बन जायगा। अस्पृश्यता दूर न हुई तो हिन्दू जाति मिट जायगी। हम इस रोग को पहचान नहीं रहे हैं, पर यह हमें अन्दर से बराबर खा रहा है। इस भेद भाव के रोग को मिटाना तपश्चर्या से ही सम्भव है आपने स्वयं मान पत्र में कहा है कि हम बड़े विलासी हैं। आपको केवल परीक्षाएँ पास करने की चिन्ता लगी रहती है। आप चाहें तो असम्भव बात भी कालेज की शिक्षा में पा सकते हैं। आप भोग को त्याग दें और संयम से ईश्वर को पहचानें और उसके अधिक निकट हो जायें। ईशोपनिषद् में लिखा है कि मनुष्य ईश्वर के पास जाना चाहता है, तो उसे भोग-विलास त्यागना होगा। आप विद्या क्या केवल नौकरियों के लिये प्राप्त कर रहे हैं? विद्या तो वही है, जिससे मुक्ति मिले और शिष्टाचार आवे। जब आप सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की चिन्ता करेंगे, तभी काम बनेगा। आपने इस विलास में पड़ कर खादी तक का त्याग कर दिया है। मुझे तो लाहौर में यह देख कर बड़ा दुःख हुआ है कि आप खादी नहीं पहनते हैं। इस प्रकार तो आप एक रूप ग्रामीण भाइयों का त्याग कर रहे हैं क्योंकि यह रुपया उनके

पास नहीं जाता। आपकी शिक्षा पर जो रुपया खर्च हो रहा है, वह प्रायः उन्हीं के पास से आता है, परन्तु ग्रामीणों को आप बदले में क्या दे रहे हैं? आप उनके धन को व्यर्थ ही बहा रहे हैं। आप और कुछ न करते हुए केवल खद्दर ही पहनें, तो इससे उनकी सेवा होगी। आप खद्दर न पहनकर न केवल अपने आपको ही धोखा दे रहे हैं, बल्कि सारे भारत को धोखा दे रहे हैं। आपको चाहिये कि आप अपनी इस भारी भूल से बच जायें।"

सिन्ध के विद्यार्थियों से

उन्होंने कहा—अंग्रेजी में एक कहावत है, "अनुकरण करना उत्तमोत्तम स्तुति है। अभिनन्दन पत्र में मेरी तारीफ कर मुझे तिमंजिले पर चढ़ा दिया है। परन्तु जिस बात की आपने तारीफ की है, उसके विरुद्ध में आपको पाता हूँ, मानो आप यहां मुझ से यही कहने के लिये आये हैं कि आप जो कहते हैं वह सब हम जानते हैं, परन्तु हम उसके विरुद्ध ही करेंगे। कुछ जवान लोग वृद्धों की हँसी उड़ाते हैं। आप लोगों ने मुझे हिमालय के शिखर पर चढ़ा दिया है और वहीं आप मुझे ठंडा कर देना चाहते हैं। परन्तु आपको इस प्रकार मुक्ति नहीं मिलेगी। मुझे आपने यहां बुलाया है इस लिये आपको मुझे आगे पीछे का सब हिसाब देना होगा।" और गान्धी जी ने उनसे हिसाब लिया और वह भी ऐसा कि वे कभी उसे भूल नहीं सकते हैं। पहले तो उन्हें अंग्रेजी में

अभिनन्दन-पत्र देने के लिये मीठा उलाहना दिया और परदेशी भाषा में अभिनन्दन-पत्र देने का कारण पूछा। वे हिन्दी अथवा सिन्धी में आसानी से अभिनन्दन-पत्र दे सकते थे।" परदेशी लोग भी जब वे मेरे पास आते हैं, तो यदि उन्हें हिन्दुस्तानी भाषा का कोई शब्द मिलता है तो उसका प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि वे उनमें विनय मानते हैं। तो फिर आपको इसके विरुद्ध करने की क्या जरूरत थी? और नेहरू कमेटी ने तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार की है। लेकिन आप शायद कहेंगे 'हमको नेहरू रिपोर्ट की क्या पड़ी है, हम लोग तो सम्पूर्ण स्वतन्त्रतावादी हैं। मैं आपको जनरल बोथा का उदाहरण देता हूं। वे दक्षिण अफ्रीका के लोअर युद्ध के बाद समाधान के लिये विलायत गये थे। बादशाह के समक्ष भी वे अंग्रेजी में न बोले और एक दुभाषिया को रख कर स्व भाषा में ही बात चीत की। स्वतन्त्र और स्वतन्त्रता-प्रिय कौम के प्रतिनिधि को यही शोभास्पद है।

अब उनके विलायती पहनावे की तरफ इशारा करके पूछा:— 'अर्थ शास्त्र के विद्यार्थी की हैसियत से यह तो आप को खबर होगी ही अथवा होनी चाहिये कि आपकी शिक्षा के पीछे प्रति विद्यार्थी सरकारी खजाने से जितना खर्च होता है, उसका एक अंश भी आप फीस देकर भरपाई नहीं करते हैं। तो यह बाकी रकम कहाँ से आती है इसका कभी आप लोगों ने विचार किया है? यह रकम ओरिस्सा के हाड़ पिंजरों के पैसों से आती है। उन्हें देखो, उनकी आँखों में तेज का एक किरण भी नहीं है।

उनके चेहरों पर निराशा छा रही है। वर्ष के शुरू से अंत तक वे भूखों मरते हैं और मारवाड़ी और गुजराती धनी जो लोग वहाँ जाते हैं और उनकी गोद में थोड़े चावल फेंक आते हैं, उसी पर वे अपना निर्वाह करते हैं। इन भाइयों के लिए आपने क्या किया है? खादी पहनोगे तो इन लोगों के हाथ में एक दो पैसे जायंगे। परन्तु आप तो विलायती कपड़े खरीद कर साठ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष विदेश को भेज देते हैं और हमारे देश के गरीबों को बगैर रोजगार के बना कर उनके मुँह का कौर छीन लेते हैं। परिणाम यह हुआ कि देश पीसा जा रहा है। हमारा व्यापार देश को समृद्ध बनाने के बदले देश को लूटने का साधन बन गया है, हमारे व्यापारीगण मैनचेस्टर और लंकाशायर के कमीशन ऐजेन्ट बन गये हैं। जनता के पास से व्योपारी १००) खींच लेता है, तब शायद ही उसे पांच रुपया कमीशन मिलता होगा। ६५) तो विदेश को चले जाते हैं, और ५ प्रति सैंकड़ा की कमाई से करांची, बम्बई जैसे बड़े शहरों का दिखाई देने वाला वैभव टिक रहा है। यह हमारी करनी का फल है, यह देश भक्ति है, सुधार है या क्या है? लार्ड सेलिसबरी ने एक ऐतिहासिक प्रसंग पर कहा था, कि सरकार को लोगों का लहू चूसना ही होगा और यदि लहू चूसना है, तो अच्छी स्पष्ट जगह पर नस्तर देना चाहिये। और यदि लार्ड सेलिसबरी के जमाने में भी लोगों का लहू चूसकर महसूल वसूल किया जाता था तो आज क्या दशा होगी? क्योंकि इतने साल की सतत लूट के बाद देश आज पहले से अधिक कंगाल हो गया है। आरम्भ

शिक्षा के लिये, रुपये इकट्ठा करने का यह साधन है। और आपकी शिक्षा के लिये रुपया देने के लिये दूसरा क्या साधन है, जानते हो ? मुझे कहने में शरम मालूम होती है कि वह दूसरा साधन आबकारी है। आपके भाई और बहिनों की जिस वस्तु के द्वारा पशु जैसी स्थिति होती है, उस महा पातक से होने वाली आमदनी से आपकी शिक्षा का निभाव होता है। मैं अभी आपके साथ विनोद कर रहा था, परन्तु मैं अपने हृदय का हाल आप से क्या कहूँ वह तो अन्दर से रो रहा था। आप यह याद रखेंगे कि ईश्वर के दरबार में आपसे पूछा जावेगा—'भले आदमी! तुमने अपने भाई का क्या किया' आप उस समय क्या उत्तर देंगे ?

खलीफा उमर का नाम तो आपने सुना होगा। एक समय ऐसा आया कि जब मुसलमानों के उमराव लोग भोग-विलास में पड़ गये और महीन वस्त्र और महीन आटे की रोटियाँ खाने लगे तब खलीफा उमर ने उनसे कहा—"मेरे सामने से तुम चले जाओ, तुम लोग नबी के सच्चे अनुयायी नहीं।"

हजरत साहब तो हमेशा मोटे कपड़े पहनते थे और मोटे आटे की रोटियाँ खाते थे। यह व्यवहार ईश्वर से डर कर चलने वाले का था। आप इनके जीवन में से कुछ अपने जीवन में उतार लें, तो क्या ही अच्छा हो। और क्या यह शरम की बात नहीं है कि सिन्ध में इतने नवयुवक होने पर भी प्रो० मलकानी को गुजरात से स्वयंसेवकों की भिक्षा मांगनी पड़ी ?

अन्त में 'देती-लेती' के सम्बन्ध में मैं आप से किन शब्दों में

कहूं। मुझसे यह कहा गया है कि शादी की बात निकली कि लड़का विलायत जाने की बात करने लगता है और उसका खर्च भावी श्वसुर से मांगता है। शादी के बाद भी उससे रुपये निकलवाने का एक भी मौका नहीं जाने देता है। पत्नी तो घर की रानी और हृदय की देवी होनी चाहिये, परन्तु आपने तो उसे गुलाम बना दिया है। आप लोगों को अंग्रेजी सभ्यता के प्रति आदर है। मेरे जैसे को अंग्रेजी में ही अभिनन्दन पत्र देते हैं। क्या आप लोगों को अंग्रेजी साहित्य से यही पाठ मिला है? स्त्री को हिन्दू शास्त्रों में अर्धाङ्गिनी कहा गया है, परन्तु आपने तो उसे गुलाम बना दिया है। और उसका परिणाम यह हुआ कि आज हमारे देश को अर्धाङ्ग वायु की व्याधि लगी है। स्वराज नामर्दों के लिए नहीं है; वह तो हंसते २ आंखों पर पट्टी बांधे बिना ही जो फांसी चढ़ने को तैयार हैं, उनके लिए है। मैं आप से यह वचन मांग रहा हूँ कि आप 'देती-लेती' का कलंक सिन्ध से जल्दी ही मिटा देंगे और अपनी बहन और पत्नियों के लिये स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त करने को मर मिटेंगे। तभी मैं यह समझूंगा कि आपके हृदय में देश की स्वतन्त्रता की सच्ची लगन है।

फिर उन्होंने विद्यार्थिनियों को उद्देश कर कहा "यदि मेरे बच्चों में कोई लड़की हो, तो उसे मैं जन्म भर कुवाँरी रखूं, पर ऐसे नवयुवक से मैं उसकी कभी भी शादी न करूँ, जो उससे शादी करने के बदले में मुझ से एक कौड़ी भी मांगे। मैं उससे कहूंगा यहां से तुम चले जाओ। तुम्हारे जैसे नालायक के लिये यह लड़की नहीं है।"

अन्त में विनोद करते हुए उन्होंने प्रश्न किया—"आपको यह खबर है कि मेरा अनुकरण करने का यत्किंचित् भी विचार न होने पर, आप यदि मेरी ऐसी बड़ी तारीफ़ करेंगे, तो लोग आपके बारे में क्या कहेंगे ?" उसके उत्तर में 'मूर्ख' 'नालायक' 'गधे' ऐसे शब्द सुनने में आये। गान्धी जी ने कहा, मैं ऐसे सख्त शब्दों का प्रयोग तो नहीं करता, परन्तु आप भाट कहलावेंगे, यह कहूँगा।

नागपुर के विद्यार्थियों से

अस्पृश्यता निवारण का व्यापक अर्थ

आप दोनों वक्ताओं ने मेरे विषय में जो कहा है, उसे मैं सच मान लूं, तो मैं नहीं जानता कि मेरा स्थान कहां होगा। पर मैं यह जानता हूं कि, मेरा स्थान असल में कहां है। मैं तो भारत का एक नम्र सेवक हूं, और भारत की सेवा करने के प्रयत्न में—मैं समस्त मानव जाति की सेवा कर रहा हूं। मैंने अपने जीवन के आरम्भ काल में ही यह देख लिया था कि भारत की सेवा विश्व-सेवा की विरोधिनी नहीं है, और फ़िर ज्यों-ज्यों मेरी उम्र बढ़ती गई और साथ ही साथ समझ भी, मैं त्यों-त्यों देखता गया कि, मैंने यह ठीक ही समझा। ५० वर्षों के सार्वजनिक जीवन के बाद आज मैं कह सकता हूं कि राष्ट्र की सेवा और जगत की सेवा परस्पर विरोधी नहीं हैं। इस सिद्धान्त पर मेरी श्रद्धा बढ़ती

ही जाती है। यह एक श्रेष्ठ सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के स्वीकार करने से ही जगत् में शान्ति स्थापित हो सकती है और पृथ्वी पर बसी हुई मनुष्य जाति का द्वेष-भाव शान्त हो सकता। पूर्व वक्ता ने यह सत्य ही कहा है कि, अस्पृश्यता के विरुद्ध मैंने जो यह युद्ध छेड़ा है, उसमें मेरी दृष्टि सिर्फ हिन्दू धर्म पर ही नहीं है। मैंने यह अनेक बार कहा है कि हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता यदि जड़ मूल से नष्ट हो जाय, तो इसका अर्थ होगा करोड़ों मनुष्यों का हृदय-परिवर्तन, और इससे बड़ा विशद परिणाम निकलेगा। कल रात की विराट सार्वजनिक सभा में मैंने कहा था कि, अगर सचमुच अस्पृश्यता हिन्दुओं के हृदय से दूर हो जाय—अर्थात् सवर्ण हिन्दू इस भयानक काले दाग को धो कर बहा दें, तो हमें थोड़े ही दिनों में मालूम हो जायगा कि हम सब हिन्दू, मुसलमान ईसाई, पारसी आदि—एक ही हैं, अलग अलग नहीं।

अस्पृश्यता का यह अन्तराय दूर होते ही हमें अपनी इस एकता का भान हो जायगा। मैं सैकड़ों बार कह चुका हूं कि अस्पृश्यता एक सहस्रमुखी राक्षसी है, उसने अनेक रूप धारण कर रखे हैं। कुछ रूप तो उसके अत्यन्त सूक्ष्म हैं। मेरे मन में किसी मनुष्य के प्रति ईर्षा होती है, तो यह भी एक प्रकार की अस्पृश्यता ही है। मैं नहीं जानता कि मेरे जीवन-काल में मेरा यह अस्पृश्यता नाश का स्वप्न कभी प्रत्यक्ष होगा या नहीं। जिन लोगों में धर्म बुद्धि है, जो धर्म के बाहरी विधि विधान पर नहीं, किन्तु उसके वास्तविक जीवन तत्व पर विश्वास रखते हैं, उन्हें इतना तो

मानना ही पड़ेगा कि जो सूक्ष्म अस्पृश्यता मनुष्य जाति के एक बड़े समुदाय के जीवन को कलुषित कर रही है, वह अस्पृश्यता नष्ट होनी ही चाहिये। हिन्दुओं का हृदय यदि इस पाप कलंक से मुक्त हो सका, तो हमारे ज्ञान नेत्र अधिक से अधिक खुल जायेंगे। अस्पृश्यता का वस्तुतः जिस दिन नाश हो जायगा, उस दिन मनुष्य जाति के अपार लाभ का अनुमान कौन कर सकता है? अब तुम लोग सहज ही समझ सकते हो कि इस एक चीज़ के लिये क्यों मैंने अपने प्राणों की बाजी लगा रखी है।

विद्यार्थियों का योग दान

तुम सबने जो यहाँ एकत्र हुए हो, मेरा इतना आशय यदि समझ लिया है और मेरे इस कार्य का पूरा अर्थ तुम्हारे ध्यान में आगया है, तो तुमसे जो मुझे सहायता चाहिए, वह तुम मुझे तुरन्त ही दोगे। अनेक विद्यार्थियों ने पत्र लिख-लिख कर मुझ से पूछा है कि हम लोग इस आन्दोलन में क्या योगदान दे सकते हैं? मुझे आश्चर्य होता है कि विद्यार्थियों को यह प्रश्न पूछना पड़ता है। यह क्षेत्र तो इतना विशाल है और तुम्हारे इतना अधिक समीप है, कि तुम्हें इस प्रश्न के पूछने की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये कि हम क्या करें और क्या न करें? यह कोई राजनीतिक प्रश्न नहीं है। सम्भव है कि यह प्रश्न राजनीतिक बन जाय लेकिन फिलहाल तुम्हारे या मेरे लिए तो इसका राजनीति के साथ कुछ सरोकार नहीं है।

मेरा जीवन धर्म के सहारे चल रहा है। मैं कह चुका हूं कि

मेरी राजनीति का भी उद्गम स्थान धर्म ही है। मेरी राजनीति और धर्म नीति में कोई अन्तर नहीं, राजनीति में जहाँ मुझे माथापच्ची करनी पड़ी वहां भी मैंने अपनी जीवनधार धर्म तत्व की कभी उपेक्षा नहीं की, चूंकि यह एक दया धर्म का काम है इस लिए विद्यार्थियों को अपने अवकाश का अधिक नहीं तो थोड़ा समय तो हरिजन सेवा में देना ही चाहिये। तुमने मुझे इतनी सुन्दर थैली देकर उन भारतीय विद्यार्थियों की प्रथम पंक्ति में अपना स्थान प्राप्त कर लिया है, जिनकी अनेक सभाओं में अपने गत प्रवासों में मैंने भाषण दिये हैं। पर मुझे तो तुमसे इससे अधिक की आशा है। मैं देखता हूँ, कि अगर मुझे अपने अवकाश का समय देने वाले बहुत से सहायक मिल जांय, तो बहुत बड़ा काम पूरा हो सकता है। यह काम किराये के आदमियों से होने का नहीं। हरिजन बस्तियों में जाना, उनकी गलियाँ साफ करना, उनके घरों को देखना, उनके बच्चों को नहलाना-धुलाना यह काम भाड़े के आदमियों के द्वारा नहीं कराया जा सकता। विद्यार्थी क्या सेवा कर सकते हैं, यह मैं हरिजन के एक गतांक में बता चुका हूँ। एक हरिजन सेवक ने मुझे बताया है, कि यह कितना बड़ा भागीरथ कार्य है और उसे इसमें कितनी कठिनाइयां पड़ी हैं। मेरा ख़याल है, कि हरिजन बालकों की अपेक्षा तो जंगली बालकों तक की दशा अच्छी होती है। हरिजन बालक जिस अधः पतन के वातावरण में दिन काट रहे हैं उस वातावरण में जंगली बालक नहीं रहते। जंगली बालकों के आस पास यह गन्दगी भी नहीं होती। यह सवाल भाड़े के टट्टुओं से हल नहीं हो सकता।

चाहे जितना पैसा हमें मिल जाय, तो भी यह काम पूरा नहीं हो सकता। इस कार्य के करने में तो तुम्हें गर्व होना चाहिये। तुम्हें स्कूल-कालेजों में जो शिक्षा मिलती है, उसकी यह सच्ची कसौटी है। तुम्हारी क़ीमत इससे नहीं आंकी जाती है, कि तुम लच्छेदार अंगरेजी भाषा में व्याख्यान दे सकते हो। अगर ६०) मासिक या ६००) मासिक की तुम्हें कोई सरकारी नौकरी मिल गई तो इससे भी तुम्हारी कीमत नही आंकी जायगी। दीनों की दरिद्रनारायणों की तुम सेवा करोगे, उसी से तुम्हारी क़ीमत का पता लगेगा।

शिक्षा सफल करो !

मैं चाहता हूं कि मैंने जो कहा है उसी भावना से तुम लोग हरिजन सेवा करो। मुझे आज तक एक भी कोई विद्यार्थी ऐसा नहीं मिला, जिसने यह कहा हो कि मैं नित्य एक घंटा अवकाश का नहीं निकाल सकता। तुम लोग अगर डायरी लिखने की आदत डाल लो, तो तुम्हें मालूम होगा, कि साल के ३६५ दिनों में तुम कितने कीमती घन्टे यों ही नष्ट कर देते हो। तुम्हें यदि अपनी शिक्षा सफल करनी है, तो इस महान् आन्दोलन की ओर अपना ध्यान दो। कुछ दिनों से वर्धा के आस पास पांच मील के घेरे में स्कूल, कांलेज के विद्यार्थी हरिजन सेवा कर रहे हैं। वे अपने नाम की डुग्गी नहीं पीटते फिरते। अच्छा हो कि तुम लोग उनका काम देख आओ। यह सेवा कार्य कठिन तो जरूर है, पर आनन्द दायी है। क्रीकेट और टैनिस से भी अधिक आनन्द तुम्हें इस कार्य में मिलेगा। मैं बार-बार कहता हूँ, कि मेरे पास यदि

सच्चे, चतुर और ईमानदार कार्य-कर्त्ता होंगे तो पैसा तो मिल ही जायगा। मैं १८ वर्ष का था, तभी से भीख माँग-मांग कर पढ़ना शुरू किया था। मैंने देखा, कि यदि यथेष्ट सेवक हमारे पास हों, तो पैसा तो अनायास ही मिल सकता है। सिर्फ पैसा से मुझे कभी सन्तोष नहीं होता, मैं तो तुम लोगों से आज यह भीख मांगता हूं, कि अपने छुट्टी के समय में दो कुछ घंटे हरिजन सेवा में लगाने की प्रतिज्ञा कर लो। सभापति महोदय ने तुम से कहा है, कि गांधी एक स्वप्नद्रष्टा है। हाँ मैं स्वप्नद्रष्टा अवश्य हूं, किन्तु मेरा सपना कोई आकाश वाटिका नहीं है। मैं तो अपने स्वप्नों को यथाशक्ति कार्यरूप में परिणित करना चाहता हूं। इस लिये तुम लोगों से मुझे जो उपहार प्राप्त हुए हैं; उनका नीलाम मुझे यहीं कर देना चाहिये।

इङ्गलैंड में भारतीय विद्यार्थियों के साथ

एक विद्यार्थी के प्रश्न के उत्तर में गान्धी जी ने कहा:—
"लाहौर और करांची के प्रस्ताव एक ही हैं। करांची का प्रस्ताव लाहौर के प्रस्ताव का उल्लेख कर उसे पुनः स्वीकृत करता है; किन्तु यह बात स्पष्ट कर देता है कि पूर्ण-स्वतन्त्रता सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन के साथ ही सम्मान युक्त साझेदारी को अलग नहीं करती। जिस प्रकार अमेरिका और इङ्गलैंड के बीच साझेदारी हो सकती है, उसी तरह हम इङ्गलैंड और भारत के बीच साझे-

दारी स्थापित कर सकते हैं। करांची प्रस्ताव में जो सम्बन्ध विच्छेद का उल्लेख है, उसका अर्थ यह है कि हम साम्राज्य के होकर नहीं रहना चाहते। किन्तु भारत को ग्रेट ब्रिटेन का साझे-दार आसानी से बनाया जा सकता है।

"एक समय था जब कि मैं औपनिवेशिक पद पर मोहित था, किन्तु बाद में मैंने देखा कि औपनिवेशिक पद ऐसा पद है, जो एक ही कुटुम्ब के सदस्यों—आस्ट्रेलिया, केनाडा, दक्षिण अफ्रीका और न्यूजीलैंड आदि मे समान है। ये एक स्रोत से निकली हुई रियासतें हैं, जिस अर्थ में कि भारत नहीं हो सकता। इन देशों की अधिकांश जनता अंग्रेजी भाषा भाषी हैं और उनके पद में एक प्रकार का बृटिश सम्बन्ध सन्निहित है। लाहौर कांग्रेस ने भारतीयों के दिमाग़ में से साम्राज्य का ख्याल धो डाला है और स्वतन्त्रता को उनके सामने रखा है। कराँची के प्रस्ताव ने इसका यह सन्निहित अर्थ किया कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से भी हम ग्रेट ब्रिटेन के साथ, अवश्य ही यदि वह चाहे तो साझेदारी कायम कर सकते हैं। जब तक साम्राज्य का ख्याल बना रहेगा, तब तक डोर इङ्गलैंड के पार्लीमेण्ट के हाथ में रहेगी, किन्तु जब भारत ग्रेट ब्रिटेन का एक स्वतन्त्र साझेदार होगा, तब सूत्र संचालन इङ्गलैंड के बजाय दिल्ली से होगा। एक स्वतन्त्र साझेदार की हैसियत से भारत युद्ध और रक्तपात से थकित संसार के लिये एक विशेष सहायक होगा। युद्ध के फूट निकलने पर उसे रोकने के लिये भारत और ग्रेट ब्रिटेन का

समान प्रयत्न होगा, अवश्य ही हथियारों के बल से नहीं, वरन् उदाहरण के दुर्दमनीय बल से। आपको व्यर्थ का अथवा बहुत बड़ा दावा प्रतीत होगा और आप इसकी ओर हँसेंगे। किन्तु आपके सामने बोलने वाला राष्ट्र का प्रतिनिधि है जो इस दावे को पेश करने के लिये आया है, और जो इससे किसी क़दर कम पर रज़ामन्द होने के लिये तैयार नहीं है और आप देखेंगे कि यदि यह प्राप्त नहीं हुआ तो मैं एक पराजित की तरह चला जाऊँगा, किन्तु अपमानित की तरह नहीं। किन्तु मैं ज़रा भी कम न लूंगा, और यदि मांग पूरी नहीं की गई, तो मैं देश को और भी अधिक विस्तृत और भयंकर परीक्षणों में उतरने के लिये आह्वान करूँगा, और आप को भी हार्दिक सहयोग के लिये लिखूंगा।"

विहार विद्यापीठ में

विहार विद्यापीठ के समावर्त्तन संस्कार के अवसर पर गाँधी जी का भाषण—

आज सभापति का स्थान लेकर मेरे हृदय में जो भाव पैदा हो रहे हैं, उनका मैं वर्णन नहीं कर सकता। हृदय की भाषा कही नहीं जा सकती। मुझे विश्वास है कि मेरे हृदय की बात आप लोगों के हृदय समझ लेंगे।

अगर यह कहूँ कि स्नातकों को धन्यवाद देता हूं, तो यह तो लौकिक आचार कहा जायगा। उन्होंने देश सेवा और धर्म सेवा की जो प्रतिज्ञा ली है, उसका रहस्य वे हृदय में उतारें और मेरे मुख से उन्होंने जो श्रुति वचन के बोध सुने हैं, उन्हें हृदय में धारण करें और उनके योग्य आचरण करें, तो मुझे तो इससे सन्तोष हो और इसी से विश्वास रखकर कि विद्यापीठ का जीते रहना कल्याणकारी है, मैं इस पद पर बैठता हूं।

गुजरात विद्यापीठ में कुछ दिन हुए मैंने जो उद्‌गार काढ़े थे, वही मेरे मुँह में आज आ रहे हैं। हमारे यहाँ अगर एक अध्यापक आदर्श अध्यापक रह जायें, एक भी विद्यार्थी रह जाय, तो हम समझ लेंगे कि हमें सफलता मिली है। संसार में हीरा की खानें खोदते-खोदते पत्थर के ढेर निकलते हैं और अथाह परिश्रम के बाद एक दो हीरे निकलते हैं। द० अफ्रीका में मैं जब तक था, मैंने हीरे की खान एक भी न देखी थी। मुझे भय था कि मैं अस्पृश्य गिना जाता हूं, इससे मेरा शायद अपमान हो! पर गोखले को अफ्रिका का यह उद्योग मुझे दिखलाना था। उनका अपमान तो होना ही न था। उनके साथ मैंने जो दृश्य देखा उसका तुमसे क्या बयान करूँ! धूल और पत्थर का भारी पहाड़ पड़ा हुआ था इसके ऊपर करोड़ों रुपयों का खर्च हो चुका था और लाखों मन धूल निकलने के बाद, दो चार हीरे निकल गये तो भाग्य बखानें, पर इस खान वाले का मनोरथ था अनुपम हीरा निकालना। कोहनूर से भी बढ़ा-चढ़ा कलीनन हीरा निकाल कर

कृतार्थ होना चाहता था। मनुष्य की खान पर भी हम लाखों करोड़ों खर्च करके वैसे मुट्ठी भर रत्न और हीरा निकाल सकें तो क्या ही अच्छा हो! ये रत्न उत्पन्न करने के भाव से ही यह विद्यापीठ चलाना चाहिये। यह दुःख की बात नहीं है कि आज इस विद्यापीठ से इतने कम स्नातक पदवी लेते हैं। दुःख की बात तो तब होगी, जब वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करें और प्रतिज्ञा करते हुये मन में मानें कि इतने शब्द ओठ से भले ही बोल लेवें, फिर बाहर जाकर भूल जावेंगे। तब मेरे दिल में होगा कि इस प्रवृत्ति ने देश को दगा दिया है। तब तो आज जो कुछ किया है, वह सभी नाटक हो जायगा और ऐसे ही नाटक करने हों तो फिर विद्यापीठ की हस्ती जितनी जल्दी मिट जाय उतना ही अच्छा।

आज हमारे पास पाँच विद्यापीठ हैं—बिहार, काशी, जामिये-मिल्लिया दिल्ली, महाराष्ट्र और फिर गुजरात। मेरा ऐसा विश्वास है कि सभी अपने २ ध्येय पर ठीक २ चल रहे हैं और इनसे देश का अहित न हुआ, बल्कि हित ही हुआ है।

इन सब की प्रवृत्ति के दो रूप रहे हैं—इतिपक्ष और नेतिपक्ष। सभी विद्यापीठों में नेतिपक्ष का ध्येय है। सरकार का अनाश्रय, मुझे अतिशय विचार और अवलोकन के बाद मालूम होता है, कि यह अनाश्रय या असहकार उनसे करा कर के मैंने कुछ बुरा नहीं किया है। मुझे इसका जरा भी पछताव नहीं है कि मैंने हजारों विद्यार्थियों को सरकारी संस्थाओं में से निकाला, सैकड़ों शिक्षकों और अध्यापकों से इस्तीफे दिलवाये। मुझे इसकी खबर

है कि उनमें कितने लौट गये हैं। कितने दुःखी हो कर गये हैं और बहुतों को संतोष नहीं है। मगर इसका मुझे कुछ दुख नहीं है। दुख नहीं है।, इसका अर्थ यह है कि पश्चाताप का दुख नहीं समभाव का दुख तो है ही। पर यह कष्ट तो हमारे ऊपर पड़ना ही चाहिए, ऐसे कष्ट अभी और अधिक पड़ेंगे। सत्य का आचरण करने से कोई तकलीफ न झेलनी पड़ेगी, सदा सुख की सेज सोने को मिलती हो, तो सभी सत्य का आचरण करें। परिश्रम अगर पड़े ही नहीं तो फिर सत्य की खूबी कहाँ रही! हमारा सर्वस्व चला जाय, हिन्दुस्तान हाथ में से जाय तोभी हम सत्य न छोड़ें और विश्वास रखें कि ईश्वर की गति न्यारी है। अगर यह सच हो कि ईश्वर का राज्य सत्य पर अवलम्बित है, तो हिन्दुस्तान का हक पीछे उसे मिलेगा ही, यही हमारी सत्यनिष्ठा है। अनेक अध्यापक आज अशांत हैं। यही हमारी तपश्चर्या है और इसी तपश्चर्या में हम राष्ट्रीय वातावरण को स्वच्छ करेंगे।

परन्तु इस द्वन्द्वमय जगत में इति पक्ष भी पड़ा ही हुआ है। सभी धर्म ईश्वर का वर्णन नेति-नेति कह कर करते हैं। मगर तो भी व्यवहार में दो इति से ही काम लेते हैं। यह इति पक्ष कठिन है। यह रचनात्मक पक्ष है। इसकी कठिनता मैं देख रहा हूँ, इस इति पक्ष के विचार में मैं रोज-रोज प्रगति कर रहा हूँ। यूरोप का जब मैं खयाल करता हूं, तो वहाँ के देशों में बालकों को वहां की जलवायु के अनुकूल तालीम दी जाती है। एक ही लड़ाई का वर्णन तीन देश के जुदा-जुदा इतिहासकार तीन जुदा-जुदा दृष्टियों

से करेंगे, जुदा-जुदा दृष्टियों से ही उन-उन देशों का हित होता है। इङ्गलैण्ड की दृष्टि से फ्रांस या जर्मनी नहीं देखते, और हमारे यहां? हमारे यहां तो इङ्गलैण्ड की जलवायु के अनुकूल तालीम दी जाती है। यही बात दृष्टि में रख कर हमारे यहां सारी तालीम दी जाती है कि, हम अंग्रेजी सभ्यता का अनुकरण किस प्रकार करेंगे? इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, हमारी आज की स्थिति में यही स्वाभाविक है। मैंकाले बेचारा हमारे पुराणों को न समझे, तो करे! वह तो उन्हें बकवाद समझ कर, पाश्चात्य पुराण को ही दाखिल करने का आग्रह करेगा। उनकी प्रामाणिकता में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं, मगर उन्होंने इस शिक्षा का जो आग्रह रखा, इससे देश की हानि हुई है। परदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा पाने के कारण हम नई चीजें उत्पन्न करने की शक्ति खो बैठे हैं, बेपांख की चिड़िया बन गये हैं। हम क्लर्क या अखबार नवीस बनने की ही दृष्टि रखते हैं। अगर बहुत हुआ तो लाटसाहब बनने तक हमारी दृष्टि पहुँचती है। एक लड़के ने मुझे कहा कि—"मैं लाट-साहब बनना चाहता हूं।" मैं हारा। मैंने कहा कि इसके लिये सरकार की सलामी बजानी पड़ेगी। सरकार की खुशामद करनी, उसकी तालीम लेनी पड़ेगी, हमारे देश में लार्ड साहब बनने की ताकत नहीं। आज तो ईंट के बदले संगमरमर की फर्श क्यों कर बने, इसी का खयाल लगा हुआ है। इलाहाबाद के इकानमिक इन्स्टीट्यूट को देख कर और उस पर लाखों का खर्च सुनकर मुझे दुख हुआ। उसमें हम कितने आदमियों को पढ़ा सकेंगे? नई दिल्ली को देखो। उसे देख कर तो आंख में आंसू आता है।

रेलवे ट्रेन के पहले औ। दूसरे दर्जों के डिब्बों में पिछले २० वर्षों में कितना अदल-बदल हुआ है ? पर क्या गांव वालों के लिये भी डिब्बे का सुधार हुआ है ? गांव वालों को फर्स्ट क्लास के डिब्बे में सुधार होने से क्या लाभ पहुँचा है ? यह सब प्रगति सात लाख गाँव वालों का ख्याल दूर करके की गई है। इसे अगर शैतानियत न कहूं तो मेरी सत्य-निष्ठा खोटी ठहरे। इस राज्य की यही कल्पना है। इसमें भी कोई शंका नहीं की, यह एक यही कल्पना कर सकता है। हाथी अगर चींटी के लिये इन्तज़ाम करने जाय, तो बेचारा हाथी क्या करेगा ? उसके लाये सामान के ढेर के ही नीचे चींटी कुचल जाय ! सर लेपल ग्रिफिन ने कहा था कि, हिन्दुस्तान के लोगों का ख्याल हमें आ ही नहीं सकता। जिसके बिवाई फटती है, वही उसका कष्ट जानता है। मगर हम तो दूसरों से ही अपना प्रबन्ध कराने में इति श्री मानते हैं। हमारी व्यवस्था दूसरा कोई क्यों कर सकेगा ? चाहे वह कितना ही भला हो; मगर तो भी वह बेचारा क्यों करे ? कितने जान बूझ कर नाश कराने वाले हैं सही, मगर इसमें मुझे कुछ शंका ही नहीं है कि, अनेक अंग्रेज शुद्ध बुद्धि वाले हैं। मगर जहां तक हम आप ही तैयार न होवें, वे हमारा दुःख, हमारी भूख क्यों कर समझें ? उनका उल्टा न्याय चलता है। हमारा न्याय है ग़रीब का ख्याल पहले करना; और चर्खे के सिवाय ग़रीबों के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। इसका मुझे पूरा विश्वास है।

हमारे स्नातक भी दूसरे सरकारी विद्यापीठों के स्नातकों के

समान पण्डित बनना चाहें, तो वह उल्टे न्याय से ही चलना होगा। जितना ज्ञान प्राप्त करना हो, वे चर्खे को ही केन्द्र मान कर करें। नेति पक्ष रख कर सब को राष्ट्रीय विद्यालय कहलाने का हक़ है, मगर मैं यह पुकार कर कहता हूँ कि साथ ही साथ जो इति श्री पक्ष स्वीकार न करे, तो वह सच्चा राष्ट्रीय विद्यालय नहीं है। देवप्रसाद सर्वाधिकारी ने मुझे अपना अनाथाश्रम दिखलाया और कहा कि--'देखिये यहां चर्खा भी रखा है।' मैंने कहा—'इसमें कुछ भी नहीं है। अनेक चीजों में एक चर्खा तो भूल जायगा।' जो चर्खे का अर्थ शास्त्र समझते हैं, वे ऐसी भूल में न पड़ेंगे कि, अनेक वस्तुओं में एक हितकर वस्तु चर्खा है। तारे अनेक हैं, मगर सूर्य एक ही है। अनेक राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के तारों में मध्यस्थ सूर्य चर्खा है। इसके बिना विद्यालय नाकाम है पाठशालायें कौड़ी काम की नहीं।

लार्ड अरविन ने सच ही कहा है कि पार्लमेण्ट की मार्फत हमें जितना मिलना हो ले लेवें, यह बात ऐसी है कि इससे इन पर किसी को गुस्सा न होगा, उन्होंने यह बात सद्भाव से की है, उनकी उनके पास दूसरे कुछ की आशा रखना स्वप्नवत है, वे तो वीर पुरुष हैं और अपने देश की दृष्टि से ही यह बात करते हैं तो हम क्या अपनी वीरता खो बैठे हैं? हम क्या अपने देश की दृष्टि से नहीं देख सकते? उनके ज्योतिमंडल में सूर्य है, लन्दन और हमारे में चर्खा। इसमें मेरी भूल हो सकती है, मगर जब तक मेरी यह भूल मुझे मालूम न होवे, यह भावना मुझे प्राप्त

सम प्रिय है। इस चर्खे में देश का कल्याण करने की ताकत नहीं है, मगर इसके त्याग में देश का नाश है, दुनियां का भी नाश है। कारण यह कि यह सर्वोदय का साधन है और सर्वोदय ही सच्ची बात है। मेरी आंख सर्वोदय की ही दृष्टि से देखती है भूल करने वाले को मैं देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं भूल करने वाला हूँ। अगर मैं किसी कामी पुरुष को देखता हूँ तो सोचता हूं कि एक समय मैं भी वैसा ही था, इसलिये सबको अपने समान समझता हूं। सबका हित अपनी दृष्टि में रखे बिना मैं विचार नहीं कर सकता, अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक हित यह चर्खा नहीं है। चर्खा शास्त्र तो सर्वोदय-सर्व भूत हितवाद दिखलाता है। तुम पढ़ो तो यही दृष्टि रख कर सीखो खोज करो तो भी यही दृष्टि रख कर, फिर परिणाम में तुम्हें चर्खा ही दिखाई पड़े, जिस प्रकार सब कुछ में से प्रहलाद ने राम को ही निकाला, तुलसीदास को मुरलीधर का दर्शन करते भी राम ही दिखलाई पड़े, वैसे ही मुझे चर्खे के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। इसी में तुम्हारे विचार समाप्त होवें, कि इस चर्खे की क्योंकर उन्नति हो तुम्हारा रसायन ज्ञान इसमें किस प्रकार काम आवेगा, तुम्हारा अर्थशास्त्र क्योंकर इसे बढ़ावेगा, तुम्हारे भूगोल ज्ञान का इसमें क्या उपयोग होगा, इसी प्रकार तुम्हें विचार करना है और मैं जानता हूं कि यह बात हमारे विद्यापीठ में अभी नही आई है, इसमें मैं किसी की टीका या निन्दा करना नहीं चाहता, मैं तो अपने दुःख की ज्वाला तुम्हारे आगे रखने बैठा हूं। यह दुःख ऐसा नहीं है जो कहा जा सके। इसी आशा से इतना कहा

है कि तुम इस दुःख को आज पहिचान सकोगे। इतना समझाने के बाद भी अगर तुम्हें ऐसा लगे कि चर्खे का केन्द्र विद्यापीठ के बाहर है तो विद्यापीठ को भूल जाओ, इस साल मेरा काम चर्खे के सिवाय और कुछ नहीं है। विद्यापीठ का अस्तित्व इसी के लिये है और इसी के लिये मैं आपसे कुछ मांगता हूँ। राजेन्द्र बाबू को विद्यापीठ के लिये भीख मांगनी पड़े, तो यह उनकी शक्ति का अपव्यय है। आप लोग इस विद्यापीठ को सँभालो और राजेन्द्र बाबू से दूसरा काम लो। स्नातको, तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहकर उसका पालन जीवन भर करो, यही मेरी प्रार्थना है।

गुरुकुल में

निम्नलिखित गुरुकुल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर गान्धी जी की दी हुई वक्तता का अंश है।

सारी सभा में मुझ से हिन्दुस्तान की तत्कालीन आवश्यकता पर पूछा गया है। और यह अच्छा होगा कि उसी उत्तर को दुहरा दूं जो आज तीसरे पहर अन्य स्थान पर दे चुका हूं। साधारणतः एक प्रधान धार्मिक लगन सब से बड़ी और तात्कालिक आवश्यकता है। परन्तु मैं समझता हूं कि यह किसी का दिल संतुष्ट करने का साधारण सा उत्तर है। और प्रत्येक समय के लिए यह एक सच्चा उत्तर हो सकता है। इसलिए जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि अपने में सोती हुई धार्मिक लगन के

कारण हम निरन्तर भय की स्थिति में रहते हैं। हम सांसारिक अधिकारियों से उतना ही डरते हैं जितना आध्यात्मिक अधिकारी से। हम अपने पुरोहित और पंडितों के अपने अपने विचार प्रगट करने का साहस नहीं करते। हम सांसारिक शक्ति से डरते हैं। मेरा विश्वास है कि ऐसा करने में हम उनका और अपना अहित करते हैं। न हमारे धार्मिक गुरु और न राजनैतिक शासक हम से ऐसा सत्य छिपाने की आशा करते होंगे। बम्बई की एक सभा में अभी अभी लार्ड विलिङ्गडन ने कहा है कि उन्होंने देखा है कि हम लोग न कहने में संकोच करते हैं। जब हम कहना चाहते हैं और उन्होंने अपने श्रोताओं को अपने में निर्भीकता पैदा करने की राय दी। निसन्देह निर्भीकता का अर्थ दूसरों के प्रति श्रद्धा औ समवेदना का अभाव न होना चाहिये. मेरी विनम्र राय में निर्भयता कोई स्थायी और वास्तविक चीज प्राप्त के लिये जरूरी है यह गुण विना धार्मिक जागृति के अप्राप्य है। हम को ईश्वर से डरना चाहिये और मनुष्यों से नहीं यदि हम अपने एक दैवी शक्ति को स्वीकार कर लें जो सब कुछ जानती है क्योंकि हम सोचते अथवा करते हैं और जो हमारी रक्षा करती है और सच्चे मार्ग का पथप्रदर्शन करती है तो हम ईश्वर के सिवा किसी से न डरेंगे। शासकों के शासक की राजभक्ति अन्य सारी राजभक्ति के ऊपर हैं हमारे शासक अधिकार बतलाती है।

और जब हम निर्भयता की इस समझ को पूर्ण विकसित कर लेंगे, तब हम देखेंगे कि स्वदेशी के बिना हमारा उद्धार है।

वह स्वदेशी जो सुविधा से पहिनी जा सकती है। मेरे लिये स्वदेशी एक कदर अर्थ रखती है। मैं चाहता हूं कि अब लोग इसे अपने धार्मिक राजनैतिक और आर्थिक जीवन में अपनावें। इसलिये यह समय पर केवल स्वदेशी कपड़ा पहन लेने हीं तक सीमित नहीं है। उसे हमको सभी समय करना है बदला अथवा ईर्षा की भावना से नहीं। बल्कि अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य के लिए। संच मुच हमारे पहिनावे का ढंग हमारे वातावरण के कुछ अनुकूल होता है। सुन्दरता और रुचि में यह कोट और पतलून से कहीं अच्छा है। एक हिन्दोस्तानी अपने पायजामा के ऊपर लहराती हुई कमीज और उस पर बिना नेकटाई के वास्कट पहिने और कुर्ता का दामन झुलाते हुये देखने में अच्छा लगता है। धर्म में स्वदेशी अपने सुन्दर अतीत को समझने की शिक्षा देती है और उसे वर्तमान में पुनः प्रचलित करने को कहता है। यूरोप में जो भावना चल रही है वह यह प्रगट करती है कि वर्तमान सभ्यता बुरी और अज्ञानपूर्ण शक्तियों की द्योतक है। जब कि प्राचीन सभ्यता अर्थात सभ्यता में देशी शक्ति को प्रगट करता है। वर्तमान सभ्यता विशेषकर भौतिक है जब कि हमारी सभ्यता विशेषकर आध्यात्मिक। वर्तमान सभ्यता पार्थिव नियमों की खोज में लगी हुई है और मनुष्यों की योग्यता को उत्पादन के ढंग और सत्यानाश के अस्त्रों की खोज अथवा आविष्कार के कार्यों में लगाती है। हमारी सभ्यता विशेष कर आध्यात्मिक नियमों की खोज में लगी है। हमारे शास्त्रों का यह कथन है कि सद्‌जीवन की प्राप्ति के लिये सत्य, पवित्रता, समस्त

जीवधारियों के प्रति दया, लोभ पर अधिकार प्राप्त करना और दैनिक जीवन के लिये आवश्यकता से अधिक चीजों का इकट्ठा करने से इनकार करना अनिवार्य है। इसके बिना दैवी शक्ति की शान असम्भव है। हमारी सभ्यता निश्चित पूर्वक हमें बतलाती है कि अहिंसा के गुण पूर्णतया प्राप्त करने से सारा संसार हमारे चरणों पर आजाता है। इस सत्य के आविष्कारक ने अनेक उदाहरण दिये हैं जिन से विश्वास पैदा होता है। राजनैतिक जीवन में इसका परिणाम देखिये। हमारे शास्त्रों में किसी वस्तु की उतनी कीमत नहीं दी गई जितनी कि जीवन को। यदि हम अपने शास्त्रों को जीवन की पूर्ण सुरक्षा दे दें तो सोचिये हमारे साथ उनका कैसा सम्बन्ध होना चाहिये। यदि वे केवल इतना ही अनुभव करें तो उनके कामों के बारे में चाहे जो कुछ सोचें पर हम उनके शरीर को उतना ही पवित्र समझेंगे जैसा कि अपना, तुरन्त ही परस्पर पूर्ण विश्वास कर वायु मण्डल उत्पन्न हो जायगा। और दोनों ओर इतनी साफ दिली होगी कि वह अनेक समस्याओं के सम्मानित और लाभ संगत हल का रास्ता तैयार कर देगी। वह याद रखना चाहिये कि अहिंसा पालन करने में प्रत्युपकार की जरूरत नहीं होती। यद्यपि सच तो यह है कि अन्त में प्रत्युपकारी मिल ही जाता है। हममें से बहुत से विश्वास रखते हैं मैं भी उन्हीं में से एक हूं कि अपनी सभ्यता के द्वारा हमें संसार को एक संदेश देना है। मैं ब्रिटिश सरकार को अपनी राजभक्ति स्वार्थवश देता हूँ। ब्रिटिश जाति के द्वारा सारे संसार को अहिंसा का शक्तिमान संदेश भेजना चाहता हूँ। परन्तु वह तब

हो सकता है जब हम अपने विजयी कहलाने वाले को विजय कर लें। और मेरे आर्य समाजी मित्रो! शायद आप ही लोग इस कार्य के लिये चुने गये हैं। आप लोग अपने धार्मिक ग्रन्थों को आलोचनात्मक ढंग से पढ़ने का दावा करते हैं। आप कुछ नहीं मानते। और आपका कहना है कि आप अपने विश्वास को भय के कारण नहीं कम कर सकते। मैं नहीं समझता कि अहिंसा के सिद्धान्त को उड़ाने या सीमित करने के लिये उसमें कोई स्थान है। तब आप इस समय के परिणामों की परवाह न करके काम में लायें। इससे आपके विश्वास की शक्ति की परीक्षा होगी। आप केवल हिन्दोस्तान का उद्धार न करेंगे बल्कि मानव जाति की सेवा करेंगे जिसके लिये स्वामी दयानन्द उत्पन्न हुए थे। स्वदेशी को निरन्तर सावधानी और सूक्ष्म आत्म परीक्षा के साथ काम में लाने वाली शक्ति समझना चाहिए। यह आलसियों के लिये मतलब की नहीं है बल्कि उनके लिये है जो प्रसन्नता से सत्य के लिये अपना जीवन दे सकते हैं। स्वदेशी के अन्य जितने ही पहलुओं पर विचार किया जा सकता है। परन्तु मैं समझता हूं कि अपना मतलब समझाने के लिये मैंने आप लोगों से काफी कह दिया है। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग हिन्दोस्तान के सुधारक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरे कथन की परीक्षा किये बिना उसकी उपेक्षा न कर देंगे। और यदि मेरे शब्दों का आप पर प्रभाव पड़ा हो तो मैं आशा करता हूं कि आज मानवता की इस बात को जीवन में काम में लायेंगे जिसका जिक्र

मैंने आप से करने का साहस किया है और अपनी कारवाइयों से परिप्लावित कर देंगे।

गुजरात विद्यापीठ में

गुजरात विद्यापीठ के स्नातकों को आशीर्वाद देते हुए गांधीजी ने कहा—

अगर आप यह पूछें कि, लाहौर में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास कराने में भाग लेकर और उसमें सविनय भंग की शर्त डाल कर मैंने जो कुछ किया, उसका हम क्या अर्थ लगावें, तो मुझे आश्चर्य न होगा। मैं यहाँ कई बार कह चुका हूं कि विद्यापीठ में हमें संख्या की नहीं, वल्कि शक्ति की जरूरत है। अगर मुट्ठी भर आदमी भी अपने को सौंपे हुए काम को ठीक तरह करें, तो उनकी शक्ति से इच्छित काम पूरा हो सकता है। इसी प्रकार के विश्वास के कारण मैंने सविनय कानून भङ्ग और पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पेश करने का साहस किया था।

कलकत्ता के प्रस्ताव में 'डोमिनियन स्टेट्स' पाने की प्रतिज्ञा थी। अगर वह प्रतिज्ञा सच्ची थी, तो १६२६ के अन्त में 'डोमिनियन स्टेट्स' न मिलने पर, चाहे जितना दुःख और अपवाद सह कर भी लाहौर का प्रस्ताव पास करना हमारा धर्म हो पड़ा था। आज जब कि 'डोमिनियन स्टेट्स' स्वातन्त्र्य के विरोध में उपस्थित किया जाता है, मेरे समान 'डोमिनियन स्टेट्स' का पक्षपाती भी

स्वातन्त्र्य की ही बात करेगा। अर्लरसेल के एक वाक्य ने हम सचेत कर दिया है। जब उन्होंने कहा कि 'डामिनियन स्टेटूस' एक प्रकार स्वतन्त्रता ही है और उसे पाने में भारत को बहुत समय लगेगा, तो हमें इशारे में समझ जाना चाहिये कि लार्ड इरविन और वेज वुडबेन जिस 'डोमिनियन स्टेटस' की बात करते हैं, वह दूसरे उपनिवेशों से बिल्कुल जुदा है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में जो 'डोमिनियन स्टेटूस' है, उसमें तो मात्र स्वतन्त्रता का ही सम्बन्ध है। जब तक वे साम्राज्य के साथ रहने में अपना फायदा समझते हैं, तब तक उनके साथ रहते हैं और लाभ न देखने पर अपना सम्बन्ध छुड़ा सकते हैं। मैंने जब-जब 'डोमिनियन स्टेट्स' की बात की है, तब-तब इसी आशय को ध्यान में रख कर की है इससे कम किसी औपनिवेशिक पद की मैंने कभी कल्पना तक नहीं की थी। लेकिन आज जब कि हमारे इच्छित 'डोमिनियन स्टेटूस' का अर्थ इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री अतिशय संकुचित बता रहे हैं, तब तो उसका यही मतलब हुआ कि अब तक लोहे को बेड़ी पहनते थे, अब से आगे सोने या हीरे की पहनना—हमारी दृष्टि में इसका क्या मूल्य हो सकता है? लेकिन दुर्भाग्य से पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादी की बात ही से भय खाते हैं। हमारी नज़र में उसकी चर्चा ही मूर्खता पूर्ण है, और हममें से कई भयभीत होकर कह रहे हैं कि ब्रिटेन के साथ का सम्बन्ध टूट जाने से भारत वर्ष में मारकाट मच जायगी, अराजकता फैलेगी। तो ठीक है, मैं सदा से अहिंसा का सम्पूर्ण उपासक, उसमें पूरा विश्वास रखने वाला रहा हूँ, फिर

आसान है, क्योंकि उन्हें जेल में रहना आता है। वे लोग तो वहां पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष रह कर अपना घर बना लेते हैं, किन्तु इससे उनके द्वारा देश की कोई सेवा नहीं होती। मैं तो आप से जेल जाने और फांसी पर लटकने की योग्यता चाहता हूँ। यह योग्यता आत्म शुद्धि से मिल सकती है। १९२१ में हमने आत्म शुद्धि से प्रतिज्ञा की थी, आज मैं आप से ततोधिक आत्म शुद्धि की आशा रखता हूँ। आज देश में, वातावरण में, जहां तहां हिंसा है। लेकिन ऐसी हिंसा से जल कर खाक हो जाने की शक्ति आप में होनी चाहिये। अगर आप अपने में सत्य और अहिंसा को मूर्तिमन्त बनाना चाहते हैं, तो मेरी गिरफ्तारी के बाद—अगर मैं गिरफ्तार किया गया यदि देश में खून खराबी और मार-काट चल निकले, तो उस समय मैं यह न सुनना चाहूँगा कि आप घर में दुबके बैठे रहें या आपने सुलगाने वाले के लिये बत्ती जला दी या मारकाट या लूटखसोट में भाग लिया अगर ये समाचार मेरे कानों तक पहुँचे तो मुझे मरणान्तक दुःख होगा। जेल में जाने से भी अधिक कठिन बात तो यह है कि आप पूर्ण स्वाधीनता के सच्चे सिपाही बनने पर न घर में बैठे रहेंगे और न हिंसा में शामिल होंगे। अगर घर में छिप रहेंगे, तो नामर्द कहे जायँगे और हिंसा में शामिल होंगे, तो आपकी अप्रतिष्ठा होगी। चारों ओर जो लपटें उठ रही हैं, उनमें गिरकर और खाक होकर ही उन्हें बुझाना हमारा कर्त्तव्य हो पड़ेगा। आपकी अहिंसा की प्रतिज्ञा ही ऐसी है और गुजरात में आपकी साख भी कुछ ऐसी ही जम गई है कि, यहां के हिंसावादी भी आपसे यही आशा

रखेंगे, जो मैं कह रहा हूँ। व्यभिचारी आदमी संन्यासी से संयम और संन्यास की आशा रखता है। इसी तरह हिंसावादी भी आपके सत्य और अहिंसा के मार्ग को छोड़ने पर आपकी निंदा करेंगे। एक वेश्या भी जब किसी भले आदमी की सोहबत करती है, तो उसे व्यभिचार न करने की चेतावनी देती है। लेकिन, मान लीजिये कि हमारे हिंसावादी उनसे भी खराब हों, वे आप को हिंसा में शामिल करें या होने दें, तो आखिर में तो वे आपकी निंदा ही करेंगे।

अतः आप लोग जेल के लिये बखूबी तैयार रहें, लेकिन जिस दिन हिन्दुस्तान में सविनय कानून भंग का समय आ पहुंचेगा, उस दिन आपको कोई जेल न ले जायगा, बल्कि धधकती हुई आग को बुझाने की आप से आशा की जायगी। यह आशा अपने आप को उसमें होम कर ही आप पूरी कर सकते हैं, किसी दूसरी तरह नहीं कर सकेंगे। अगर आप उसमें स्वाहा न हो सकें, तो निश्चय जानिये कि जेल जाने के लिये आप योग्य ही न थे। इसलिये अगर आपके मन में कहीं थोड़ी सी भी हिंसा छिपी पड़ी हो, तो उसे निकाल बाहर करना और रचनात्मक कार्य-क्रममें व्यस्त रहना।

सविनय अवज्ञा किस प्रकार की होगी, सो तो मैं नहीं जानता। लेकिन, कुछ न कुछ तो करना ही होगा। मैं तो रात दिन इसी चीज को रट लगाये हूं, क्योंकि सविनय भंग के प्रकार की शोध करने की खास जिम्मेदारी मेरी ही होगी। सत्य और अहिंसा का

अब मैं विद्यार्थियों से कुछ कहूँगा। मैं समझता हूं कि उन पर दोषारोपण करना चाहिये, क्योंकि ऐसे शीशे हैं जिनमें वर्तमान स्थिति अच्छी तरह से झलक रही है। वे सीधे सादे होते हैं और उन्हें आसानी से समझाया जा सकता है। यदि उनमें गुण की कमी है तो यह उनका दोष नहीं है। वरन् यह उनके संरक्षकों शिक्षकों और राजा का है। राजा को दोष मैं क्यों देता हूं? यथा राजा तथा प्रजा, उसी प्रकार है यथा राजा तथा प्रजा, क्योंकि राजा तभी तक राजा है जब तक उसकी कद्र की जाय। जनता की गलती और कमियां उनके विद्यार्थियों के शीशे में झलकती है। और इसलिये हमें संरक्षकों, अध्यापकों और राजा का सुधार करना होगा प्रत्येक घर यूनिवर्सिटी है और संरक्षक उनके शिक्षक। भारत वर्ष के माता पिता इस कर्तव्य को भूल चुके हैं। विदेशी संस्कृति का ठीक अनुमान हम नहीं लगाते। तो हम उस उधार ली हुई संस्कृति के साथ अब अपने उत्थान की आशा कैसे कर सकते हैं।

हम इस यूनिवर्सिटी का शिक्षण संस्था के रूप में नहीं वरन एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में उद्घाटन कर रहे हैं। विद्यार्थियों में चरित्र और साहस पैदा करने के लिये इसका उद्घाटन कर रहे हैं। इस सफलता से स्वराज्य के लिये हमारी योग्यता आँकी जायगी।

यह समय कहने का नहीं बल्कि करने का है। और मैं राष्ट्रीय त्याग के लिये आप लोगों को अपना भाग अदा करने के लिये

आमन्त्रित करता हूँ। अब मैं विद्यार्थियों से कहता हूं। मैं उन्हें सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हुआ केवल विद्यार्थी नहीं समझता। मेरा विचार है कि जो विद्यार्थी इस शिक्षालय में भरती हुये हैं वे दूसरों के लिये आदर्श हों। और इस लिये कुछ सीमा तक शिक्षकों की दशा को पूर्ण कर रहे हैं। महाविद्यालय उन्हीं के आधार पर स्थापित किया गया है बिना उनके यह सब असम्भव होगा। वे इसकी जिम्मेदारियों में भाग लेते हैं और जब तक वे यह नहीं अनुभव करेंगे, शिक्षकों के सारे प्रयत्न बेकार होंगे।

अब कालेज को छोड़कर इसमें भरती होने पर उन्हें यह पूरी तरह अनुभव करना चाहिये। ईश्वर उनको इस भयंकर संग्राम में अपना कर्तव्य पूरा करने के लिये बली बनावे। विश्वास की शक्ति और विद्यार्थियों की संख्या इस संस्था को सफलता और इसे शेष हिन्दुस्तान का आदर्श बनायेगी। इसकी सफलता का कारण गुजरात का धन या इसकी पढ़ाई नहीं होगी। बल्कि यह इस लिए कि यह असहयोग की जन्मभूमि है। पहिले गुजरात ही में जमीन तैयार की गई थी और बीज बोया गया था। यह गुजरात ही है जिसे प्रसव-वेदना सहनी पड़ी है और उसने आन्दोलन को बढ़ाया है। यह मेरा अहंकार नहीं है। स्पष्टतः यदि मुझसा बनिया ऋषि हो सकता है तो मैं ऋषि हो गया हूँ। मैंने केवल विचार किया है और मेरे मित्रों ने इसे किया है। उनका विश्वास ऊँचा है। मैंने इसे अनुभव द्वारा देखा है। जिस तरह मुझे सामने पेड़ दिखलाई देते हैं वैसी तरह मैंने देखा है कि भारतवर्ष केवल अहिंसात्मक असहयोग से उन्नति कर सकता है

उत्तर—मानव-सन्तान में से न्यायहीनता-दीनता, दुर्बलता और दरिद्रता को हटाकर उनकी जगह बन्धु भाव आत्मगौरव और सत्समृद्धि को स्थापित करना।

प्रश्न—ऋषियों के प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है ?

उत्तर—अविद्या को हटा कर विद्या का, अनाचार को हटाकर सदाचार का और स्वार्थ भाव को हटा कर लोक संग्रह भाव का प्रचार करना तथा आर्य सभ्यता का विस्तार करना और अध्यात्म ज्ञान को वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन का आधार बनाना।

प्रश्न—देवों के प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है ?

उत्तर—मनुष्यों में सद्धर्म का प्रचार करना, प्रकृति के शक्ति रूपी देवताओं से मनुष्यों को जो पदार्थ मिलते हैं, उनके संचय को मनुष्य समाज के उपयोग के लिए इष्ट और आपूर्त आदि से सम्पन्न रखना और धर्माश्रम में परमात्मा की भावना करना।

प्रश्न—तुम इन कर्तव्यों का पालन करोगे ?

उत्तर—मैं परमात्मा के दिव्य तेज को साक्षी करके कहता हूं कि मैं इन कर्तव्यों के पालन करने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा। आपके आशीर्वाद तथा परमात्मा के अनुग्रह से मेरा प्रयत्न सफल हो।

इस विधि के समाप्त होने पर गांधीजी ने अपना अभिभाषण शुरू किया—

"आज आप लोगों से मैं कोई नई चीज कहने के लिये यहां नहीं आया हूं और मेरे पास कोई नई चीज है भी नहीं। मैं ऐसे समय में जो कुछ कहता आया हूं, करीब-करीब वही इस समय

भी कह दिया चाहता हूं। भाषा में भेद भले ही पड़े बात वही होगी। मेरा विश्वास दिन प्रति दिन राष्ट्रीय शिक्षा में और राष्ट्रीय विद्यालयों में बढ़ता जाता है। मैं भारत में भ्रमण करते समय सभी राष्ट्रीय विद्यापीठों का परिचय ले चुका हूँ, राष्ट्रीय विद्यालय और विद्यापीठ आज दिन बहुत कम हैं, परन्तु जितने हैं, उनमें काशी विद्यापीठ बड़ी संस्था है। संख्या की दृष्टि से नहीं प्रयत्न और गुण की दृष्टि से। इसके लिये किये गये प्रयत्न के साक्षी मुझ से बढ़ कर आप ही लोग हैं।

वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा का आरम्भ सन् १९२० से हुआ था। यह मैं नहीं कहता कि इसके पहले राष्ट्रीय विद्यालय नहीं थे, परन्तु मैं इस समय उन्हीं राष्ट्रीय विद्यालयों की बात कह रहा हूं, जिनकी नींव असहयोग आन्दोलन के जमाने में डाली गई थी। जो कल्पना सन् १९२० में इन राष्ट्रीय विद्यालयों के लिये की गई थी, उसमें पहले के राष्ट्रीय विद्यालयों की कल्पना से कुछ भेद था, इस कल्पना वाले हम थोड़े हैं और आज जो स्नातक हैं वे भी बहुत थोड़े हैं। अपने भारत भ्रमण में राष्ट्रीय स्नातकों को देखता और उनसे बात चीत कर लेता हूँ। इससे समझ में आया है कि उनमें आत्म विश्वास नहीं है। बेचारे सोचते हैं कि फंस गये हैं। इसलिये किसी तरह निबाह लें; किसी न किसी काम में लग जायँ और पैसा मिले! सभी स्नातकों की नहीं, मगर बहुतों की यही दशा है; उनसे मैं दो शब्द कहना चाहता हूं। उनको जानना चाहिये कि आत्म विश्वास खोने का कोई कारण नहीं है।

स्वराज्य के इतिहास में इन विद्यार्थियों का दर्जा छोटा नहीं रहेगा; ऐसा करना विद्यार्थियों के हाथ में है कि जिससे उनका दर्जा छोटा न रहे। स्नातकों को जो कागज का पुर्जा 'प्रमाणपत्र' दिया गया है, वह कोई बड़ी चीज नहीं है, वह तो कुलपति के आशीर्वाद की निशानी है, उसमें प्राण प्रतिष्ठा मान कर आप स्नातक उसका संग्रह करें, परन्तु यह हर्गिज न सोचें कि उससे आजीविका का सम्बन्ध कर लेंगे वा धन पैदा करेंगे। इन राष्ट्रीय विद्यापीठों का यह ध्येय नहीं है कि आजीविका का प्रबन्ध किया जाय, अवश्य इसमें आजीविका भी आ जाती है, परन्तु आप लोग समझलें कि आप लोग आजीविका प्राप्ति के भाव से इस विद्यापीठ में नहीं आते, कुछ और ही काम के लिये आते हैं। आप लोग राष्ट्र को अपना जीवन समर्पित करने के लिये आते हैं, स्वराज्य का दरवाजा खोलने की शक्ति हासिल करने के लिये आते हैं।

आप स्नातकों ने आज जो प्रतिज्ञा की है, उस पर अगर आप अच्छी तरह ख्याल करेंगे, तो आपको मालूम होगा कि उसमें भी स्वार्पण की बात है, स्वधर्म पालन की बात है। मैक्समूलर ने कहा है कि हिन्दुस्तानी लोग जीवन को धर्म समझते हैं, उनके सामने अधिकार की बात नहीं है, इसका परिचय शास्त्रों से मिलता है। पूर्वजों के इतिहास से भी यही विदित होता है, जो धर्म का पालन भली भाँति करता है, उसको अधिकार भी मिलता है। मगर अहम्भाव स्वीकार करने पर आदमी धर्मभ्रष्ट हो जाता है। अधिकार परमार्थ के काम में लगाना चाहिये।

अगर हम प्राचीन इतिहास को देखें, तो मालूम हो जायगा कि, इस जगत् में जो कुछ बड़ा कार्य हुआ है, वह संख्या के बल से नहीं, किसी विशेष शक्ति द्वारा हुआ है। बुद्ध एक था मुहम्मद जरदुस्त एक था, ईसा एक था, परन्तु ये एक होकर भी अनेक थे, क्योंकि अपने हृदय में राम को साथ रखते थे। अबुबकर ने पैगम्बर से कहा कि दुश्मनों का दल बड़ा है और इस गुफा में सिर्फ दो ही आदमी हैं। पैगम्बर ने कहा—"दो नहीं हम तीन हैं, खुदा भी तो हमारे साथ है।" ये तीन, तीस कोटि से भी अधिक थे, लेकिन वैसा आत्म विश्वास होना चाहिये। आत्म-विश्वास रावण का सा न हो, जो समझता था कि मेरे समान कोई है ही नहीं। आत्म-विश्वास होना चाहिये विभीषण के ऐसा, प्रह्लाद के ऐसा। उनके जी में यह भाव था कि, ईश्वर हमारे साथ है, इससे हमारी शक्ति अनन्त है। अपने इसी विश्वास को जगाने के लिये, आप स्नातक लोग विद्यापीठ में आते हैं।

निश्चित परामर्श

युक्त प्रान्त के दौरे में प्रयाग के विद्यार्थियों की ओर से मुझे नीचे लिखा पत्र मिला था :—

'यङ्ग इण्डिया' के अभी हाल के एक अङ्क में ग्रामीण सभ्यता पर आप का जो लेख छपा था, उसके संबन्ध में हमारा निवेदन है कि पढ़ाई खतम कर चुकने पर गांवों में जा बसने की आपकी

सलाह को हम दिल से मानते हैं, लेकिन आपका यह लेख हमारी रहनुमाई के लिये काफ़ी नहीं है। हम चाहते हैं कि हमसे जिस काम की आशा रखी जाती है उसकी कोई निश्चित रूप रेखा हमारे सामने हो। अनिश्चित और बेमतलब बातें सुन-सुन कर तो अब हमारे कान पक गये। अपने देश भाइयों के लिये कुछ कर गुजरने के लिये हम तड़प रहे हैं, लेकिन हम नहीं जानते कि क्या करें कैसे शुरू करें और अपनी मेहनत के फल स्वरुप किन लाभों की भविष्य में यथासंभव आशा रखें। आपने १५) से लगाकर १५०) तक की आमदनी का जो जिक्र किया है, उसे पाने के लिये हम किन साधनों का सहारा लें? आशा है विद्यार्थियों की सभा में या अपने प्रतिष्ठित अखबार में आप इन बातों पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

जो भी विद्यार्थियों की एक सभा में मैं इस विषय की चर्चा कर चुका हूँ और यद्यपि इन स्तम्भों द्वारा विद्यार्थियों के लिये एक निश्चित कार्यक्रम प्रकट हो चुका है, तो भी पहले बताई हुई योजना को फिर से यहाँ दृढ़ता पूर्वक पेश कर देना अनुचित न होगा।

पत्र लेखक जानना चाहते हैं कि अभ्यास पूरा करने के बाद वे क्या कर सकते हैं। मैं उनसे कहा चाहता हूँ कि बड़ी उम्र के विद्यार्थी यानी कालेजों के तमाम विद्यार्थी कालेजों में रहते और पढ़ते हुये भी फ़ुरसत के वक्त गाँवों में जाकर काम करना शुरू कर दें। ऐसों के लिये मैं नीचे एक योजना देता हूँ।

विद्यार्थियों को अपने अवकाश का सारा समय ग्राम सेवा में

बिताना चाहिये, इस बात को ध्यान में रख कर लकीर के फ़क़ीर बनने के बदले वे अपने मदरसों या कालेजों के पास पड़ने वाले गाँवों में चले जायँ और गाँव वालों की हालत का अभ्यास करके उनके साथ दोस्ती पैदा करें। इस आदत के कारण वे गाँव वालों के निकट सम्पर्क में आते जायँगे, और बाद में जब कभी वे कायमी तौर पर वहाँ बसने लगेंगे तो लोग एक मित्र की हैसियत से उनका स्वागत करेंगे न कि अजनबी समझ कर उन पर शक लायेंगे, लम्बी छुट्टियों के दिनों में जाकर विद्यार्थीगण गांवों में रहें, बड़ी उम्र के नौजवानों के लिये मदरसे या कक्षायें खोलें, गांव वालों को सफाई के नियम सिखायें और उनकी मोटी-मोटी बीमारियों का इलाज करें। वे उनमें चर्खे को दाखिल करें और अपने फाजिल वक्त के एक एक मिनट को अच्छी तरह बिताने की उन्हें सिखावन दें। इस काम के लिये विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने अवकाश के सदुपयोग सम्बन्धी विचारों को बदल डालना पड़ेगा। छुट्टी के दिनों में अविचारी शिक्षक अकसर विद्यार्थियों को नया-नया सबक याद कर लाने को कहते हैं। मेरी राय में यह एक बहुत ही बुरी आदत है। छुट्टी के दिनों में तो विद्यार्थियों के दिमाग रात दिन की दिन चर्चा से मुक्त रहने चाहियें, जिससे वे अपनी मदद आप कर सकें और मौलिक उन्नति भी कर लें। जिस ग्राम सेवा का मैंने जिक्र किया है वह मनोविनोद और नये-नये अनुभव प्राप्त करने का एक अच्छे से अच्छा साधन है। जाहिर है कि पढ़ाई खतम करते ही जी जान से ग्राम सेवा में लग जाने के लिए इस तरह की तैयारी सब से उम्दा है।

खादी का सन्देश और शुद्धता

मालवीय जी के कहने से हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को गांधी जी ने अपनी वार्ता में खादी और शुद्धता का एक साधारण सन्देश दिया जो इस प्रकार है:—

'जो आपको कहना था कह चुके। अब आपकी बात कोई नहीं सुनता फिर खद्दर के सम्बन्ध में बात करना आप बन्द क्यों नहीं कर देते।' कुछ क्षेत्रों से मुझे यह राय दी गई है। परन्तु मैं अपने प्रिय मन्त्र का पाठ करना क्यों बन्द करदूं ? जब कि मेरे सामने प्रहलाद का उदाहरण है जो मृत्यु से भी भयंकर यातनाओं के बीच रह कर भी राम-नाम कहना नहीं छोड़ सका और अब तक मुझे कोई यातना नहीं भोगनी पड़ी। मैं उस एक मात्र सन्देश को कैसे छोड़ सकता हूं। मेरे देश की स्थिति मेरे कानों में बराबर कहती रहती है। पण्डित जी ने राजा महाराजाओं से आप लोगों के लिये लाखों रुपये इकट्ठे किये और कर रहे हैं। यह धन प्रत्यक्ष रूप से धनी राजाओं से मिला है। परन्तु वास्तव में यह हमारे करोड़ों गरीबों से आता है। क्योंकि यूरोप के विपरीत हमारे देश के धनी हमारे उन ग्रामीणों के बल पर धनी बनते हैं जिनको मुश्किल से दिन में एक बार भोजन मिलता है। वह शिक्षा जो आज आपको मिल रही है। उसका इस प्रकार भूखे ग्रामीण अदा करते हैं जिन्हें ऐसी शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलेगा। यह आपका कर्तव्य है कि उस शिक्षा को प्राप्त करने से इन्कार करदें जो गरीबों की पहुँच के

बाहर है। परन्तु मैं यह नहीं कहता कि आप लोग यह आज ही करें। मैं आप लोगों को उन गरीबों का बदला चुकाने के लिये एक छोटा सा यज्ञ करने को कहता हूं क्योंकि गीता का कथन है कि वह जो बिना यज्ञ किये भोजन करता है अपने भोजन की चोरी करता है। युद्ध के दिनों में ब्रिटिश नागरिकों से जिस यज्ञ की आवश्यकता थी वह यह था कि हर गृहस्थ को अपने आंगन में आलू पैदा करना और थोड़ा बहुत कपड़ा बुनना चाहिए। इस प्रकार का और विशेष कर हमारा यज्ञ चर्खा है। दिन-रात मैं इसी की चर्चा करता रहता हूँ। आज मुझे अधिक नहीं कहना है। यदि भारत के गरीबों का सन्देश आपके हृदय को स्पर्श कर सका हो तो मैं चाहता हूँ कि आप कल ही कृपलानी के खद्दर भण्डार में जाकर उनके सारे स्टाक का सफाया करदें और आज आप अपना जेब खाली करदें। पंडित जी ने भिक्षा वृत्ति की कला सीखी है। मैंने इसे उन्हीं से सीखा है। और यदि वे राजाओं महाराजाओं से चन्दा लेने के विशेषज्ञ हैं तो मैं गरीबों की जेब खाली करा लेने में निर्लज्ज होना सीख गया हूँ क्योंकि इसमें उनको फायदा है जो उनसे भी गरीब हैं। आपके लिए लाखों रुपये मांगने और यह विशाल इमारत खड़ी करने का मालवीय जी का उद्देश्य आपको मातृ-भूमि की सेवा करने के लिए स्वस्थ नागरिक बनाकर भेजना है। यह उद्देश्य तब तक असफल हो जायगा यदि आप इस आंधी के साथ अपने को बह जाने देंगे जो आज पश्चिम से आ रही है वह अशान्ति की

आंधी है। वे ढंग यूरोप के सर्व साधारण के नहीं हैं। योरोप में बहुत थोड़े से मित्र हैं जो विदेले विचारों को रोकने के लिये लड़ रहे हैं। परन्तु यदि आप लोग समय से न जगे तो वे अनैतिक लहरें जो तेजी से बढ़ रहीं हैं आप लोगों को जल्दी ही ढक लेंगी। इसलिये मैं अपनी शक्तिभर आप लोगों से चिल्लाकर कह रहा हूं कि सावधान हो जाओ और लहरों को अपने को निगल जाने के पहले दूर भाग जाओ।

उसी विश्वविद्यालय में दो साल के बाद गाँधी जी ने जो वक्तृता दिया निम्नांकित है :—

हिन्दोस्तान के एक महान् सपूत की सेवा करके स्मारक बनने के लिये आप क्या कर रहे हैं ? वह यह आशा करता है कि आप महान साहित्यिक हो बल्कि आशा करता है कि आप अपने जीवन में सच्चे धर्म को व्यजित करके हिन्दू धर्म और देश के रक्षक हों। याद रखिये मालवीय जी की यह विश्वविद्यालय की शानदार इमारत अथवा १३०० एकड़ भूमि का अधिकार न देखा जायगा वरन जा आप लोग होंगे वही देखा जायगा। यदि आप अपने कर्मों में चरित्र के अनिवार्य सत्य को प्रकट करना चाहते हैं तो चरखे के सिवा दूसरे प्रकार से नहीं कर सकते। ईश्वर के अनेक मन में दरिद्रनारायण सब से पवित्र हैं। क्योंकि थोड़े से धनियों के मुकाबिले में वह अगणित गरीब जनता का द्योतक है। अपने को भूखों मरने वाले इन लाखों व्यक्तियों के साथ मिला देने का सब से आसान तरीका मेरे बताये हुये तीन तरह में चर्खे के

संदेश को फैलाना है। आप लोग अच्छे कातने वाले बन खादी पहिन कर अगर आर्थिक सहायता देकर इसका प्रचार कर सकते हैं स्मरण रहे कि वे करोड़ों कभी उस आराम तक न पहुँचेंगे जो आप लगों को मालवीय जी ने दिया है। आप अपने इन भाई बहनों का किस प्रकार बदला चुकायेंगे। आप को विश्वास करना चाहिये कि जब मालवीय जी ने यूनीवर्सिटी की योजना की कल्पना की थी उनके मस्तिक में यह प्रश्न भी था और उन्होने यह आशा से करना शुरु किया कि आप अपने को दी जाने वाली इस शिक्षा के योग्य बनायेंगे।

अछूतों की समस्या

गोलमेज़ सम्मेलन के सम्बन्ध में जब गांधी जी इंगलैंड गये थे तो उन्हें वहां अनेक सभाओं में भाषण देना पड़ा। प्रायः प्रत्येक सभा में उन्होंने अछूतों के पृथक निर्वाचन को स्वीकार का जोरदार विरोध किया। आक्सफोर्ड की भारतीय विद्यार्थियों की मजलिस में जो कुछ उन्होंने कहा है उसका सारांश निम्न-लिखित है जिसे श्री महादेव देसाई ने प्रकाशित किया है:—

मुसलमान और सिक्ख अच्छी तरह से संगठित हैं। अछूत नहीं। उनमें राजनैतिक जागृति बहुत कम है। अब उनके साथ इतना बुरा व्यवहार किया जाता है कि मैं उनकी रक्षा करना

चाहता हूँ। यदि इनका निर्वाचन अलग होगा, तो गांव में जो कि हिन्दू रूढ़िवाद का घर है उनका जीवन संकट मय हो जायगा। उच्च जाति हिन्दू अछूतों की सदियों से अपेक्षा करने के लिये प्रायश्चित करेंगे। वह प्रायश्चित क्रियात्मक सामाजिक सुधारों और अछूतों को सेवा कार्यों द्वारा अधिक सहनशील बनाने के द्वारा ही हो सकता है न कि उसके अलग निर्वाचन की मांग द्वारा उन्हें पृथक निर्वाचन देकर आप रूढ़िवादी और अछूतों के बीच फूट का बीज बो देंगे। आपको जानना चाहिये कि मैं मुसलमान और सिक्खों के विशेष प्रतिनिधित्व प्रस्ताव एक अनिवार्य बुराई के रूप में स्वीकार कर रहा हूं। परन्तु यह अछूतों के लिये निश्चित खतरा होगा। मेरा निश्चय है कि अछूतों के लिये पृथक चुनाव का प्रश्न एक शैतानी सरकार की एक नई करतूत है। आवश्यकता केवल इस चीज की है कि उनको चुनाव की सूची में रक्खा जाय और विधान के अन्दर उनके लिये प्रारम्भिक अधिकारों का प्रबन्ध हो। यदि उनके साथ असंगत बरताव किया जाय या उनके प्रतिनिधि को जान बूझकर मौका न दिया जाय तो उन्हें विशेष चुनाव पंचायत का अधिकार होगा जिसे उन्हें पूरा संरक्षण प्राप्त होगा। इन पंचायतों को अधिकार होगा कि चुने हुये उम्मीदवार को हटा कर बहिष्कृत व्यक्ति का चुनाव करावें।

अछूतों के लिये पृथक निर्वाचन इन्हें सदैव की गुलामी में डाल देगा। पृथक निर्वाचन द्वारा मुसलमान हमेशा मुसलमान बने रहेंगे। क्या आप चाहते हैं कि अछूत सदैव अछूत बने रहें?

पृथक निर्वाचन इस कलंक को अमिट बना देगा। जरूरत है अस्पृश्यता के नाश की और जब आप यह कर लेंगे तो उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर लगाया यह घृणित बन्धन नष्ट हो जायगा। जब आप उस बुरे बन्धन को मिटा देंगे तो फिर किसको चुनाव देंगे? यूरोप के इतिहास पर दृष्टि डालिये। क्या आप मजदूरों और स्त्रियों का पृथक चुनाव पाते हैं? बालिग मताधिकार द्वारा आप अछूतों को पूर्ण सुरक्षा देते हैं। तब रूढ़िवादी हिन्दू भी उनके पास वोट के लिये पहुँचेंगे। तब आप यह कैसे पूछते हैं कि उनके प्रतिनिधि डाक्टर अम्बेदकर का अलग चुनाव पर जोर देते हैं। मैं डाक्टर अम्बेदकर का बहुत सम्मान करता हूँ। उन्हें कटु होने का अधिकारी है। हमारा सिर नहीं फोड़ते यह उनका आत्म संयम है। उनमें इस समय सन्देह की मात्रा इतनी अधिक है कि उन्हें और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। वे प्रत्येक हिन्दू को अछूतों का विरोधी समझते हैं। यह स्वभाविक भी है। ऐसा ही मेरे साथ भी अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में दक्षिणी अफ्रीका में हुआ है वहां जहां भी मैं जाता था यूरोपियन दुतकारते थे। अपना क्रोध प्रकट करना उनके लिये स्वभाविक है। परन्तु जिस पृथक निर्वाचन की वे मांग कर रहे हैं उससे सामाजिक सुधार न होगा। उन्हें इससे शक्ति और प्रतिष्ठा मिल सकती है लेकिन इससे अछूतों को कुछ लाभ न होगा। मैं अछूतों के साथ रहा हूँ और उनके सुख-दुख में भाग लिया है। इसलिए यह अधिकार पूर्वक कह सकता हूं।

विद्यार्थी और हरिजन-सेवा

नागपुर में विद्यार्थियों के बीच भाषण करते हुए गांधीजी ने कहा:—

आप लोगों ने मुझ से प्रतिज्ञा की है जिसका यदि मैं विश्वास कर जाऊं तो मैं यह नहीं जानता कि मैं कहां पहुँच जाऊंगा। परन्तु मैं अपना स्थान जानता हूँ। मैं हिन्दुस्तान का सेवक हूँ और हिन्दुस्तान की सेवा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं समस्त मानव जाति की सेवा करता हूँ। मैंने अपने प्रारम्भिक जीवन में सोचा था कि हिन्दुस्तान की सेवा मानव की सेवा के विरुद्ध नहीं है। ज्यों ज्यों मेरी उम्र बढ़ती गई और आशा है मेरी बुद्धि भी विकसित हुई है मैंने अनुभव किया कि मेरी धारणा ठीक थी। करीब ५० वर्षों की जन सेवा के बाद आज मैं कह सकता हूँ कि एक राष्ट्र की सेवा विश्व सेवा से कम नहीं है। मेरी धारणा और भी मजबूत हो गई है। यह सिद्धान्त बहुत ही अच्छा है। केवल इस सिद्धान्त को मान लेने ही से संसार की स्थिति सुधर सकती है और दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों की पारस्परिक ईर्षा का अन्त हो जायगा। आप लोगों ने ठीक ही कहा है कि अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ते हुए मैंने अपने को हिन्दुत्व में सीमित नहीं रक्खा है। मैंने अनेकों बार कहा है कि यदि हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता की भावना पूर्ण रूप से निकाल दी जाय तो इसका असर बहुत दूर तक पड़ेगा। जैसा कि कल रात को नागपुर की एक सभा में मैंने कहा था कि यदि हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता

वास्तव में दूर कर दी जाय और यदि ऊँची जाति हिन्दू इस भयंकर कमजोरी को अपने हृदय से निकाल दे तो हम शीघ्र ही देखेंगे कि हम सब एक हैं, अलग अलग नहीं। चाहे हम अपने को जो कुछ भी कहें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी। यदि एक बार अस्पृश्यता का बन्धन टूट जाय तो हम एकता का अनुभव करेंगे। जैसा मैंने प्रायः कहा है कि अस्पृश्यता अनेक सिर वाला राक्षस है जो कितने ही रूपों में प्रकट होता है। कुछ तो सूक्ष्म होते हैं। यदि हम किसी भी मानव मात्र से ईर्षा करें तो यह भी अस्पृश्यता की एक किस्म है। मैं यह नहीं कह सकता कि मेरे जीवन में ही अस्पृश्यता निवारण का मेरा स्वप्न पूरा हो जायगा। जो लोग धार्मिक प्रकृति के हैं धर्म के दिखावे में विश्वास नहीं करते बल्कि धर्म में विश्वास करते हैं। वे अवश्य ही सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकार की अस्पृश्यता को दूर करने में जिसका प्रभाव बहुत से मनुष्यों पर पड़ता है विश्वास करते हैं। यदि हिन्दुओं के हृदय से यह बुराई निकल जाय तो हमारे समझने की आँखें अधिक खुल जायेंगी। अस्पृश्यता के सचमुच मिट जाने से मानव जाति के हित का अनुमान करना असम्भव है। अब आप लोगों को समझने में कठिनता न होगी कि मैंने अपना जीवन क्यों इस अकेली चीज पर लगा दिया है। यदि आप विद्यार्थीगण जो यहां इकट्ठे हुये हैं अब तक मेरे कथन को समझ सके हैं और मेरे उद्देश्य को समझ लिया है तो अब जल्दी से जिस सहायता की मैं आशा करता हूं मुझे जल्दी ही प्राप्त होगी। कितने ही विद्यार्थियों ने लिखकर मुझ से पूछा है कि वे इस

आन्दोलन में किस प्रकार सहायता दे सकते हैं? विद्यार्थियों के इस प्रश्न से मुझे आश्चर्य होता है। यह क्षेत्र इतना विस्तृत और इतना आपके निकट है कि आपको पूछने की आवश्यकता नहीं कि आप क्या करें और क्या नहीं? यह कोई राजनैतिक प्रश्न नहीं है। आगे यह राजनैतिक प्रश्न हो सकता है लेकिन इस समय मेरा आपके लिये राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। मेरा जीवन धर्म से बन्धा हुआ है। मैंने कहा है कि मेरी राजनीति भी मेरे धर्म से निकली है। जब कभी मैंने राजनीति में कदम उठाने की कोशिश की है तो अपने जीवन के सिद्धान्तों से अपनी नजर नहीं हटाई। चूंकि यह मनुष्यता का आन्दोलन है इसलिये विद्यार्थियों को चाहिये यदि वे अपना पूरा समय हरिजनों की सेवा में नहीं लगा सकते तो कम से कम अपने अवकाश का समय अवश्य लगावें। आपने यह थैली भेंट करके हिन्दुस्थान के विद्यार्थियों की ऐसी सभाओं का मुकाबिला किया है जिनमें मैंने अपने अनेक भ्रमणों में भाषण किया है। परन्तु मैं आप से कुछ और अधिक की आशा करता हूं। मेरा अनुमान है कि यदि अपने अवकाश का समय देने वाले मेरे सहायक अधिक हो जायें तो बहुत काम हो सकता है। यह कार्य किराये के टट्टुओं द्वारा नहीं हो सकता। किराये के टट्टू हरिजनों के मुहल्लों में नहीं जा सकते, उनकी सड़कें नहीं साफ कर सकते और न उनके पास में जाकर बच्चों के हाथ मुँह धो सकते हैं।

हरिजन में मैंने बतलाया है कि विद्यार्थी क्या कर सकते हैं।

एक हरिजन शिक्षक ने बताया है कि हमारे सामने कितना बड़ा काम है। जंगली बच्चे भी हरिजन बच्चों से बेहतर हैं। जंगली बच्चे इतने पतित नहीं हैं जितने कि हरिजन बच्चे। वे हरिजन बच्चों की तरह गंदी बस्ती में नहीं रहते। यह कार्य किराये के आदमियों द्वारा नहीं किया जा सकता। कितने ही भी धन से मैं यह कार्य नहीं कर सकता। यह आपका अधिकार होना चाहिए कि स्कूल और कालेज में प्राप्त शिक्षा की यह एक अग्नि परीक्षा है। आपकी योग्यता शुद्ध अंग्रेजी में वक्तृता देने से न समझी जायगी। आपकी योग्यता का अनुभव गरीबों की सेवा से किया जायगा न कि सरकारी नौकरी से चाहे वह ६० रुपये की हो या ६०० रुपये की। मैं चाहता हूँ कि आप इस कार्य को उसी लगन से करें जिसका उल्लेख मैंने किया है। मुझे कोई ऐसा विद्यार्थी नहीं मिला जिसने यह कहा है कि वह प्रतिदिन एक घन्टा नहीं दे सकता है। यदि आप अपने दिन प्रति दिन की डायरी लिखें तो आप देखेंगे कि आपने अपने वर्ष के ३६५ दिन में कितने ही बहुमूल्य घन्टे व्यर्थ बिताये हैं। यदि आप अपनी शिक्षा को अच्छे कार्यों की ओर लगाना चाहते हैं तो आप अपने ध्यान को इस कार्य की ओर तब तक लगावें जब तक कि यह आन्दोलन पूरा न हो जाय।

विद्यार्थी वर्धा के चारों ओर ५ मील के घेरे में हरिजनों की सेवा कर रहे हैं। वे शान्तपूर्वक अच्छे प्रकार से काम कर रहे हैं। इसलिए आपको उनके बारे में कुछ नहीं मालूम है। उनका

कार्य देखने के लिये मैं आपको निमंत्रित कर रहा हूं। यह कठिन होते हुये भी आनन्द दायक है। आपको उसमें क्रिकेट अथवा टेनिस में अधिक आनन्द मिलेगा। मैंने आप से वार २ कहा है कि यदि मुझे वास्तविक योग्य और ईमानदार कार्यकर्ता मिल जाय तो रुपया आ जायगा। १८ वर्ष की उमर से मैंने भीख मांगना सीखा है। मैंने देखा है कि यदि हमें अच्छे कार्यकर्ता मिल जायँ तो रुपये आसानी से मिल सकते हैं। केवल रुपए से मुझे संतोष न होगा। मैं आप से प्रार्थना करूँगा कि आप हरिजन सेवा के लिये अपने कुछ खाली घन्टे देने का व्रत लें। श्रीमान् सभापति जी ने जैसा कहा है कि मैं एक स्वप्न देखने वाला हूं। सचमुच मैं एक व्यवहारिक स्वप्नदर्शी हूं। मेरे सपने शून्य की तरह नास्तिक नहीं हैं। मैं अपने सपनों को यथासम्भव में वदलना चाहता हूँ। इसलिये मैं आपकी इन भेंटों को तुरन्त ही नीलाम करूँगा।

छुट्टियों में विद्यार्थी क्या करें?

"इस कालेज के छात्रालय में हरिजन-सेवा का अभी तक केवल एक काम हुआ है। यहां पर विद्यार्थियों की बची हुई जूठन भंगियों को खाने के लिये मिला करती थी, किन्तु ५ मार्च से प्रत्येक को रोटी दाल, इत्यादि दोनों वाट दी जाती है। भंगी इसके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं, कि विद्यार्थियों की जूठन में घी होता था,

जिससे अब हम वंचित रह जाते हैं। विद्यार्थियों के लिये यह तो कठिन है, कि वे उन्हें घी भी दिया करें। वे लोग कहते हैं कि हमारे बाप दादा पहले से ही जूठन खाते आये हैं, इसलिये हमारा भी जूठन खाना कर्तव्य है। हमें तो जूठन ही खाने में आनन्द प्राप्त होता है। इनके अलावा दावतों में और विवाहों में हमको इतनी ज्यादा जूठन मिलती है जिससे हम कम से कम पन्द्रह दिन तक खाने का काम चला सकते हैं, हमें जूठन के बराबर भोजन तो वे लोग दे नहीं सकते, वहां पर तो हम लोग जूठन अवश्य ही लिया करेंगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जूठन न मिलने पर हमें भारी हानि होगी और यदि छात्रालय में जूठन न मिला करेगी तो अन्य किसी स्थान पर खा लिया करेंगे। हम अपनी आदत कैसे छोड़ सकते हैं।"

हमारे छात्रालय में इसका प्रबन्ध इस प्रकार हो गया है। जूठन के लिए एक बर्तन अलग रखा हुआ है। वह जूठन जानवरों को दे दी जाती है। इससे हरिजनों को विद्यार्थियों की जूठन खाने का कोई अवसर नहीं मिलता, जिससे वे एक प्रकार का उपद्रव कर रहे हैं, अतः आपसे प्रार्थना है कि उन्हें समझाने के लिए आप ऐसी बातें लिखें जिससे उन्हें सन्तोष हो जाय।

परीक्षा का समय निकट होने के कारण हम विद्यार्थियों ने हरिजनोद्धार के लिये बहुत थोड़ा कार्य किया है। आपके कथनानुसार एक रात्रि पाठशाला स्थापित करने का भी प्रबन्ध हो रहा है आशा है, इसमें हमें सफलता मिलेगी। हम आपको आशा दिलाते

हैं कि परीक्षा के उपरान्त हरिजन सेवा के लिये हम अवश्य प्रयत्न करेंगे। आप उपदेश दीजिये कि हम क्या करें, आपके उपदेश के हम बहुत इच्छुक हैं।"

यह पत्र मुझे देहरादून से मिला है। भंगी जूठन मांगने का हठ कर रहे हैं, तो इससे निराश होने का कोई कारण नहीं। भंगी भाई-बहिनों के पतन के कारण हमीं हैं, जैसा हमने बोया वैसा काट रहे हैं। विद्यार्थी जिस तरह का काम कर रहे हैं उसमें भी दोष है। भंगी अगर हमारे भाई बहिन अर्थात जैसे हम हैं वैसे ही अगर वे हैं तो यह ठीक नहीं, कि उन्हें तो सूखी रोटी और दाल दें और हम दूध, घी और मिठाइयां उड़ावें, ऐसा नहीं होना चाहिये। जो भी भोजन विद्यार्थियों के लिये तैयार हुआ करे, उसी में से प्रथम भाग भंगी के लिये रख दिया जाय। फिर भंगी को शिक़ायत करने का कोई मौक़ा ही न रह जायेगा।

विद्यार्थी कहते हैं—"ऐसा करने से ख़र्च बढ़ जायगा और हम उसे बरदाश्त न कर सकेंगे।" मैं पूछता हूं जूठन बचती क्यों है? थाली में जूठन छोड़ने में सभ्यता है, शायद ऐसा कुछ ख्याल जम गया है, उस ख्याल को दूर करना होगा। थाली में उतना ही भोजन परोसवाया जाय जितना आसानी से खा सकें, इसी में सभ्यता है। थाली में जूठन छोड़ देना तो असभ्यता है।

और भी एक बात है। भारतीय विद्यार्थियों का मैं कुछ परिचय रखता हूँ। वे प्रायः शौक़ीनी और चटोरपने में अधिक पैसे ख़र्च कर डालते हैं। भंगी के भाग का जितना रखा जायगा, उसके

मूल्य से भी अधिक पैसे विद्यार्थीगण सादगी ग्रहण करने से बचा लेंगे।

विद्यार्थी जीवन त्याग और संयम सीखने के लिये है।" इस महान शत्रु को छोड़कर जो विद्यार्थी भोग विलास में पड़ जाते हैं, वे अपना जीवन बरबाद कर देते हैं और अपने को तथा समाज को बहुत हानि पहुँचाते हैं। इस दरिद्र देश में तो संयम जीवन और भी अधिक आवश्यक है। यदि समस्त विद्यार्थी इस शक्ति को हृदयंगम करलें तो भंगियों का भाग उदारता पूर्वक निकाल देने पर भी वे अपने लिए अधिक पैसे बचा लेंगे।

इस विषय में यह कहना भी आवश्यक है, कि भंगी भाइयों के लिये शुद्ध भोजन रखकर ही विद्यार्थीगण अपने को कृतकृत्य न मान लें। उनसे प्रेम करें, उन्हें अपनावें, उनके जीवन में अपने को ओत प्रोत कर दें। पाखाना इत्यादि की सफाई का उत्तम प्रबन्ध और उनकी बुरी आदतें छुड़ाने का भरसक प्रयत्न करें।

दूसरा प्रश्न यह है कि विद्यार्थी गर्मियों की छुटियों में क्या-क्या हरिजन सेवायें करें। करने के लिये तो बहुत काम हैं, पर नमूने के तौर पर मैं यहां कुछ लिखता हूं—

१—रात्रि पाठशालायें और दिवस पाठशालायें चला कर हरिजन बालकों को पढ़ाना।

२—हरिजनों की बस्तियों में जाकर उनकी सफाई करना, हरिजन चाहें तो इसमें उनकी भी मदद लेना।

३—हरिजन बालकों को देहात के इर्दगिर्द ले जाना और उन्हें

प्रकृति निरीक्षण कराना तथा स्थानीय इतिहास और भूगोल का साधारण ज्ञान कराना और उनके साथ खेलना।

४—रामायण और महाभारत की सरल कथायें उन्हें सुनाना।

५—उन्हें सरल भजनों का अभ्यास कराना।

६—हरिजन बालकों के शरीर का मैल साफ़ करना, उन्हें स्नान कराना और स्वच्छता से रहने का सबक सिखाना।

७—हरिजनों को कहां क्या कष्ट है और उनका निवारण कैसे हो सकता है, इसका विवरण-पत्र तैयार करना।

८—बीमार हरिजनों को दवा-दारू देना।

करने के लिये और भी ऐसे बहुत से काम हैं, जिन्हें विचार-शील विद्यार्थी स्वयं सोच सकते हैं।

जैसे हरिजनों में काम करने की आवश्यकता है, वैसे ही सवर्णों में भी है। उनका अज्ञान दूर करना, उनमें अस्पृश्यता-विषयक साहित्य का प्रचार करना इत्यादि काम वे छुट्टियों में कर सकते हैं। हरिजनों के लिए कहाँ कितने कुएँ, शालाएँ, तालाब, मन्दिर आदि खुले हैं और कहाँ नहीं इसका भी पूरा ब्यौरा तैयार करना।

यह सब काम एक पद्धति से संगठित रूप में और नियम पूर्वक किया जाय तो छुट्टी समाप्त होने तक हरिजनों की भारी सेवा हो सकती है। काम छोटा या बड़ा, नियम पालन तो सभी में आवश्यक है। आज प्रारम्भ किया, कल छोड़ दिया, तो इससे कोई लाभ होने का नहीं। निश्चय पूर्वक नियमानुसार चाहे थोड़ा

ही काम क्यों न किया जाय, उससे महान परिणाम पैदा हो सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने कार्य का हिसाब रखे और अन्त में सारे कार्य की रिपोर्ट तैयार करके प्रान्तीय हरिजन-सेवक संघ को भेज दे। दूसरे विद्यार्थी कुछ करें या न करें, पर उन विद्यार्थियों ने मुझे लिखा है, उनसे तो मैं अवश्य ही ऐसी आशा रखूंगा।

नवयुवकों के लिये लज्जा की बात

समाचार पत्र के एक सम्वाददाता ने मुझे हाल ही में यह सूचित किया है कि हैदराबाद (सिंध) में दहेज की मांग और भी अधिक बढ़ती जाती है। इम्पीरियल टेलीग्राफ इंजिनियरिंग सर्विस के एक कर्मचारी ने २००००) की दहेज की रकम तय करके विवाह के अवसर पर नक़द रुपया लिया है, इसके अतिरिक्त और भी ऐसी ही शर्त शादी या शादी के अन्य-अन्य अवसर पर लेने का किया है, कोई भी विवाह सम्बन्ध में अगर दहेज की शर्त रखता है तो अपनी शिक्षा तथा देश को अप्रतिष्ठित करता है। उस प्रान्त में युवकों का आन्दोलन हो रहा है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि ऐसे आन्दोलन इस सम्बन्ध में होते तो अच्छा होता। ऐसी सभायें अपने वास्तविक रूप में रह कर कुछ लाभ के बदले स्वयं हानिप्रद सिद्ध होती है। सार्वजनिक आन्दोलन के ये कभी-कभी सहायक होते हैं, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि युवकों को

देश के ऐसे आन्दोलन में पर्याप्त अधिकार है। ऐसे कामों में यदि काफ़ी सावधानी न रखी जाय तो अधिक सम्भव है कि हमारे युवकों के अन्दर संतोष का भाव न पैदा हो। दहेज की प्रथा तोड़ने के लिये जनता का एक मुख्य उद्देश्य होना चाहिये और ऐसे युवक जो अपने हाथों को ऐसे दहेज से अपवित्र करते हों, उन्हें अपने समुदाय से निकाल देना चाहिये। कन्याओं के मा-बाप को अंगरेजी उपाधियों से दूर रहना चाहिये और सच्चे युवक और युवतियों को बनाने के लिये थोड़ा अपने समाज के प्रतिबन्धों से भी बाहर जाना चाहिये।

विद्यार्थियों के लिए लज्जा जनक कार्य

"मुझे सन्देह है कि आज कल की लड़कियां आधे दर्जन रोमियों के लिए जूलियट बनना चाहती हैं। वे चाहती हैं—उत्साहपूर्ण कार्य......वह हवा, पानी धूप से बचने के लिये कपड़े नहीं पहनतीं बल्कि दूसरे लोगों को आकर्षित करने के लिए।"—

लगभग दो महीने से मेरी फाइल में पंजाब की एक कालेज में पढ़ने वाली लड़की का अत्यन्त हृदय विदारक पत्र पड़ा है। उस लड़की के प्रश्न का उत्तर न देने का कारण समय का अभाव था। यद्यपि उत्तर मुझे मालूम था पर मैं इस काम से अपने को बचाता रहा। इसी बीच में मुझे एक और बहन का पत्र मिला

जिन्होंने जीवन में बहुत अधिक अनुभव प्राप्त किया है। और मैंने अनुभव किया कि कालेज में पढ़ने वाली लड़कियों की नितान्त आवश्यक कठिनाई पर अपने विचार प्रकट करने के अपने कर्तव्य को मैं और अधिक समय तक नहीं टाल सकता। यह पत्र शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा गया है। उस बहिन की गम्भीर भावना का पूरा चित्र यह पत्र देता है इसलिये मैं इसके साथ पूर्ण न्याय करूँगा उसका एक अंश इस प्रकार है—

अपनी इच्छा के विरुद्ध भी लड़कियों और व्यस्क स्त्रियों के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब उन्हें बाहर निकलना पड़ता है चाहे वह एक जगह से दूसरी जगह जा रही हो चाहे एक शहर से दूसरे शहर को। उन्हें इस प्रकार अकेले पाकर दुर्मति व्यक्ति परेशान करते हैं। उन्हें जाते देख वे लोग अनुचित और कभी कभी अश्लील शब्दों का प्रयोग करते हैं। और यदि उन्हें कोई भय न रहा तो वे और भी आगे कदम बढ़ाने से नहीं हिचकते। मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे अवसरों पर अहिंसा क्या कर सकती है। हिंसा का उपयोग तो ऐसे अवसरों पर हो सकता है यदि लड़की या स्त्री में पर्याप्त साहस है तो उसके पास जो कुछ भी साधन हैं उनका प्रयोग करके वह उस दुष्ट को एक पाठ पढ़ा देगी। कम से कम वह चीख पुकार मचा सकती है जिससे आस पास के लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो जायगा और उस दुष्ट पर कोड़े पड़ जायेंगे। लेकिन मैं जानती हूं कि इससे विपत्ति केवल टल जायगी यह उसकी निर्मूल

औषधि नहीं है। दुर्व्यवहार करने वाले लोगों से भक्ति परिचय दें तो भी बुद्धि, प्रेम प्रदर्शन पर अपमान की बात जरूर सुनेंगे, लेकिन बिना किसी पुरुष के अकेले जाती हुई एक लड़की या स्त्री को देख कर साइकिल पर जाने वाले लोगों के बारे में क्या किया जा सकता है जो उनके प्रति अपशब्दों का इस्तेमाल करते हैं। उनके साथ समझदारी की बात करने का आपके पास अवसर नहीं। दुबारा उससे मिलने की कोई सम्भावना नहीं, आप उसे पहचान भी नहीं सकते। उसका पता भी आपको ज्ञात नहीं। ऐसे अवसरों पर बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे? यहां पर मैं पिछली रात (२६ अक्तूबर १९३८) का अपना अनुभव लिख रही हूं। लगभग साढ़े सात बजे शाम को मैं अपनी एक सहेली के साथ एक जरूरी काम से जा रही थी। उस समय कोई पुरुष साथी मिलना असम्भव था और वह काम टाला नहीं जा सकता था। रास्ते में हमारे पास से एक सिक्ख नवयुवक बाइसिकल पर निकला और अस्फुट स्वर से तब तक कुछ कहता रहा जब तक हम सुन सकती थीं। हम जानते थे उसका लक्ष्य हमारी ओर है। हम क्षुब्ध हो उठीं। सड़क पर चलने फिरने वाले अधिक नहीं थे। हम चन्द कदम ही बढ़े थे कि वह साइकिल वाला फिर लौट पड़ा। वह थोड़े ही दूर पर था कि हम लोगों ने उसे पहचान लिया। वह हम लोगों की ओर बाइसिकल बढ़ाये आ रहा था। भगवान जाने वह हमारे पास उतरना चाहता या आगे बढ़ जाना चाहता था। हमने अनुमान किया कि हम खतरे में हैं। हमें अपनी शारीरिक शक्ति पर विश्वास नहीं था। मैं स्वयं एक साधा-

रण लड़की की अपेक्षा निर्बल हूं। लेकिन मेरे हाथों में एक मोटी सी किताब थी। सहसा जाने कैसे मुझ में साहस आ गया। किताब खींच कर मैंने साइकिल वाले पर मारी और चिल्ला उठी, फिर भी तू और आवाजकशी करेगा? बड़ी कठिनाई से वह बाइसिकल का बैलेंस बनाये रख सका। गति तेज की और हमारे पास से भाग गया। यदि मैंने उसकी बाइसिकल पर किताब न फेंकी होती तो सारे रास्ते अपने अपशब्दों से हमें परेशान करता रहता। यह एक साधारण शायद बिलकुल महत्वहीन घटना थी। लेकिन मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आकर हम अभागी लड़कियों की कठिनाइयों को सुनते। सब से पहिले आप यह बतलाइये कि इस प्रकार की परिस्थितियों में क्या कोई लड़की अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग कर सकती है और अपनी रक्षा कर सकती है। दूसरे इस प्रकार की बुरी आदतों वाले नवयुवकों का क्या इलाज है जो स्त्रियों का अपमान करते हैं। आप शायद यह न कहेंगे कि हमें तब तक सहते रहना चाहिये जब तक कि नई पीढ़ी न आ जाय जिसे बचपन से ही स्त्रियों के प्रति शिष्ट होने की शिक्षा की गई हो। इस सामाजिक बुराई को दूर करने की या तो सरकार की इच्छा ही नहीं है पर वह उसे दूर कर ही नहीं सकती। बड़े बड़े नेताओं के पास ऐसी समस्याओं के लिये समय नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने इस तरह के दुर्व्यवहारी को उचित दण्ड दिया है तो कह उठते हैं कि बहुत ठीक। इसी तरह से सभी लड़कियों को करना चाहिये। कभी कभी कोई नेता विद्यार्थियों के इस दुष्कर्म के विरुद्ध प्रभावशाली भाषण देते हैं।

लेकिन इस गम्भीर समस्या को हल करने के लिये निरन्तर प्रयत्न कोई नहीं करता। आपको यह जान कर दुख और आश्चर्य होगा कि दीवाली या ऐसे त्यौहारों के अवसर पर पत्रों में सावधान करने के लिये विज्ञापन निकलते हैं कि वे रोशनी देखने के लिये भी अपने घर से बाहर न निकलें। केवल इसी से आप जान सकते हैं कि दुनिया के इस कोने से हम किस दशा को पहुँच गई हैं ऐसी विज्ञप्तियों के लिखने और पढ़ने वालों में शायद लज्जा की भावना ही शेष नहीं होती कि इस तरह के विज्ञापन प्रकाशित हों।

एक दूसरी पंजाबी लड़की को मैंने यह पत्र पढ़ने को दिया। अपने कालेज जीवन के अनुभवों को बताकर उसने पत्र में कही गई बातों का समर्थन किया। उसने कहा कि पत्र में जो बात कही गई है उसका सामना अधिकांश लड़कियों को करना पड़ता है।

एक दूसरी अनुभवी महिला के पत्र में उसकी एक सहेली के लखनऊ के अनुभव का वर्णन किया गया है। सिनेमा हाल में पीछे की पंक्ति में बैठे हुये लड़के उनके साथ अपमान का व्यवहार करते हैं। जिस शब्दावली का वे प्रयोग करते हैं उसे मैं केवल अश्लील कह सकता हूँ। मेरी पत्र प्रेषिता ने लिखा है कि कभी-कभी वे हाथा-पाई भी कर देते हैं जिसका जिक्र मैं यहां नहीं कर सकता। यदि तत्कालीन व्यक्तिगत स्थिति से छुटकारा पाना हो तो उस लड़की द्वारा बताई गई तरकीब अर्थात् साइकिल वाले को किताब खींच कर मारना ठीक है। यह तो सदियों पुराना उपाय

है। मैंने कहा है कि यदि अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहे तो उसका प्रभाव पूर्ण इस्तेमाल करने के लिये शारीरिक कमजोरी बाधक नहीं चाहे विरोधी शरीर में बली क्यों न हो। हम जानते हैं कि इस जमाने में शक्ति का प्रयोग करने के लिये ऐसे अनेक तरीके आविष्कृत हो चुके हैं कि थोड़ी समझ रखने वाली एक लड़की भी मृत्यु और नाश का खेल कर सकती है। आज कल यह प्रथा हो गई है कि लड़कियों को ऐसी स्थितियों से बचने के लिये शिक्षा दी जाय। परन्तु यद्यपि उस लड़की ने उस समय जो कुछ उसके पास था उसका प्रभावशाली उपयोग किया अर्थात् हाथ की किताब आत्म रक्षा का अस्त्र बनाया लेकिन उसे यह भी ज्ञात था कि बढ़ती हुई इस बुराई की यह औषधि नहीं है। असभ्य वचनों पर परेशान होने की जरूरत नहीं। लेकिन उपेक्षा भी न करनी चाहिये। ऐसी घटनायें अखबारों में छपनी चाहिये और ऐसे व्यक्तियों का यदि पता लग जाय तो वे भी प्रकाशित किये जाने चाहियें। इस कुप्रथा को प्रकट करने में मिथ्या लज्जा का अनुभव न करना चाहिये। सार्वजनिक दुर्व्यवहारों की ताड़ना के लिये जन सम्मति से अच्छा दूसरा रास्ता नहीं। जैसा कि पत्र-प्रेषिता ने कहा है इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी घटनाओं के प्रति जनता की सहानुभूति नहीं। लेकिन इसके लिये केवल जनता दोषी नहीं ठहराई जा सकती। उनके सामने असभ्यता के उदाहरण रखे जाने चाहिये। यदि चोरी की घटनायें भी प्रकाशित की जांय तो उसे भी दण्डित नहीं किया जा सकता। इसी तरह यदि ये दुर्व्यवहार छिपाये जायेंगे तो इन्हें भी दण्डित करना असम्भव

होगा। अपराध और बुराइयों को बढ़ने के लिए अन्धकार जरूरी है। जब उन पर प्रकाश पड़ता है तब वे विलीन हो जाते हैं।

लेकिन मुझे भय है कि आधुनिक लड़की आधे दर्जन रोमियों की जूलियट होना चाहती हैं। उसे साहसी कार्य प्रिय हैं। मेरी पत्र प्रेपिता असाधारण किस्म की प्रतीत होती हैं। आधुनिक लड़की अपने को हवा, पानी और धूप से बचाने के लिये कपड़ों से नहीं सजाती बल्कि लोगों को आकर्षित करने के लिये, अपने को रंग कर और देखने में असाधारण बना कर वह प्रकृति में भी सुधार कर देती है। अहिंसात्मक तरीका ऐसी लड़कियों के लिये नहीं है। मैंने बहुधा यह कहा है कि हममें अहिंसा की भावना के विकास के लिये कुछ निश्चित नियम जरूरी हैं। यह एक सतत प्रयत्न है। यह विचार करने और जीवन व्यतीत करने के तरीके में क्रान्ति पैदा करता है। यदि मेरी पत्र प्रेपिता और उन्हीं के विचार की अन्य लड़कियां एक निश्चित तरीके से अपने जीवन में क्रान्ति कर देंगी तो वे जल्दी ही देखेंगी कि जो भी युवक उनके सम्पर्क में आते हैं वे उनका सम्मान करेंगे और उनकी उपस्थिति में अच्छा व्यवहार करेंगे। लेकिन यदि संयोग-वश उन्हें ऐसे अवसर का सामना करना पड़े जबकि उनका सतीत्व खतरे में हो तो उस दानवी व्यक्ति के सामने झुकने की अपेक्षा मर जाने का साहस उन्हें पैदा करना चाहिये। मुझ से कहा गया है कि एक लड़की जिसके हाथ पैर बांध दिये गये हों वह मरने के लिये भी हाथ पैर नहीं डुला सकती जैसा कि मैं समझता हूँ।

लेकिन मैं कहूँगा यदि लड़की में विरोध करने की प्रबल इच्छा है तो उसे असमर्थ बनाने के लिये काम में लाये गये बन्धन टूट जायेंगे। दृढ़ निश्चय उसे मरने की शक्ति देगा।

लेकिन यह वीरता उन्हीं स्त्रियों में सम्भव है जिन्होंने अपने को इसके लिए तैयार किया है जिन्हें अहिंसा में पूर्ण विश्वास नहीं है वे आत्म रक्षा के साधारण साधनों को सीखेंगे और युवकों के बुरे व्यवहार से अपनी रक्षा करेंगे।

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि नवयुवकों में प्रारम्भिक शिष्टाचार की इतनी कमी क्यों है कि भली लड़कियां सदैव उनसे अपमानित होने के लिये भयभीत हैं। खेद के साथ मुझे कहना पड़ता है कि अधिकांश नव युवकों में वीरता की भावना नहीं रह गई। लेकिन उन्हें अपनी प्रसिद्धि पर ईर्षा करनी चाहिये और अपने साथियों के अनुचित व्यवहार को रोकना चाहिये उन्हें प्रत्येक स्त्री के सम्मान की रक्षा अपनी मां बहिनों के सम्मान की तरह करनी चाहिये यदि वे शिष्ट आचरण नहीं सीखते तो उनकी सारी शिक्षा बेकार है।

आचार्यों और पाठशाला के अध्यापकों का कर्तव्य अपने विद्यार्थियों को पाठ्य विषयों के लिये तैयार करना उतना नहीं है जितना कि उनमें भलमनसाहत सुरक्षित रखना।

सिन्ध का अभिशाप

माता पिता को अपनी पुत्रियों को इस तरह की शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे इस योग्य बनें कि ऐसे युवक से शादी करना अस्वीकार कर सकें, जो शादी के बदले दहेज चाहते हों। इतना ही नहीं बल्कि वे आजन्म अविवाहित रह सकें, इसके अपेक्षा कि वे ऐसी विनाशकारी शर्तों के साथ शादी करें।

सिन्ध प्रान्त के अमिल लोग शायद वहां की दूसरी जातियों की अपेक्षा अधिक सभ्य समझे जाते हैं। लेकिन इसके बावजूद भी उनके अन्दर कुछ ऐसी बुराइयां हैं जिनका कि वे एकाधिकार रखते हैं। इनमें देती लेती की प्रथा कम विनाशकारी नहीं है। सिन्ध की पहली ही यात्रा में मेरा ध्यान इस बुराई की ओर आकर्षित हुआ, और मैं आमिल लोगों से इस विषय पर बात करने के लिये आमंत्रित किया गया, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रथा को मिटाने के लिये कुछ कार्यवाही की गई, लेकिन फिर भी कोई ऐसे समाज या संघ की स्थापना नहीं की गई, जो इस प्रथा को समूल नष्ट कर सके। आमिल लोगों की एक मिश्रित छोटी समुदाय है। इस प्रथा की बुराई को सभी स्वीकार करते हैं, इन्हीं में मुझे एक भी आमिल नहीं मिला जो कि इस जंगली प्रथा को मिटाने की चेष्टा करे, इस प्रथा ने जड़ जमाली है, क्योंकि यह शिक्षित आमिल नवयुवकों में फैली है। उनकी रहन सहन का व्यय इतना अधिक है कि वे उसे सुगमता से नहीं पूरा कर सकते हैं और इसलिये अपनी विचार शक्ति को सर्वथा खोदिया है, फलतः

विवाह उनके लिये एक बाजारू सौदा होगया है, और यह बुरी आदत उनकी जातीय उन्नति में बहुत बाधक हो रही है, जिसके अभाव में वे अपने मुल्क और विद्या को अधिक उन्नतिशील बना सकते।

पढ़े लिखे आमिल युवक केवल इसी कारण युवतियों के मा बाप से पैसा चूसने में समर्थ होते हैं, क्योंकि जनता इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाती। इसका आन्दोलन स्कूल और कालेजों तथा लड़कियों के मां बाप द्वारा होना चाहिये। विवाह में वर और कन्या की सम्मति और प्रेम ही सबसे आवश्यक है।

एक युवक की कठिनाई

नवयुवकों के लिये 'हरिजन' में मैंने जो लेख लिखा था, उस पर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मन में उठे एक प्रश्न का उत्तर चाहता है। यों गुमनाम पत्रों पर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है, लेकिन जब कोई सयुक्त बात पूछी जाय, जैसी कि इसमें पूछी गई है, तो कभी-कभी मैं इस नियम को तोड़ भी देता हूँ,

"आपके लेखों को पढ़कर मुझे सन्देह होता है कि आप युवकों के स्वभाव को कहां तक समझते हैं। जो बात आपके लिये सम्भव हो गई है, वह सब युवकों के लिये सम्भव नहीं है। मेरा विवाह हो चुका है-इतने पर भी स्वयं तो संयम कर सकता हूं, लेकिन

मेरी पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। बच्चे पैदा हों, यह तो वह नहीं चाहती, लेकिन विषयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालत में, मैं क्या करूँ? क्या यह मेरा फर्ज नहीं है कि मैं उसकी भोगेच्छा को तृप्त करूँ? दूसरे जरिये से वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझ में नहीं है। फिर अखबारों में मैं जो पढ़ता रहता हूँ, उससे मालूम पड़ता है कि विवाह सम्बन्ध कराने और नवदम्पत्तियों को आशीर्वाद देने में भी आपको कोई आपत्ति नहीं है। यह तो आप स्वयं जानते होंगे, या आपको जानना चाहिये कि वे सब उस ऊँचे उद्देश्य से ही नहीं होते, जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र लेखक का कहना ठीक है। विवाह के लिए उम्र आर्थिक स्थिति आदि की एक कसौटी मैंने बना रखी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते हैं, मैं उनकी मंगल-कामना करता हूं। इतने विवाहों में मैं शुभ कामना करता हूँ, इससे सम्भवतः यही प्रगट होता है कि देश के युवकों को इस हद तक मैं जानता हूं कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहें तो मैं वैसा कर सकता हूँ।

इस भाई का मामला मानों इस तरह का एक नमूना है, जिसके कारण यह सहानुभूति का पात्र है। लेकिन सम्भोग का एक मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिये एक प्रकार से नई खोज है। इस नियम को जानता तो मैं पहले से था, लेकिन जितना चाहिये उनका महत्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था, अभी हाल तक मैं इसे वाली पवित्र इच्छा मात्र समझता था।

लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूं कि यदि इसके महत्व को पूरी तरह मान लिया जाय तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाज में इस नियम को उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा। क्योंकि मेरे लिये तो यह एक जाज्वल्यमान विधान है, जब हम इसका भंग करते हैं तो उसके दण्ड स्वरूप बहुत कुछ भुगतना पड़ता है। पत्र प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्व को समझ जांय जिसका कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता, और यदि उसे अपने में विश्वास एवं अपनी पत्नी के लिये प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नी को भी अपने विचारों की बना लेगा। उसका यह कहना कि मैं स्वयं संयम कर सकता हूँ, क्या सच है? क्या उसने अपनी पाशविक वासना को जन-सेवा जैसी किसी ऊंची भावना में परिणित कर लिया है? क्या स्वभावतः वह ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे उसकी पत्नी की विषय-भावना को प्रोत्साहन मिले? उसे जानना चाहिये कि हिन्दूशास्त्रानुसार आठ तरह के सहवास माने गये हैं, जिनमें संकेतों द्वारा विषय प्रकृति को प्रेरित करना भी शामिल है। क्या वह इससे मुक्त है? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिल से यह चाहता हो कि उसकी पत्नी में भी विषय वासना न रहे, तो वह उसे शुद्धतम प्रेम से सराबोर करे, उसे यह नियम समझावे। सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करने से जो शारीरिक हानि होती है, वह उसे समझावे, वीर्य-रक्षा का महत्व बतलावे। अलावा इसके उसे चाहिये कि अपनी पत्नी को अच्छे, कामों की ओर प्रवृत्त करके उनमें उसे लगाये रखे और उसकी

विषय वृत्ति को शान्त करने के लिए उसके भोजन, व्यायाम आदि को नियमित करने का यत्न करे। और इस सबसे बढ़ कर यदि वह धर्म प्रवृत्ति का व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वास को वह अपनी सहचरी पत्नी में भी पैदा करने की कोशिश करे। क्योंकि मुझे यह बात कहनी ही होगी कि, ब्रह्मचर्य व्रत का तब तक पालन नहीं हो सकता, जब तक कि ईश्वर में जोकि जीता जागता सत्य है अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन सा बन गया है कि जीवन में ईश्वर का कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वर में अडिग आस्था रखने की आवश्यकता के बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुँचने पर जोर दिया जाता है। मैं अपनी असमर्थता कबूल करता हूं कि जो अपने से ऊँची किसी दैवी शक्ति में विश्वास नहीं रखते, या उसकी जरूरत नहीं समझते, उन्हें मैं यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा अनुभव मुझे इसी बात पर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्व का संचालन होता है, उस शाश्वत नियम में अचल विश्वास रखे बिना पूर्णतम जीवन संभव नहीं है। इस विश्वास से विहीन व्यक्ति तो समुद्र से अलग आ पड़ने वाली उस बूंद के समान है, जो नष्ट होकर ही रहती है; परन्तु जो बूंद समुद्र में रहती है, वह उसकी गौरव वृद्धि में योग देती है और हमें प्राणप्रद वायु पहुँचाने का सम्मान उसे प्राप्त होता है।

दहेज की कुप्रथा

कुछ महीने हुए कि 'स्टेट्समैन' ने दहेज प्रथा पर चर्चा छेड़ी थी। यह प्रथा करीब-करीब हिन्दुस्तान भर में अनेक जातियों में प्रचलित है। 'स्टेट्समैन' के सम्पादक ने भी इस विषय पर अपने विचार प्रगट किये थे। 'यंग इन्डिया' में मैं अक्सर इस प्रथा पर लिखा करता था। उन दिनों इस रिवाज के बारे में जो जो निर्दयता पूर्ण बातें मुझे मालूम हुआ करती थीं, उनके स्मरण 'स्टेट्समैन' के इन लेखों ने फिर से ताजा कर दिये हैं। सिन्ध में जिस प्रथा को 'देती लेती' कहते हैं, मैंने उसी को लक्ष में रख कर 'यंग-इन्डिया' में लेख लिखे थे। ऐसे काफी सुशिक्षित सिन्धी थे, जो लड़कियों की शादी के लिये फिक्रमन्द माता-पिताओं से बड़ी-बड़ी रकमें ऐंठते थे। पर 'स्टेट्समैन' ने तो इस प्रथा के खिलाफ एक आम लड़ाई छेड़ दी है। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक हृदयहीन रिवाज है। मगर जहाँ तक मैं जानता हूँ, जनसाधारण से जो करोड़ों की संख्या में हैं, इसका कोई सम्बन्ध नहीं। मध्य वर्ग के लोगों में ही यह रिवाज पाया जाता है। जो भारत के जन-समुद्रमें बिन्दु मात्र हैं। बुरे २ रिवाजों के बारे में जब हम बात करते हैं, तब साधारणतः मध्य वर्ग के लोग ही हमारे ध्यान में होते हैं। गांवों के रहने वाले करोड़ों लोगों के रिवाजों और तकलीफों के बारे में हम अभी जानते ही क्या हैं।

फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि चूंकि दहेज की कुप्रथा हिन्दुस्तान में बहुत अल्पसंख्यक लोगों तक ही सीमित है, इसलिए

हम उस पर कोई ध्यान न दें। प्रथा तो यह नष्ट होनी ही चाहिये। दहेज प्रथा का जात-पाँत के साथ बहुत नजदीकी संबन्ध है, जब तक किसी खास जाति के कुछ सा नवयुवक या नवयुवतियों तक वर कन्या की पसंदगी मर्य्यादित है, तब तक यह कुप्रथा जारी ही रहेगी, भले हो उसके खिलाफ दुनियाँ भर की बातें कही जांय इस बुराई को अगर जड़ मूल से उखाड़ कर फेंक देना है, तो लड़कियों या लड़कों या उनके माता पिताओं को ये जात-पांत बन्धन तोड़ने ही होंगे। विवाह जो अभी छोटी-छोटी उम्र में होते हैं, उसमें भी हमें फेरफार करना होगा और अगर जरूरी हो यानी ठीक वर न मिले, तो लड़कियों में यह हिम्मत होनी चाहिये कि वे अनव्याही ही रहें। इस सब का अर्थ यह हुआ कि ऐसी शिक्षा दी जाय जो राष्ट्र के युवकों और युवतियों की मनोवृत्ति में क्रान्ति पैदा कर दे। यह हमारा दुर्भाग्य है कि जिस ढङ्ग की शिक्षा हमारे देश में आज दी जाती है; उसका हमारी परिस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं और इससे होता यह है कि राष्ट्र के मुट्ठी भर लड़कों और लड़कियों को जो शिक्षा मिलती है उससे हमारी परिस्थितियां अछूती ही रहती हैं। इसलिये इस बुराई को कम करने के लिये जो भी किया जा सके यह जरूर किया जाय, पर यह साफ़ है कि यह तथा दूसरी अनेक बुराइयां तभी, मेरी समझ में, सर की जा सकती है, जबकि देश की हालतों के मुताबिक जो तेजी से बदलती जा रही हैं, लड़कों और लड़कियों को तालीम दी जाय। यह कैसे हो सकता है कि इतने तमाम लड़के और लड़कियां, जो कालेजों तक में शिक्षा

हासिल कर चुके हों, एक बुरी प्रथा का जिसका कि उनके भविष्य पर उतना ही असर पड़ता है, जितना कि शादी का, सामना न कर सकें या न करना चाहें ? पढ़ी लिखी लड़कियां क्यों आत्महत्या करें, इसलिये कि उन्हें योग्य वर नहीं मिलते ? उनकी शिक्षा का मूल्य ही क्या, अगर वह उनके अन्दर एक ऐसे रिवाज को ठुकरा देने की हिम्मत पैदा नहीं कर सकतीं, जिसका कि किसी तरह पक्ष समर्थन नहीं किया जा सकता और जो मनुष्य की नैतिक भावना के बिलकुल विरुद्ध हैं ? जवाब साफ़ है शिक्षा पद्धति के मूल में ही कोई गलती है, जिससे की लड़कियाँ और लड़के सामाजिक या दूसरी बुराइयों के खिलाफ लड़ने की हिम्मत नहीं दिखा सकते। मूल्य या महत्व तो उसी शिक्षा का है जो मानव जीवन की हर तरह की समस्याओं को ठीक-ठीक हल कर सकने के लिये विद्यार्थी के मस्तिष्क को विकसित करदे।

क्रय-विवाह

कुछ महीने हुये स्टेट्समैन ने प्रायः समस्त भारतवर्ष में बहुत सी जातियों में प्रचलित दहेज प्रथा पर वाद विवाद का स्तम्भ शुरू किया था और इस पर अपना सम्पादकीय विचार भी प्रकट किया था मैं यंग इण्डिया के स्तम्भों में इस कुप्रथा पर प्रायः अक्सर लिखा करता था। स्टेटसमैन की कटिंग से जो

में पहिले से जानता था उसकी स्मृतियां जग गई हैं। मेरे कथनों का लक्ष्य सिन्ध में प्रचलित लेती-देती प्रथा से था। जितने ही शिक्षित सिन्धी ऐसे पाये गये हैं जो उन माता पिताओं से बहुत अधिक धन ऐंठ लिया है जो अपनी लड़कियों के लिये अच्छे वर चाहते थे। स्टेट्समैन ने इस कुप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह प्रथा हृदय हीन है, परन्तु जहां तक मैं जानता हूँ यह अधिक जन-संख्या में नहीं है। यह प्रथा मध्य वर्ग में ही सीमित है जो भारतीय जनता में समुद्र में एक बूंद के बराबर है। जब कभी हम लोग किसी कुप्रथा की चर्चा करते हैं। आम तौर पर वह मध्य वर्ग से सम्बन्ध रखती है। करोड़ों ग्रामीणों की अपनी प्रथायें हैं और जिसकी विपत्तियां अभी हमें कम मालूम हैं।

लेकिन इसका अर्थ नहीं कि चूँकि यह प्रथा देश के बहुत थोड़े से लोगों में सीमित है। इसलिये उसकी उपेक्षा की जा सकती है। इस कुप्रथा को मिट ही जाना चाहिये। संरक्षकों को रुपये से विवाह तय करने की प्रथा बन्द हो जानी चाहिये। यह प्रथा जाति की प्रथा से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। जब तक कि पति पत्नी निर्वाचन जाति विशेष के कुछ युवकों और युवतियों में ही सीमित है तब तक इस प्रथा के विरुद्ध चाहे जितना कहा जाय यह मिट नहीं सकती। यदि हमें कुप्रथा को नष्ट करना है तो लड़के या लड़कियों अथवा उनके संरक्षकों को जाति बन्धन तोड़ देना पड़ेगा। तब विवाह की अवस्था को भी बढ़ाना होगा।

और आवश्यकता हुई अर्थात् योग्य वर न मिला तो लड़कियों को कुमारी भी रहना पड़ेगा। इनका अर्थ यह है कि राष्ट्र के युवकों की मनोवृत्ति में क्रान्ति करने के लिये चरित्र की शिक्षा दी जाय; दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा का सम्बन्ध हमारे वातावरण से नहीं है जिससे राष्ट्र के चन्द लड़के लड़कियों की शिक्षा इस वातावरण को छूती भी नहीं तब तक इस कुप्रथा को कम करने में जो कुछ भी किया जा सकता है किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में मेरे विचार स्पष्ट हैं कि इस प्रथा और ऐसी दूसरी कुप्रथायें जिनका जिकर किया जा सकता है तभी की जा सकेगी जब शिक्षा देश की तेजी से बदलने वाली स्थितियों से सम्बन्ध रक्खे। बहुत से लड़के और लड़कियां जो कालेजों से शिक्षा पाके निकलते हैं इस कुप्रथा का विरोध नहीं करना चाहते जो उनके भविष्य पर प्रभाव डालती हैं। शिक्षित लड़कियों को उपयुक्त वर न मिलने के कारण आत्महत्या करती हुई क्यों पाई जाती हैं। यदि वे इस प्रथा का विरोध नहीं कर सकतीं जो नैतिकता की भावना से निरन्तर रहित है तो उनकी शिक्षा का क्या मूल्य है? इसका उत्तर स्पष्ट है। शिक्षा की पद्धति में कुछ मौलिक गलतियां हैं जो लड़के लड़कियों को सामाजिक अथवा दूसरी कुप्रथाओं का विरोध करने के योग्य नहीं बनाती। केवल वही शिक्षा का मूल्य है जो विद्यार्थी की उस योग्यता को विकसित करती है जिससे वह जीवन की हर समस्या को ठीक तरह से समझ सके।

———

अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के विषय में तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि अपनी इच्छा के खिलाफ जबर्दस्ती किये जाने वाले विवाह का विरोध करने जितना संकल्प बल तो विद्यार्थियों को जरूर प्राप्त करना चाहिये। विद्यार्थियों को अपने बल पर खड़ा रहने और अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई भी बात—खास कर ब्याह शादी—जबर्दस्ती किये जाने के हर एक प्रयत्न का विरोध करने की कला सीखना चाहिये।

रोश भरा विरोध

एक बंगाली स्कूल के मास्टर लिखते हैं:—

"आपने मद्रास के विद्यार्थियों को विधवा लड़कियों से ही शादी करने की सलाह देते हुए जो भाषण दिया है, उससे हम भयभीत हो रहे हैं और मैं उससे नम्र परन्तु रोष भरा विरोध जाहिर करता हूं।

विधवाओं के जिस आजन्म ब्रह्मचर्य के पालन के कारण भारत की स्त्रियों को संसार में सब से बड़ा और ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है, उसके पालन करने की वृत्ति को ऐसी सलाहें नष्ट कर देंगी और भौतिक सुखों के दुष्ट मार्ग पर उन्हें चढ़ा कर एक ही जन्म में ब्रह्मचर्य के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की उनकी सुविधा को मिटा देंगी। इस प्रकार विधवाओं के प्रति ऐसी सहानुभूति

दिखाना उनकी असेवा होगी और कुंवारियों के प्रति जिनके विवाह का प्रश्न आज बड़ा पेचीला और मुश्किल हो गया है, बड़ा अन्याय होगा। विवाह सम्बन्धी आपके इन विचारों से हिन्दुओं के पुनर्जन्म और मुक्ति के विचारों की इमारत गिर जायगी और हिन्दू समाज भी दूसरे समाजों के वैसा ही, जिन्हें हम पसन्द नहीं करते, बन जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समाज का नैतिक पतन हुआ है, परन्तु हमें हिन्दू आदर्श के प्रति हमारी दृष्टि रखना चाहिए और उसे उस आदर्श के अनुकूल मार्ग दिखाना चाहिये। हिन्दू समाज को अहिल्या बाई, रानी भवानी, बहुला, सीता, सावित्री, दमयन्ती के उदाहरणों से शिक्षा लेनी चाहिये, और हमें भी उन्हीं के आदर्श के मार्ग पर उसे चलाना चाहिये। इसलिये मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि आप इन विषय प्रश्नों पर अपनी ऐसी राय जाहिर करने से रुक जायँ और समाज को जो वह उत्तम समझे वही कर दें।"

इस रोष भरे विरोध से न मेरे विचार बदले हैं और न मुझे कोई पश्चात्ताप ही हुआ है। कोई भी विधवा जिसमें इच्छा बल है और जो ब्रह्मचर्य को समझ कर उसका पालन करने पर तुली हुई है, मेरी इस सलाह से अपना इरादा छोड़ न देगी। परन्तु मेरी सलाह पर अमल किया जायगा तो उससे उन छोटी उम्र की लड़कियों को जरूर राहत मिलेगी, जो शादी के समय शादी किसे कहते हैं, यह भी नहीं समझती थीं। उसके सम्बन्ध में विधवा शब्द का प्रयोग इस पवित्र नाम का दुरुपयोग है। मुझे पत्र लिखने

वाले उन महाशय के जो खयाल हैं उसी खयाल से तो मैं देश के युवकों को या तो इन नाम मात्र की विधवाओं से शादी करने की या बिलकुल ही शादी न करने की सलाह देता हूँ। इसकी पवित्रता की तभी रक्षा हो सकेगी, जब कि बाल विधवाओं का अभिशाप उससे दूर कर दिया जायगा। ब्रह्मचर्य के पालन से विधवाओं को मोक्ष मिलता है, इसका तो अनुभव में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये केवल ब्रह्मचर्य ही नहीं, परन्तु और भी विशेष बातों की आवश्यकता होती है और जो ब्रह्मचर्य जबर्दस्ती लादा गया है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। उससे तो अक्सर गुप्त पाप होते हैं, जिससे उस समाज की नैतिक शक्ति का ह्रास होता है। पत्र लेखक महाशय को यह जान लेना चाहिये कि मैं यह जाती अनुभव से लिख रहा हूं।

यदि मेरी इस सलाह से बाल विधवाओं से न्याय किया जावेगा और उस कारण कुवांरियों के मनुष्य की विषय लालसा के लिये बेची जाने के बदले उन्हें वय और बुद्धि में बढ़ने दिया जायगा, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

विवाह के मेरे विचारों में और पुनर्जन्म और मुक्ति में कोई असंगति नहीं है। पाठकों को यह मालूम होना चाहिये कि करोड़ों हिन्दू जिन्हें हम अन्यायतः नीचि जाति के कहते हैं, उनमें पुनर्लग्न का कोई प्रतिबन्ध नहीं है और मैं यह भी नहीं समझ सकता हूं कि वृद्ध विधुरों के पुनर्लग्न से उन विचारों को क्यों नहीं बाधा पहुँचती है और लड़कियों की—जिन्हें गलत तौर पर

विधवा कहा जाता है—शादी से इन भव्य विचारों को बाधा पहुंचती है? पत्र लेखक की पुष्टि के लिये मैं यह भी कहता हूँ कि पुनर्जन्म और मुक्ति मेरे विचारों में केवल विचार ही नहीं हैं परन्तु ऐसा सत्य है जैसा कि सुबह को सूर्य का उदय होना। मुक्ति सत्य है और उसे प्राप्त करने के लिये मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूं। यही मुक्ति के विचार ने मुझे बाल विधवाओं के प्रति किये जाने वाले अन्याय का स्पष्ट भान कराया है। अपनी कायरता के कारण हमें जिनके प्रति अन्याय किया गया है, उन वर्तमान बाल विधवाओं के साथ सदा स्मरणीय सीता और दूसरी स्त्रियों के नाम जो पत्र लेखक ने गिनाये हैं नहीं लेना चाहिये।

अन्त में यद्यपि हिंदू धर्म में सच्चे विधवापन का गौरव किया गया है और ठीक किया गया है, फिर भी जहां तक मेरा ख्याल है, इस विश्वास के लिये कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक काल में विधवाओं के पुनर्लग्न का सम्पूर्ण प्रतिबन्ध था। परन्तु सच्चे विधवापन के विरुद्ध मेरी यह लड़ाई नहीं है। वह उसके नाम पर होने वाले अत्याचार के खिलाफ़ है। अच्छा रास्ता तो यह है कि मेरे ख्याल में जो लड़कियां हैं, उन्हें विधवा ही नहीं मानना चाहिये और उनका यह असह्य बोझ दूर करना प्रत्येक हिन्दू का जिसमें कुछ भी नारीत्व है, स्पष्ट कर्त्तव्य है। इसलिये मैं फिर जोर देकर हर एक नवजवान हिन्दू को यह सलाह देता हूं कि इन बाल विधवाओं के सिवा दूसरी लड़कियों से शादी करने से वे इन्कार करदें।

———

आत्म त्याग

मुझे बहुत से नौजवान पत्र द्वारा सूचित करते हैं कि उन पर कुटुम्ब निर्वाह का बोझा इतना ज्यादा पड़ा हुआ होता है कि देश सेवा के कार्य में से जो वेतन उन्हें मिलता है वह उनकी जरूरतों के लिये बिल्कुल काफी नही होता। उनमें से एक महाशय कहते हैं कि मुझे तो अब यह काम छोड़ कर रुपया उधार लेकर या भीख मांग करके योरप जाना पड़ेगा, जिससे कि कमाई ज्यादा करना सीख सकूं; दूसरे महाशय किसी वेतन वाली नौकरी की तलाश में हैं, तीसरे कुछ पूंजी चाहते हैं कि जिससे ज्यादा कमाई करने के लिये कुछ व्यापार खड़ा हो सके। इनमें से हर एक नौजवान संगीन, सच्चरित और आत्म त्यागी हैं। किन्तु एक उल्टा प्रवाह चल पड़ा है। कुटुम्ब की आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। खद्दर या राष्ट्रीय शिक्षा के कार्य में से उनका पूरा नहीं होता है। वेतन अधिक मांग कर ये लोग देश सेवा के कार्य पर भार रूप होना पसन्द नहीं करते। परन्तु ऐसा विचार करने से अगर सभी ऐसा करने लगें तो नतीजा यह होगा कि या तो देश सेवा का कार्य ही बिल्कुल बन्द हो जायगा, क्यों कि वह तो ऐसे ही स्त्री पुरुषों के परिश्रम पर निर्भर रहा करता, या ऐसा हो सकता है कि सब के वेतन खूब बढ़ाये जाँय, तो उसका भी नतीजा तो वैसा ही खराब होगा।

असहयोग का निर्माण तो इसी बुनियाद पर हुआ था कि हमारी जरूरतें हमारी परिस्थिति के मुकाबले में हद से ज्यादा

वेग से बढ़ती हुई मालूम हुई थीं। आशय 'यह होने ही' से यह स्पष्ट है—कि असहयोग कोई व्यक्तियों के साथ नहीं, वरन् उस मनो दशा के साथ होना चाहिये था कि जिस पर यह तंत्र कायम है, जो नाग पाश की तरह हमें अपने घेरे में बांधे हुए है और जिससे हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। इस तंत्र ने उसमें फंसे हुये लोगों के रहन-सहन का ढंग इतना बढ़ा चढ़ा दिया था कि वह देश की आम हालत के बिल्कुल प्रतिकूल था। हिन्दुस्तान दूसरे देशों के जी पर जीने वाला देश था नहीं, इसलिये हमारे यहां के बीच के लोगों का जीवन अधिक खर्चीला हो जाने से कंगाल दर्जे के लोग तो बिलकुल मारे गये, क्योंकि उनके कार्य के दलाल तो ये बीच के दर्जे वाले लोग ही थे। इसलिये छोटे २ कस्बे तो इस जीवन विग्रह में खड़े रहने की सामर्थ्य के अभावसे ही मिटते चले जा रहे थे। सन् १६२० में यह बात साफ़ साफ़ नजर आने लग गयी थी। इसमें अटकाव डालने वाला आन्दोलन अभी आरम्भ की हालत में है। जल्दी की किसी कार्रवाई से हमें उसके विकास को रोक न देना चाहिये।

हमारी जरूरतों की इस कृत्रिम बढ़ती से हमें विशेष नुकसान इस वजह से हुआ कि जिस पाश्चात्य प्रथा से हमारी जरूरतें बढ़ी हैं, वह हमारे यहां की पुराने जमाने से चली आने वाली संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा के अनुकूल नहीं है। कुटुम्ब प्रथा निर्जीव हो चली इसलिये उसके दोष ज्यादा साफ-साफ नजर आने लगे और उसके फायदों का लोप हो गया। इस तरह एक विपत्ति के साथ और आ मिली।

देश की ऐसी दशा में इतने आत्मत्याग की आवश्यकता है कि जो उसके लिये पर्याप्त हों। वाहरी वनिस्वत भीतरी सुधार की ज्यादा जरूरत है। भीतर अगर घुन लगा हुआ हो तो उस पर बनाया हुआ बिलकुल दोषहीन राज्ञ विधान भी सफेद कब्र सा होगा।

इसलिये हमें आत्म बुद्धि की क्रिया पूरी-पूरी करनी होगी। आत्म-त्याग की भावना बढ़ानी पड़ेगी। आत्मत्याग बहुत किया जा चुका है, सही मगर देश की दशा को देखते हुये वह कुछ भी नहीं है। परिवार के सशक्त स्त्री या पुरुष अगर काम करना चाहें तो उनका पालन-पोषण करने की हिम्मत हम नहीं कर सकते। निरर्थक व मिथ्या वहम वाले रीति-रिवाजों, जाति-भोजनों या विवाह आदि के बड़े-बड़े खर्चों के वास्ते एक पैसा भी खर्च करने को निकाल नहीं सकते। कोई विवाह या मौत हुई कि वेचारे परिवार के संचालक के ऊपर एक अनावश्यक और भयंकर बोझा आ पड़ता है। ऐसे कार्यों को आत्मत्याग मानने से इन्कार करना चाहिये। बल्कि इन्हें तो अनिष्ट समझ कर हिम्मत और दृढ़ता से हमें इनका विरोध करना चाहिये।

शिक्षा-प्रणाली भी तो हमारे लिये बेहद मँहगी है। करोड़ों को जब पेट भर अनाज नहीं मिलता है जब कि लाखों आदमी भूख के मारे मरते चले आ रहे हैं, ऐसे वक्त हम अपने परिवार वालो को ऐसी भारी मँहगी शिक्षा दिलाने का क्योंकर विचार कर सकते हैं? मानसिक विकास तो कठिन अनुभव से ही होगा,

मदर्से या कालिज में पढ़ने से ही तो ऐसा नहीं है। जब हम में से कुछ लोग खुद अपने और अपनी संतान के लिये ऊंचे दर्जे की मानी जाने वाली शिक्षा ग्रहण करने का त्याग करेंगे, तभी सच्चे ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाने व देने का उपाय हमारे हाथ लगेगा। क्या ऐसा कोई मार्ग नहीं है या नहीं हो सकता है कि जिससे हरेक लड़का अपना खर्चा निकाल सके? ऐसा कोई मार्ग चाहे न हो, किन्तु हमारे सामने प्रस्तुत प्रश्न यह नहीं है कि ऐसा कोई मार्ग है या नहीं। इसमें अलबत्ता कोई शक नहीं है कि जब हम इस मँहगी शिक्षा-प्रणाली का त्याग करेंगे, तभी अगर ऊँचे दर्जे की शिक्षा पाने की अभिलाषा वस्तु मान ली जावे, तो हमें अपनी परिस्थिति के लायक उसे प्राप्त करने का मार्ग मिल सकेगा। ऐसे किसी भी प्रसंग पर काम आने वाला महामंत्र यह है कि जो वस्तु करोड़ों आदमियों को न मिल सकती हो, उसका हम खुद भी त्याग करें। इस तरह का त्याग करने की योग्यता सहसा तो हममें नहीं आ सकती। पहले हमें ऐसा मानसिक झुकाव पैदा करना पड़ेगा कि जिससे करोड़ों को न प्राप्त हो सके वैसी चीजें और वैसी सुविधाएँ लेने की इच्छा ही हमें न हो और उसके बाद हमें शीघ्र ही हमारे रहन-सहन के ढंग उसी मार्ग के अनुकूल बना डालना चाहिये।

ऐसे आत्मत्यागी व निश्चयी कार्यकर्ताओं की एक बड़ी भारी सेना की सेवा के बिना आम लोगों की तरक्की मुझे असम्भव दिखती है। और उस तरक्की के सिवाय स्वराज्य ऐसी कोई चीज

नहीं। गरीबों की सेवा से हितार्थ अपना सर्वस्व त्याग करने वाले कार्यकर्ताओं की संख्या जितनी बढ़ती जावेगी, उतने ही दर्जे तक हमने स्वराज्य की ओर विशेष कूच की, ऐसा मानना चाहिये।

विद्यार्थी की दुविधा

एक सरल चित्त विद्यार्थी लिखता है:—

'मेरे पत्र में खादी सेवक बनने के विषय में आपने जो लिखा है, वह मैंने ध्यान पूर्वक पढ़ा। सेवा करने की धारणा तो है ही। परन्तु मुझे अभी यह विचार ही करना है कि खादी सेवक बनूंगा या किसी दूसरी तरह से सेवा करूँगा। पर अभी तक मेरे दिल में नहीं पैदा है कि खादी उद्धार में भी आत्मोन्नति घुसी हुई है। आज तो हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति के सुधार और उसके स्वतन्त्र होने के लिये कातना आवश्यक समझ कर समाज के प्रति अपना कर्तव्य पालन भर के लिए ही कातता हूं। पीछे तो जो सेवा मेरे लिये उत्तम बनी होगी, उसी के अनुसार बनेगा। आज तो यही ध्येय है कि जितना ज्ञान मिल सके, उसी को लेकर सेवा करने को तैयार हो जांय।

"ब्रह्मचर्य के पालन के विषय में मुझे लिखने का ही क्या होवे। ईश्वर से तो इतनी ही प्रार्थना है कि ब्रह्मचर्य पालन करने की महत्वाकांक्षा पूर्ण करने की वह शक्ति देवे।

मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि आप एक ही साथ, विद्यालयों

में ज्ञान और उद्योग को एक सा स्थान कैसे देते हैं। मुझे यों लगा ही करता है कि हम दो काम एक साथ करने जाकर एक भी ठीक ठीक न कर सकेंगे।

"हमें उद्योग सीखना तो है ही, मगर क्या यह अच्छा नहीं; कि पढ़ना खत्म करके हम उद्योग सीखें? कातने को तो मैं उद्योग में गिनता ही नहीं। कातना तो समाज के प्रति हर एक आदमी का धर्म है और इस लिये सबको कातना चाहिये। परन्तु दूसरे उद्योगों के लिये क्या? मुझे लगता है कि बुनाई, खेती और उसके सम्बन्धी काम बढ़ई गीरी वगैरह उद्योग पढ़ना समाप्त करने के बाद ही शुरू किये जा सकते हैं। ये हर एक काम भी स्वतन्त्र विषय हैं। इनके लिये एकाध वर्ष दे दिया होवे तो ठीक होता है।"

"आज मैं अपनी स्थिति विचारने बैठूं तो दोनों वस्तुयें बिगड़ती हुई सी लगती हैं। तीन घंटे कारीगरी का काम करके बाहर के समय में कातना, किसी बाहरी विद्यालय में सिखाये जाने वाले विषयों जितने विषय पढ़ना, स्वाध्याय करना और आवश्यक कामों में भाग लेना, यह तो सचमुच में मुश्किल मालूम पड़ता है।"

"लड़कों की पढ़ाई तो घटाई जा ही नहीं सकती। उन्हें तो सभी विषय सीखना जरूरी है ही। तब इतने विषय सीखते हुए स्वाध्याय करते हुए भी उन पर अधिक बोझ क्यों डालें? दिया गया पाठ बालक तैयार कर ही नहीं सकते, फिर आपने अलग स्वाचन कर ही कहां सकते हैं। मैं देखता हूं कि ज्यों-ज्यों ज्ञान

बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों स्ववाचन बढ़ाना जरूरी होता जाता है। और उतना समय निकल सकता नहीं।"

"यह विचार मैंने शिक्षकों से भी कहे, इस पर चर्चा भी हुई है। मगर इससे मुझे अभी सन्तोष नहीं हुआ है। मुझे लगता है कि वे हमारी कठिनाइयों को समझ नहीं सके हैं। आप इस विषय में विचार करके मुझे समझावें।"

इस पत्र में दो विषय बड़े महत्व के हैं। पाठक तो यह समझ ही गये होंगे कि यह पत्र मेरे पत्र के जवाब में आया था। उसका खानगी जवाब देने के बदले, इस आशा में कि यह कई विद्यार्थियों को मददगार होगा, 'नवजीवन' द्वारा उत्तर देने का निश्चय कर, मैं तीन माह तक पत्र को रखे रहा।

आत्मोन्नति और समाज सेवा में जो भेद इस पत्र में बताया गया है, वह भेद बहुत लोग करते हैं। मुझे इस भेद में विचार दोष दिखाई पड़ता है मैं यह मानता हूँ और मेरा यह अनुभव भी है कि जो काम आत्मोन्नति का विरोधी है, वह समाज सेवा का भी विरोधी है। सेवा कार्य के जरिये भी आत्मोन्नति हो सकती है। जो सेवा आत्मोन्नति को रोके वह त्याज्य है।

यह कहने वालों का भी पन्थ है कि 'झूठ बोल कर सेवा हो सकती है', पर यह तो सभी कबूल करेंगे कि झूठ बोलने से आत्मा की अवनति होती है। इस लिये झूठ बोल कर की जाने वाली सेवा त्याज्य है। सच तो यह है कि यह मान्यता केवल ऊपरी आभास मात्र है कि झूठ बोल कर सेवा की जा सकती है। इससे

भले ही समाज का तात्कालिक लाभ मालूम पड़े मगर यह बतलाया जा सकता है, कि इससे हानि ही होती है।

इसके उल्टे चर्खे से समाज का लाभ होता है, जगत का लाभ होता है और उससे आत्मा का लाभ होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर एक कतवैया आत्मोन्नति का साधन करता ही है। जो दो पैसा पैदा करने के लिये कातता है, उसे उतना ही फल मिलता है। जो आत्मा को पहचानने के लिये कातता है, वह इसी जरिये मोक्ष भी पा सकता है। जो दम्भ से या द्रव्य के लिये चौवीसो घन्टे गायत्री जपता है, उनमें पहले की तो अधोगति होती है, और दूसरा पैसे की प्राप्ति भर का ही फल पाकर रुक जाता है। मोक्ष तो वहीं है जहाँ सर्वोत्तम कार्य है और उसका सर्वोत्तम उद्देश्य है।

दर असल यही जानने के लिये कि सर्वोत्तम कौन सा है और सर्वोत्तम उद्देश्य क्या है, ब्रह्मज्ञान की जरूरत पड़ती है। आत्मोन्नति की दृष्टि से खादी सेवा की लियाकत पैदा करनी कुछ छोटी बात नहीं है। आत्मार्थी खादी सेवक राग-द्वेष विहीन होना चाहिये। इसमें सब कुछ आ गया। निस्वार्थ भाव से, केवल आजीविका भर को ही पाकर सन्तुष्ट रह कर, रेलवे से दूर, छोटे से गाँव में प्रतिकूल हवा के होते हुए, अडग श्रद्धा पूर्वक, आसन मार कर बैठने वाला एक भी खादी-सेवक अब तक तो हमें नहीं मिला है। ऐसा खादी सेवक संस्कृति जानता हो, संगीत का जानने वाला हो, वह जितनी कलाएँ जानता हो, यहां पर सब का

उपयोग कर सकेगा। चर्खा शास्त्र के बाद कुछ भी न जानता हो तो भी सन्तुष्ट रह कर सेवा कर सकता है।

दीर्घ काल का आलस्य, दीर्घ काल का अन्ध विश्वास, वहम, दीर्घ काल की भूख मरी, दीर्घ काल का अविश्वास इन सब अन्धकारों को दूर करने के लिये तो मोक्ष के पास पहुंचे हुए तपस्वियों की आवश्यकता है। इस धर्म का थोड़ा पालन भी महा भयों में से उद्धार करने वाला है। इससे वह सहज है। परन्तु उसका सम्पूर्ण पालन तो मोक्षार्थी की तपस्या जितना ही कठिन है।

इस कथन का यह आशय नहीं है कि कोई विद्याभ्यास छोड़ कर अभी सेवा कार्य में लग जावे। पर इसका यह अर्थ जरूर है कि जिस विद्यार्थी में हिम्मत, बल होवे, वह आज से संकल्प कर लेवे कि विद्याभ्यास समाप्त करने पर उसे खादी सेवक बनना है। यों करे तो वह आज ही से खादी सेवा कर रहा है, क्योंकि पढ़ने के सभी विषयों का चुनाव वह इस सेवा की लियाकत पैदा करने की दृष्टि से ही करेगा।

अब दूसरी कठिनाई देखें, "मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि आप एक ही साथ विद्यालयों में ज्ञान और उद्योग को एकसा स्थान कैसे देते हैं?"

जब से मैं देश में आया हूं, यह प्रश्न सुनता आया हूँ और जवाब भी मैंने एक ही दिया है। वह यह कि दोनों को समान स्थान मिलना ही चाहिये। पहले ऐसा होता था। विद्यार्थी समि-

त्यागी होकर गुरु के घर जाता। इससे उसकी नम्रता और सेवा भाव का परिचय मिलता था। और वह सेवा गुरु के लिए लकड़ी पानी इत्यादि जंगल में से लाने की होती थी। यानी विद्यार्थी गुरु के घर पर खेती का, गोपालन का और शास्त्र का ज्ञान पाता था।

आज ऐसा नहीं होता। इसी से जगत में भूख मरी और अनीति वढ़ी है। अक्षर ज्ञान और उद्योग अलग अलग चीजें नहीं हैं। उन्हें अलग करने से, उनका सम्बन्ध तोड़ने से ही, ज्ञान का व्यभिचार हो रहा है, पति की छोड़ी हुई पत्नी के जैसा हाल उद्योग का हो रहा है। और ज्ञान रूपी पति उद्योग को छोड़कर स्वेच्छाचारी बना है और अनेक स्थानों पर अपनी बुरी नजर डालते हुये भी, अपनी कामनाओं की तृप्तियां ही नहीं कर सकता। इससे अन्त में स्वच्छन्द चल कर थकता है और पिछड़ता है।

दो में से किसी का पहला स्थान अगर होवे तो उद्योग का है। वालक जन्म से ही तर्क को काम में नहीं लाता। पर शरीर का इस्तेमाल करता है। पीछे चार पांच वर्ष में समझ का ज्ञान पाता है। समझ पाते ही वह शरीर को भूल जाय तो समझ और शरीर दोनों में किसी का ठिकाना न लगे, शरीर के बिना समझ हो ही नहीं सकती। इसलिये समझ का उपयोग शरीर उद्यम में करने का है। आज तो देह को तन्दुरुस्त रखने लायक कसरत भर का ही शरीर उद्यम रहता है, जब कि पहले उपयोगी कामों से ही कसरत मिल जाती थी; ऐसा कहने का यह अर्थ नहीं है कि लड़के खेलें ही कूदें नहीं। इस खेल कूद का स्थान बहुत नीचा है और

यह शरीर और मन का एक तरह का आराम है, शुद्ध शिक्षण में आलस्य को स्थान नहीं है। उद्योग हो या अक्षर ज्ञान हो दोनों ही रुचिकर होना चाहिये। उद्योग हो या अक्षर ज्ञान बालक अगर किसी से ऊबे तो यह शिक्षण का, शिक्षक का दोष है।

यह चिट्ठी रखने के बाद मेरे हाथों में एक किताब आई। उसमें मैंने देखा कि हाल में इंग्लैंड में उद्योग के साथ अक्षर की शिक्षा देने के केन्द्र बनाने के लिए जो संस्था खड़ी हुई है, उसमें इंग्लैंड के समीप बड़े आदमियों के नाम हैं। उनका उद्देश्य यह है कि आज जो शिक्षा दी जाती है उसका रुख बदल दिया जाय, बालकों को अक्षर ज्ञान और उद्योग की शिक्षा साथ देने के लिये उन्हें विशाल मैदानों में रखा जाय, तहां वे धंधा सीखें, उससे कुछ कमावें भी, और अक्षर ज्ञान भी पावें। यह भी कहते हैं कि इसमें लाभ है, हानि नहीं, क्योंकि इस दरम्यान में विद्यार्थी कमाता जाता है और ज्यों ज्यों ज्ञान मिलता जाता है, उसे पचाता है।

मैं यों मानता हूं कि दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो प्रयोग किये वे इस वस्तु का समर्थन करते हैं। जितना मुझे करना आया और मैं कर सका, उतना वे सफल हुए थे।

जहां शिक्षण की पद्धति अच्छी है वहां पर स्ववाचन के लिये नहीं जितना ही समय चाहिये।

विद्यार्थी के मन में आवे तो कुछ पढ़ने करने या आलसी रहना चाहे तो आलसी रहने के लिये थोड़ा समय तो चाहिये।

मैंने अभी जाना है कि योगविद्यामें इसका नाम 'श्वासन' है। मरे हुए के जैसे लम्बे पड़ जाना, शरीर, मन वगैरह को ढीला छोड़कर इरादे के साथ जड़ जैसा हो पड़ना श्वासन है। उसमें सांस के साथ तो राम नाम चालू ही होवे, परन्तु वह आराम में कुछ खलल न पहुँचावे। ब्रह्मचारी के लिये तो उसका श्वास ही राम नाम होवे।

यह मेरा कहना अगर सच होवे तो यह विद्यार्थी और इसके साथी जो बुरे नहीं हैं, टेढ़े नहीं हैं, इसका अनुभव क्यों नहीं करते ?

हमारी दयावनी स्थिति यह है कि हम सब शिक्षक अक्षर ज्ञान युग में पले हैं, तो भी कितने आदमी अपनी अपूर्णता देख सके हैं। यह झट मालूम न हुआ कि सुधार किस प्रकार करें। अब भी नहीं मालूम पड़ता है। जितनी बातें समझ में आती हैं, उनका पालन करने की शक्ति नहीं। रघुवंश रामायण या शेक्सपियर पढ़ाने वाले बढ़ईगिरी सिखलाने को समर्थ नहीं हैं। वे जितना अपना रघुवंश पढ़ाना जानते हैं उतनी बुनाई नहीं जानते। जानते भी होंगे तो रघुवंश जितनी उसमें रुचि नहीं होगी। ऐसे अपूर्ण साधनों में से उद्योग और ज्ञान प्राप्त चारित्रवान विद्यार्थी तैयार करना छोटा काम नहीं है। इसमें संधि-काल में अधकचरे शिक्षकों और प्रयत्नशील विद्यार्थियों को धैर्य और श्रद्धा रखनी ही रही। श्रद्धा से ही समुद्र लांघा जा सकता है और बड़े बड़े किले फतह किये जा सकते हैं।

———

प्रश्नोत्तर

इंग्लैंड में भारतीय विद्यार्थियों ने महात्मा गांधी से कई एक दिलचस्प प्रश्न किये थे. जिसका उत्तर महात्माजी ने इस प्रकार दिया था।

प्रश्न—क्या मुसलमानों से एकता की आपकी मांग वैसी ही बेहूदा नहीं है, जैसी कि एकता की मांग सरकार हम से करती है ? ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने के बजाय आप अन्य सब बातों को क्या नहीं छोड़ देते ?

उत्तर—आप दुहरी भूल करते हैं। पहिले तो मैंने जो मुसलमानों से कहा है उसके साथ सरकार जो हम से कहती है उसका मुक़ाबला करने में। ऊपर से देखने में कोई यह सवाल कर सकता है कि वस्तुतः यह एक ही सी मिसाल है. किन्तु यदि आप गहराई से विचार करेंगे, तो आपको मालूम होगा कि इनमें जरा भी समानता नहीं है। ब्रिटिश व्यवहार या मांग को संगीन के बल का सहारा है; जब कि मैं जो कुछ कहता हूँ हृदय से निकला होता है और प्रेम के, बल के सिवाय उसका और कोई सहारा नहीं। एक सर्जन और एक अत्याचारी हत्याकारी दोनों एक ही शस्त्र का उपयोग करते हैं, किन्तु परिणाम दोनों के भिन्न होते हैं। मैंने जो कुछ कहा, वह यही है. कि मैं कोई ऐसी मांग पूरी नहीं कर सकता, जिसका सब मुस्लिम दल समर्थन न करते हों, मैं केवल बहुसंख्यक वर्ग से ही किस प्रकार संचालित हो सकता हूँ ? गहरा सवाल यह है कि जब कि एक. दल के मित्र

एक चीज मांग रहे हैं; मेरे साथ एक दूसरे दल के साथी हैं, जिनके साथ मैंने इस चीज के लिए काम किया है, और जिनका कुछ अर्से पहले इसी पहले दल के मित्रों ने मुझे अत्यन्त प्रतिष्ठित साथी कार्यकर्ता कह कर परिचय कराया था; क्या मैं उनके साथ गैर वफादारी करने का अपराधी बनूं ?

और आपको यह समझ रखनी चाहिये कि मेरे पास कोई शक्ति नहीं है, जो कुछ दे सके। मैंने उनसे सिर्फ यही कहा है कि यदि आप कोई सर्व सम्मत मांग पेश करेंगे, तो मैं उसके लिये प्रयत्न करूँगा। रहा, जो लोग अधिकार मांगते हैं, उन्हें समर्पण कर देने का प्रश्न, सो यह मेरा जीवन भर का विश्वास है—यदि मैं हिन्दुओं को मेरी नीति ग्रहण करने के लिये रजामन्द कर सकूं, तो प्रश्न तुरन्त हल हो सकता है, किन्तु इसके लिये मार्ग में हिमालय पहाड़ खड़ा है. इसलिये मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही मूर्खतापूर्ण नहीं है, जैसी कि आप कल्पना करते हैं। यदि केवल मेरे हाथ में कुछ शक्ति होती तो मैं इस प्रश्न को कदापि इस प्रकार निराधार छोड़ कर अपने आप को संसार के सामने अपमानित होने का पात्र न बनाता।

अंत में जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा कोई धर्म नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं हिन्दू नहीं हूं, किन्तु मेरे प्रस्तावित समर्पण से मेरे हिंदूपन पर किसी प्रकार का धब्बा या चोट नहीं पहुँचती। जब मैंने अकेले कांग्रेस का प्रतिनिधि होना स्वीकार किया, मैंने अपने आप से कहा कि मैं इस प्रश्न का

विचार हिंदूपन की दृष्टि से नहीं कर सकता, प्रत्युत राष्ट्रीयता की दृष्टि से, सब भारतीय के अधिकार और हित की दृष्टि से ही इस पर विचार किया जा सकता है। इसलिये मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है कि कांग्रेस सब हितों का रक्षक होने का दावा करती है--अँगरेजी तक के हितों की, जब तक कि वे भारत को अपना घर समझेंगे और लाखों मूक लोगों के हितों के विरोधी किसी हित का दावा न करेंगे-वह रक्षा करेगी।

प्रश्न--आपने गोलमेज परिषद् में देशी राज्यों की प्रजा के सम्बन्ध में कुछ क्यों नहीं कहा? मुझे भय है कि आपने उनके हितों का बलिदान कर दिया।

उत्तर--ठीक, वे लोग मुझ से गोलमेज परिषद् के सामने किसी शाब्दिक घोषणा की आशा नहीं करते थे, प्रत्युत नरेशों के सामने कुछ बातें रखने की आशा अवश्य रखते थे; जो कि मैं रख चुका हूं। असफल होने पर ही मेरे कार्य की आलोचना करने का समय आवेगा। मुझे अपने ढंग से काम करने की इजाजत होनी चाहिये। और मैं देशी राज्यों की प्रजा के लिये जो कुछ चाहता हूँ, गोलमेज परिषद् वह मुझे दे नहीं सकती। मुझे वह देशी नरेशों से लेना होगा। इसी तरह का प्रश्न हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का है। मैं जो कुछ चाहता हूँ उसके लिये मैं मुसलमानों के सामने घुटने टेक दूंगा, किन्तु वह मैं गोलमेज परिषद् के पास नहीं कर सकता। आपको जानना चाहिये कि मैं कुशल प्रतिपादक अर्थात् होशियार एडवोकेट या वकील हूँ और कुछ भी

हो, यदि मैं असफल हुआ तो आप मुझ से कुछ सार ले सकते हैं।

प्रश्न—आपने चुनाव के अप्रत्यक्ष तरीके पर अपनी सहमति क्यों प्रकट करदी ? क्या आप नहीं जानते कि नेहरू रिपोर्ट ने इसे अस्वीकार कर दिया है।

उत्तर—आपका प्रश्न अच्छा है। किन्तु यह तर्क की भाषा में आपके अव्यक्त मध्य को प्रकट करता है। अप्रत्यक्ष चुनाव को नेहरू रिपोर्ट में अकेला छोड़ दीजिये। यह एक सर्वथा जुदी वस्तु है। मैं आपको बता देना चाहता हूं कि मैंने जिस तरीके का प्रतिपादन किया है, उसकी नित्य प्रति मुझ में वृद्धि हो रही है। आपको जो कुछ भी समझना चाहिये वह यह है कि यह सर्वथा बालिग़ मताधिकार से बँधा हुआ है, जिसका इसके बिना फलसकारक उपयोग नहीं हो सकता। कुछ भी हो आपके पास भारत की सब बालिग़ जनता में से स्वयं निर्वाचित ५,००,००० निर्वाचक होंगे। बिना मेरे तरीके के यह एक दुसाध्य और अत्यन्त खर्चीला निर्वाचक मण्डल होगा। मेन के शब्दों में प्रत्येक ग्राम प्रजातन्त्र अपना मुख्तियार पसन्द करेगा और उसे देश की सर्व प्रधान व्यवस्थापिका सभा के लिये प्रतिनिधि चुनने की हिदायत करेगा।

कुछ भी हो, यह आवश्यक नहीं है कि जो कुछ इंगलैंड अथवा पाश्चात्य जगत के लिये उपयुक्त हो, वही भारत के लिये भी

उपयुक्त हो। हम पश्चिमी सभ्यता के नक्काल क्यों वनें ? हमारे देश की स्थिति सर्वथा भिन्न है, हमारे चुनाव का हमारा अपना विशेष तरीका क्यों न हो ?

पागलपन

वम्बई के एक्टिङ्ग गवर्नर पर हमला करके फरग्यूसन कालेज के विद्यार्थियों ने कौन सी अर्थ सिद्धि सोची होगी ? अखबारों में जो समाचार छपे हैं, उनके अनुसार तो केवल वदला लेने की वृत्ति थी—शोलापुर के फौजी कानून का या ऐसे ही किसी दूसरे काम का। मान लीजिये कि गवर्नर की मृत्यु हो जाती, लेकिन उससे जो हो चुका है, वह नहीं हुआ है, ऐसा तो न होता। वदला लेने की यह कोशिश करके इस विद्यार्थी ने वैर वढ़ाया है। विद्याभ्यास का ऐसा दुरुपयोग करके उसने विद्या को लजाया है।

जिस परिस्थिति में हमला किया, उसका विचार करते हुए इस हमले में दगा भी था। विद्यार्थी फरग्युसन कालेज के प्रति अपना धर्म भूला। गवर्नर फरग्यूसन कालेज के मेहमान थे। मेहमान को हमेशा अभयदान होता है। कहा जाता है कि अरव दुश्मन को भी, जव वह मेहमान होता है, नहीं मारता। यह विद्यार्थी फरग्यूसन कालेज का विद्यार्थी होने के कारण गवर्नर को निमन्त्रण देने वालों में गिना जायगा। न्यौता देने वाला अपने मेहमान को मारे, इससे अधिक भयंकर दगा और क्या हो सकती है ? क्या हिंसक मण्डल के किसी प्रकार की मर्यादा ही नहीं

होती ? जो किसी भी मर्यादा का पालन नहीं करता उसे शोलापुर के फौजी कानून या दूसरे अन्यायों की शिकायत करने का क्या अधिकार है ?

इस प्रकार कोई हमारे साथ विश्वासघात करे, तो हमें दुःख होगा। जिसकी हम अपने लिए इच्छा न रक्खें, वैसा व्यवहार दूसरों के साथ कैसे कर सकते हैं ? मुझे दृढ़ विश्वास है कि ऐसे कामों से हिन्दुस्तान को कीर्ति नहीं मिलती, अपकीर्ति प्राप्त होती है। ऐसे काम से स्वराज्य की योग्यता बढ़ती नहीं, घटती है, स्वराज्य दूर हटता है। ऐसे महान और प्राचीन देश का स्वराज्य कृतघ्नी खूनों से नहीं मिलेगा। हमें इतनी बात याद रखनी चाहिए कि सिर्फ अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से चले जाने का नाम ही स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य का अर्थ है, हिन्दुस्तान का कारोबार जनता की ओर से और जनता के लिये चलाने की शक्ति। यह शक्ति केवल अंग्रेजों के जाने से या उनके नाश से नहीं प्राप्त होगी। करोड़ों बेज़बान किसानों के दुःख जानने से उनकी सेवा करने से उनकी प्रीति पाने से यह शक्ति प्राप्त होगी। मान लीजिये कि, एक दो हजार या इससे अधिक खूनी अंग्रेज मात्र का खून करने में समर्थ हों, तो भी क्या वे हिन्दुस्तान का राज काज चला सकेंगे ? वे तो खून से मस्त होकर अपने मद में उन लोगों का खून ही करते रहेंगे, जो उन्हें पसन्द न होंगे। इससे हिन्दुस्तान की अनेक बुराइयां जिनके कारण हिन्दुस्तान पराधीन है, नहीं मिटेंगी।

"महात्मा जी का हुक्म"

एक अध्यापक लिखते हैं:—

"मेरी पाठशाला में लड़कों का एक छोटा सा गिरोह है, जो नियमित रूप से कई महीनों से चर्खा-संघ को १००० गज अपने हाथों का कता हुआ सूत भेजा करता है, और वे इस तुच्छ सेवा को आपके प्रति अपने प्रेमके कारणही करते है। यदि उनसे चर्खा चलाने का कोई कारण पूछता है, तो वे उत्तर देते हैं कि—'यह महात्मा जी का हुक्म है। इसे मानना ही पड़ता है।' मैं समझता हूं कि लड़कों में इस प्रकार की प्रवृति को हर तरह से प्रोत्साहन देना चाहिये। गुलामी के भाव में और इस प्रकार की वीर पूजा अथवा निःशङ्क आज्ञा-पालन में बहुत अन्तर है। इन लड़कों की बड़ी लालसा है कि उनको अपके हाथों से लिखा हुआ आपका संदेश मिले, जिससे वे उत्साहित हो सकें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि, उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत होगी।"

"मैं नहीं कह सकता कि जो मनोवृति इस पत्र से झलकती है, वह सद्भक्ति है अथवा अंधभक्ति। मैं ऐसे अवसरों को समझ सकता हूं, जब किसी आज्ञा के पालन करने के कारणों की जरूरत पर तर्क-वितर्क न करके उसे मान लेना ही आवश्यक हो। यह सिपाही के लिये अत्यन्त आवश्यक गुण है, कोई जाति उस समय तक उन्नति नहीं कर सकती, जब तक कि उसकी जनता में बहुतायत से यह गुण वर्तमान न हो। पर इस प्रकार के आज्ञा-पालन के अवसर सुसंगठित समाज में बहुत कम होते हैं और होंना

चाहिये। पाठशाला में बच्चों के लिये जो सबसे बुरी बात हो सकती है, वह यह है कि जो कुछ अध्यापक कहें, उसे उन्हें आंख बन्द करके मानना ही पड़ेगा। बात यह है कि यदि अपने आधीन के लड़के और लड़कियों की तर्क शक्ति को अध्यापक तेज करना चाहता है, तो उसको चाहिये कि उनकी बुद्धि को हमेशा काम में लगाता रहे और उन्हें स्वतंत्र रूप से विचार करने का मौका देवे। जब बुद्धि का काम खतम हो जाता है, तब श्रद्धा का काम आरम्भ होता है। पर दुनियां में इस प्रकार के बहुत कम काम होते हैं, जिनके कारण हम बुद्धि द्वारा नहीं निकाल सकते। यदि किसी स्थान में कुआं का जल गन्दा हो और वहां के विद्यार्थियों को गर्म और साफ़ किया हुआ जल पीना पड़े, और उनसे इस प्रकार के जल पीने का कारण पूछा जाये, और वे कहें कि, किसी महात्मा का हुक्म है, इसलिये हम ऐसा जल पीते हैं, तो कोई शिक्षक इस उत्तर को पसन्द नहीं कर सकता, और यदि यह उत्तर उस कल्पित अवस्था में गलत है तो चर्खा चलाने के सम्बन्ध में भी लड़कों का यह उत्तर बिल्कुल गलत है।

जब मैं अपनी महात्माई की गद्दी से उतार दिया जाऊँगा— जैसा मैं जानता हूँ कि बहुतेरे घरों में उतार दिया गया हूं (बहुतेरे पत्रप्रेषकों ने कृपा कर, मेरे प्रति अपनी श्रद्धा घट जाने की सूचना मुझे भी दे दी है)—तब मुझे भय है कि चर्खा भी उसके साथ ही साथ नष्ट हो जायगा। बात यह है कि कार्य मनुष्य से कहीं बड़ा होता है। सचमुच चर्खा मुझ से कहीं अधिक महत्व का है।

मुझे बड़ा दुःख होगा, यदि मेरी किसी भद्दी गलती से अथवा मुझसे लोगों के रन्ज हो जाने से, लोगों का मेरे प्रति सद्भाव कम हो जाय, और इस कारण चर्खे को भी नुकसान पहुँचे। इसलिये बहुत अच्छा हो, यदि लड़कों को उन सब विषयों पर स्वतंत्र विचार करने का मौका दिया जाय— जिन पर वे इस प्रकार विचार कर सकते हैं। चर्खा एक ऐसा विषय है, जिन पर उनको स्वतंत्र विचार करना चाहिये। मेरे विचार में इसके साथ भारत की जनता की भलाई का सवाल मिला हुआ है। इसलिये छात्रों को यहां की जनता की गहरी दरिद्रता को जानना चाहिये। उनको ऐसे गांओं को अपनी आंखों देखना चाहिये, जो तितर-बितर होते जा रहे हैं उनको भारत की कितनी आबादी है, जानना चाहिये। उनको यह जानना चाहिये कि यह कितना बड़ा देश है और यहां के करोड़ों निवासियों की थोड़ी आमदनी में हम थोड़ी बढ़ती किस प्रकार कर सकते हैं। उनको देश के गरीबों और पददलितों के साथ अपने को मिला देने को सीखना चाहिये। उनको यह सीखना चाहिये कि, जो कुछ गरीब से गरीब आदमी को नहीं मिल सकता है, वह जहां तक हो सके; वे अपने लिये भी न लेवें। तभी वे चर्खा चलाने के गुण को समझ सकेंगे। तभी उनकी श्रद्धा प्रत्येक प्रकार के हमले को, जिसमें मेरे सम्बन्ध में विचार परिवर्तन भी है—बर्दाश्त कर सकेंगे। चर्खा का आदर्श इतना बड़ा महान है कि, उसे किसी व्यक्ति के प्रति सद्भाव पर निर्भर नहीं रखा जा सकता है। यह ऐसा विषय है जिस पर विज्ञान और अर्थशास्त्र की युक्तियों द्वारा भी विचार किया जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि हम लोगों के बीच इस प्रकार की अंधभक्ति बहुत है और मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रीय पाठशालाओं के शिक्षक लोग मेरी इस चेतावनी पर ध्यान रखेंगे और अपने विद्यार्थियों को इस आलस्य से, कि वे किसी काम को केवल किसी ऐसे मनुष्य के करने के कारण ही किया करें, जिसे लोग बड़ा समझते हों, बचाने का प्रयत्न करेंगे।"

बुद्धि विकास बनाम बुद्धि विलास

त्रावणकोर और मदरास के भ्रमण में, विद्यार्थियों तथा विद्वानों के सहवास में मुझे ऐसा लगा कि, मैं जो नमूने उनमें देख रहा था, वे बुद्धि-विकास के नहीं, किन्तु बुद्धि-विलास के थे। आधुनिक शिक्षा भी हमें बुद्धि-विलास सिखाती है, और बुद्धि को उलटे रास्ते ले जाकर उसके विकास को रोकती है। सेगाँव में पड़ा-पड़ा मैं जो अनुभव ले रहा हूं, वह मेरी इस बात की पूर्ति करता दिखाई देता है। मेरा अवलोकन तो वहां अभी चल ही रहा है, इसलिये इस लेख में आये हुये विचार उन अनुभवों के ऊपर आधार नहीं रखते। मेरे यह विचार तो जब मैंने फिनिक्स संस्था की स्थापना की; तभी से हैं, याने १९०४ से।

बुद्धि का सच्चा विकास हाथ, पैर, कान आदि अवयवों के सदुपयोग से ही हो सकता है, अर्थात शरीर का ज्ञानपूर्वक उपयोग करते हुये बुद्धि का विकास सबसे अच्छी तरह और जल्दी

से होता है। इसमें भी यदि पारमार्थिकवृत्ति का मेल न हो तो बुद्धि का विकास एकतरफा होता है। पारमार्थिक वृत्ति हृदय माने आत्मा का क्षेत्र है। अतः यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के शुरू विकास के लिये आत्मा और शरीर का विकास साथ-साथ तथा एक गति से होना चाहिये। इससे कोई अगर यह कहे कि ये विकास एक के बाद एक हो सकते हैं, तो यह ऊपर की विचार श्रेणी के अनुसार ठीक नहीं होगा।

हृदय, बुद्धि और शरीर के बीच मेल न होने से जो दुःसह परिणाम आया है, वह प्रगट है, तो भी उलटे सहवास के कारण हम उसे देख नहीं सकते। गांवों के लोगों का पालन-पोषण पशुओं में होने के कारण वे मात्र शरीर का उपयोग मंत्र की भांति किया करते हैं, बुद्धि का उपयोग वे करते ही नहीं और उन्हें करना नहीं पड़ता। हृदय की शिक्षा नहीं के बराबर है; इसलिये उनका जीवन यूं ही गुजर रहा है, जो न इस काम का रहा है न उस काम का। और दूसरी ओर आधुनिक कालेजों की शिक्षा पर जब नजर डालते हैं तो वहां बुद्धि के विकास के नाम पर बुद्धि के विलास की तालीम दी जाती है। समझते हैं कि बुद्धि के विकास के साथ शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं। पर शरीर को कसरत तो चाहिये ही। इसलिये उपयोग रहित कसरतों से उसे निभाने का मिथ्या प्रयोग होता है। पर चारों ओर से मुझे इस तरह के प्रमाण मिलते ही रहते हैं कि स्कूल कालेजों से पास होकर जो विद्यार्थी निकलते हैं, वे मेहनत-मशक्कत के काम में मजदूरों की बराबरी नहीं कर सकते। जरा सी मेहनत की तो

माथा दुखने लगता है और धूप में घूमना पड़े तो चक्कर आने लगता है। यह स्थिति स्वाभाविक मानी जाती है। बिना जुते खेत में जैसे घास उग आती है, उसी तरह हृदय की वृत्तियां आप ही उगती और कुम्हलाती रहती हैं और वह स्थिति दयनीय माने जाने के बदले प्रशंसनीय मानी जाती है।

इसके विपरीत अगर बचपन से बालकों के हृदय की वृत्तियों को ठीक तरह से मोड़ा जाय, उन्हें खेती, चर्खा आदि उपयोगी कामों में लगाया जाय, और जिन उद्योग द्वारा उनका शरीर खूब कसा जा सके, उस उद्योग की उपयोगिता और उसमें काम आने वाले औजारों वगैरह की बनावट आदि ज्ञान उन्हें दिया जाय, तो उनकी बुद्धि का विकास सहज ही होता जाय और नित्य उसकी परीक्षा भी होती जाय। ऐसा करते हुए जिस गणित शास्त्र आदि के ज्ञान की आवश्यकता हो वह उन्हें दिया जाय, और विनोद के लिये साहित्यादि का ज्ञान भी देते जांय, तो तीनों वस्तुएँ समतोल हो जांय और कोई अंग उनका अविकसित न रहे। मनुष्य न केवल बुद्धि है, न केवल शरीर न केवल हृदय या आत्मा। तीनों के एक समान विकास में ही मनुष्य का मनुष्यत्व सिद्ध होगा, इसमें सच्चा अर्थ शास्त्र है। इसके अनुसार यदि तीनों विकास एक साथ हों तो हमारी उलझी हुई समस्याएं अनायास सुलझ जांय। यह विचार या इस पर अमल तो देश को स्वतन्त्रता मिलने के बाद होगा. ऐसी मान्यता भ्रमपूर्ण हो सकती है। करोड़ों मनुष्यों को ऐसे-ऐसे कामों में लगाने से ही स्वतन्त्रता दिन हम नजदीक ला सकते हैं।

विचार नहीं प्रत्यक्ष कार्य

सन् १९२० में मैंने वर्तमान शिक्षा पद्धति की काफी कड़े शब्दों में निन्दा की थी। और आज चाहे कितने ही थोड़े अंशों में क्यों न हो, देश के सात प्रान्तों में उन मंत्रियों द्वारा उस पर असर डालने का मुझे मौका मिला है, जिन्होंने मेरे साथ सार्वजनिक कार्य किया है और देश की स्वाधीनता के महान युद्ध में जिन्होंने मेरे साथ तरह-तरह की मुसीबतें उठाई हैं आज मुझे भीतर से एक ऐसी दुर्दमनीय प्रेरणा हो रही है कि मैं अपने इस आरोप को सिद्ध करके दिखा दूं कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति नीचे से लेकर ऊपर तक मूलतः बिलकुल गलत है और 'हरिजन' में जिस बात को प्रगट करने का अब तक प्रयास करता रहा हूँ और फिर भी ठीक-ठीक प्रगट नहीं कर सका, वही मेरे सामने सूर्यवत् स्पष्ट हो गई है। और प्रतिदिन उसकी सचाई मुझ पर अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है। इसलिये मैं देश के शिक्षा-शास्त्रियों से यह कहने का साहस नहीं कर रहा हूँ कि जिनका इनमें किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है और जिन्होने अपने हृदय को बिलकुल खुला रखा है, वे मेरे बताये इन दो प्रश्नों का अध्ययन करें और इसमें वर्तमान शिक्षा के कारण बनी हुई और स्थिर कल्पना को अपनी विचार शक्ति का बाधक न होने दें। मैं जो कुछ लिख रहा हूं और कह रहा हूँ इस पर विचार करते समय वे यह न समझें कि मैं शास्त्रीय और कट्टर दृष्टि से शिक्षा के विषय में बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। कहा जाता है कि ज्ञान अक्सर बच्चों के मुंह से

प्रगट होता है। इसमें कवि की अत्युक्ति हो सकती है, पर इसमें शक नहीं कि कभी-कभी दरअसल बच्चों के मुंह से प्रगट होता है। विशेषज्ञ उसे सुधार कर बाद में वैज्ञानिक रूप दे देते हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि मेरे प्रश्नों पर निरपेक्ष और केवल सारासार की दृष्टि से विचार हो। यों तो पहले भी मैं इन सवालों को पेश कर चुका हूँ, पर यह लेख लिखते समय जिन शब्दों में वे मुझे सूझ रहे हैं, मैं फिर बालकों के सामने पेश करता हूं।

१—सात साल में प्राथमिक शिक्षा के उन सब विषयों की पढ़ाई हो जो आज मैट्रिक तक होती है। पर उनमें से अँग्रेजी को हटा कर उसके स्थान पर किसी उद्योग (धंधे) की शिक्षा बच्चों को इस तरह दी जाय कि जिससे ज्ञान की तमाम शाखाओं में उनका आवश्यक मानसिक विकास हो जाय। आज प्राथमिक माध्यमिक और हाई स्कूल शिक्षा के नाम पर जो पढ़ाई होती है, उसकी जगह यह इस पढ़ाई को ले लें।

यह पढ़ाई स्वावलम्बी हो सकती है और यह ऐसी होनी ही चाहिये। वास्तव में स्वावलम्बन ही उसकी सचाई की सच्ची कसौटी है।

नवयुवकों से

आज कल कहीं-कहीं नवयुवकों को यह आदत सी पड़ गयी है कि बड़े बूढ़े जो कुछ कहें उसको नहीं मानना चाहिये। मैं तो यह कहना नहीं चाहता कि उनके ऐसा मानने का बिल्कुल कोई

कारण ही नहीं है। लेकिन देश के युवकों को इस बात से आगाह जरूर करना चाहता हूँ कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हर एक बात को वे सिर्फ इसी कारण मानने से इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ों ने कहा है। अक्सर बुद्धि की बात बच्चों तक के मुँह से निकल जाती है, उस तरह वह बड़े-बूढ़ों के मुँह से भी निकल जाती है। स्वर्ण नियम तो यही है कि हर एक बात को बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसी जाय, फिर वह चाहे किसी की कही या बताई हुई क्यों न हो. कृत्रिम-साधनों से सन्तति-निग्रह की बातों पर मैं अब आता हूँ। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गयी है कि अपनी विषय-वासना की पूर्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्त्तव्य है, जैसे वैध रूप में लिये हुए कर्ज को चुकाना हमारा कर्त्तव्य है और अगर हम ऐसा न करें, तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छा को सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से पृथक माना जाता है और सन्तति निग्रह के लिये कृत्रिम साधनों के समर्थक का कहना है, कि जब तक सहवास करने वाले स्त्री पुरुष को बच्चे पैदा करने की इच्छा न हो, तब तक गर्भ धारण नहीं होने देना चाहिये। मैं बड़े साहस के साथ यह कहता हूं कि यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका कहीं भी प्रचार करना बहुत खतर नाक है और हिन्दुस्तान जैसे देश के लिये तो जहां मध्य श्रेणी के पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का दुरुपयोग कर अपना पुरुषत्व ही खो बैठे हैं, यह और भी बुरा है। अगर विषयेच्छा की पूर्ति कर्त्तव्य हो तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचार के बारे में कुछ समय पहले मैंने लिखा था, वह तथा काम पूर्त्ति के

अन्य उपायों को भी ग्रहण करना होगा। पाठकों को याद रखना चाहिए कि बड़े-बड़े आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड़ रहे हैं, जिन्हें आम तौर पर वैयपिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस बात से पाठकों को कुछ ठेस लगे। लेकिन अगर किसी तरह इस पर प्रतिष्ठा की छाप लग जाय तो बालक बालिकाओं में अप्राकृतिक व्यभिचार का रोग बुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनों के उपयोग से कोई खास फ़र्क नहीं है। जिन्हें लोगों ने अभी तक अपनी विषयेच्छा पूर्ति के लिये अपनाया है और जिनके ऐसे कुपरिणाम आए हैं कि बहुत कम लोग उनसे परिचित हैं। स्कूली लड़के-लड़कियों में गुप्त व्यभिचार ने क्या तूफान मचाया है, यह मैं जानता हूँ। विज्ञान के नाम पर सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों के प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओं के नाम से उनके छपने से स्थिति आज और भी पेचीदा हो गयी है। और सामाजिक जीवन की शुद्धता के लिये सुधारकों का काम बहुत कुछ असम्भव सा हो गया है। पाठकों को यह बताकर मैं अपने पर किये गये किसी विश्वास का भंग नहीं कर रहा हूँ कि स्कूली कालेजों में ऐसी अविवाहित जवान लड़कियां भी हैं, जो अपनी पढ़ाई के साथ साथ कृत्रिम सन्तति निग्रह के साहित्य व मासिक पत्रों को भी बड़े चाव से पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनों को अपने साथ रखती हैं। इन साधनों को विवाहित स्त्रियों तक ही सीमित रखना असम्भव है। और विवाह की पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जब कि

उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्ति को छोड़कर महज अपनी पाशविक विषयवासना की पूर्ति ही उसका सब से बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो विद्वान् स्त्री-पुरुष संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों के पक्ष में बड़ी लगन के साथ प्रचार-कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वास के साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियों की रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध बच्चों का भार सम्हालना पड़ता है, देश के युवकों की ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। जिन्हें अपने बच्चों की संख्या सीमित करने की जरूरत है, उन तक तो आसानी से वे पहुँच भी नहीं सकेंगे। क्योंकि हमारे यहां के गरीब स्त्रियों को पश्चिमी स्त्रियों की भांति ज्ञान या शिक्षण कहाँ प्राप्त है? यह भी निश्चय है कि मध्य श्रेणी की स्त्रियों की ओर से भी यह प्रचार कार्य नहीं हो रहा है, क्योंकि इस ज्ञान की उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि गरीब लोगों को है।

इस प्रचार कार्य में सबसे बड़ी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्श को छोड़कर उसकी जगह एक ऐसे आदर्श को अपनाना है, जो अगर अमल में लाया जाय तो जाति का नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रों ने व्यर्थ वीर्यनाश को जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान जनित अन्धविश्वास नहीं है। कोई किसान अपने पास के सबसे बढ़िया

बीज को बंजर जमीन में बोवे, या बढ़िया खाद से खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेत के मालिक को इस शर्त पर बढ़िया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो, तो उसे हम क्या कहेंगे? परमेश्वर ने कृपा करके पुरुष को तो बहुत बढ़िया बीज दिया है और स्त्री को ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढ़िया इस भूमण्डल में कोई मिल ही नहीं सकता। ऐसी हालत में मनुष्य अपनी इस बहुमूल्य सम्पत्ति को व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिये कि अपने पास के बढ़िया से बढ़िया हीरे जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान् वस्तुओं की वह जितनी देख भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार सम्हाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खता की ही दोषी है, जो अपने जीवन उत्पादन क्षेत्र में जान बूझकर व्यर्थ जाने देने के विचार से बीज को ग्रहण करे। दोनों ही उन्हें मिले हुए गुणों का दुरुपयोग करने के दोषी होंगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायेंगे। विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है, इसमें शर्म की कोई बात नहीं। किन्तु यह है सन्तानोत्पत्ति के लिए। इसके सिवाय इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवता के प्रति पाप होगा। सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपाय किसी न किसी रूप में पहले भी थे और बाद में भी रहेंगे, परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचार को सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम हमारे ही युग के लिए सुरक्षित रक्खा हुआ था! कृत्रिम साधनों के हिमायती हिन्दुस्तान के नौजवानों की जो सबसे बड़ी हानि

कर रहे हैं; वह उनके दिमाग में ऐसी विचार धारा भर देता है, जो मेरे ख्याल में गलत है। भारत के नौजवान स्त्री-पुरुषों का भविष्य उनके अपने ही हाथों में है। उन्हें चाहिए कि इस झूटे प्रचार से सावधान हो जायँ और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वर ने उन्हें दी है, उसकी रक्षा करें और जब वे उसका उपयोग करना चाहें तो सिर्फ उसी उद्देश्य से करें कि जिसके लिए वह उन्हें दिया गया है।

विद्यार्थी और सङ्गठन

विद्यार्थियों को मैंने सब से पीछे के लिये रक्खा है। मैंने हमेशा उनसे निकट सम्पर्क स्थापित किया है, वे मुझे जानते हैं और मैं उन्हें जानता हूँ। उन्होंने मुझे अपनी सेवायें दी हैं। कालेज से पढ़ कर निकलने वाले बहुत से आज मेरे समादरणीय साथी हैं। मैं जानता हूँ कि वे भविष्य की आशाएँ हैं। असहयोग की आंधी के जमाने में उन्हें स्कूल और कालेज छोड़ने का आह्वान किया गया था। कुछ प्रोफेसर और विद्यार्थी जो कांग्रेस के इस आह्वान पर बाहर आ गये थे, साबित-क़दम रहे और उससे उन्होंने देश के लिये और स्वयं अपने लिये काफी लाभ उठाया। वह आह्वान फिर नहीं दुहराया गया। इसका कारण यह था कि उसके लिये अनुकूल वातावरण नहीं था। लेकिन अनुभव ने यह बतला दिया है कि वर्तमान शिक्षा यद्यपि झूठी और कृत्रिम है तो

भी देश के नौजवानों पर उसका मोह बहुत ही अधिक बढ़ा हुआ है। कालेज की शिक्षा से उनको कमाई के साधन मिल जाते हैं। नौकरी के मोहक क्षेत्र एवं भद्र समाज में प्रवेश पाने का यह एक तरह का परवाना है। ज्ञान प्राप्त करने की क्षम्य पिपासा प्रचलित परिपाठी पर चले विना पूरी हो नहीं सकती थी। मातृ-भाषा का स्थान छीने वैठी हुई एक सर्वथा विदेशी भाषा का ज्ञान करने में अपने वहुमूल्य वर्ष वरवाद कर देने की वे परवाह नहीं करते। इसमें कुछ पाप है—यह वे कभी अनुभव नहीं करते। उन्होंने और उनके अध्यापकों ने अपना यह खयाल वना रक्खा है कि आधुनिक विचार राशि और आधुनिक विज्ञान में प्रवेश करने के लिये देशी भाषायें वेकार हैं, निकम्मी हैं। मुझे आश्चर्य है कि जापानी लोग अपना काम किस तरह चलाते होंगे, क्योंकि जहाँ तक मुझे मालूम है, वहां सारी शिक्षा जापानी भाषा में ही दी जाती है। चीन के सर्वेसर्वा सेनाधिपति को तो अंग्रेजी का कुछ ज्ञान है भी, तो वह नहीं के वरावर है।

लेकिन, विद्यार्थी जैसे भी हैं, इन्हीं नवयुवक-युवतियों में से देश के भावी नेता निकलने वाले हैं। दुर्भाग्यवश, उन पर हर तरह की हवा का असर आसानी से हो जाता है। अहिंसा उन्हें वहुत आकर्षक प्रतीत नहीं होती। घूंसे के जवाव में घूंसा, या दो के वदले में कम-सेकम एक थप्पड़ मारने की वात, सहज ही उनकी समझ में आ जाती है। उसका परिणाम तत्काल निकलता दिखाई दे जाता है, यद्यपि वह क्षणिक होता है, यह पशुवल का

कभी समाप्त न होने वाला वह प्रयोग है, जो हम जानवरों के बीच होता देखते रहते हैं, और युद्ध में, जो कि अब विश्वव्यापी हो गया है, मनुष्य-मनुष्य के बीच चलता देख रहे हैं। अहिंसा की अनुभूति के लिये धैर्य के साथ खोज करने और उससे भी अधिक धैर्य और कष्ट सहन के साथ उसका अमल करने की आवश्यकता है। जिन कारणों से मैंने किसान-मजदूरों को अपनी ओर खींचने की प्रतिद्वन्द्विता से अपने को रोका, उन्हीं कारणों से मैं विद्यार्थियों के सहयोग को अपनी ओर खींचने की प्रतिद्वन्द्विता में भी नहीं पड़ा, बल्कि मैं स्वयं उन्हीं की तरह एक विद्यार्थी हूं। सिर्फ मेरी यूनिवर्सिटी उनकी से निराली है, उन्हें मेरी इस यूनिवर्सिटी में आने और मेरी शोध में सहयोग देने के लिये मेरी ओर से खुला निमन्त्रण है। उसमें प्रवेश पाने की शर्तें ये हैं:—

१—विद्यार्थियों को दलगति राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिये। वे विद्यार्थी हैं, शोधक हैं, राजनीतिज्ञ नहीं।

२—वे राजनैतिक हड़तालों में शरीक न हों। उनके अपने श्रद्धा भाजन नेता एवं वीर-पुरुष अवश्य हों, लेकिन उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन, उनके उत्तम कार्यों का अनुसरण द्वारा होना चाहिये। उनके जेल जाने, स्वर्गवासी होने अथवा फांसी पर चढ़ाये जाने तक पर, हड़ताल करके नहीं। अगर उनका शोक असहनीय हो, और सब विद्यार्थी समान रूप से अनुभव करते हों तो अपने प्रिंसिपल की स्वीकृति से मौके पर स्कूल-कालेज बन्द किये जा सकते हैं। अगर प्रिंसिपल उनकी बात न सुने, तो

उन्हें अधिकार है कि वे शिष्टता पूर्वक इन स्कूल कालेजों को छोड़ जावें और जब तक उनके व्यवस्थापक पछता कर, उन्हें वापिस न बुलावें, तब तक वापिस न जायें। जो विद्यार्थी इनका साथ न दें, उनके अथवा अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी हालत में वे बल-प्रयोग न करें। उन्हें यह विश्वास होना चाहिये कि, यदि उनमें आपस में एकता और उनके आचरण में शिष्टता कायम रही तो उनकी विजय निश्चित है।

३—उन सब को शास्त्रीय, वैज्ञानिक ढङ्ग से कताई-यज्ञ करना चाहिये। उनके औज़ार हमेशा स्वच्छ, साफ और व्यवस्थित करें, और सम्भव हो, तो वे अपने औज़ार खुद ही बनाना भी सीख लें। उनका सूत स्वभावतः ही सर्वोच्च कोटि का होगा। वे कताई सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन कर, उसके सब आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक पहलुओं को अच्छी तरह समझने की कोशिश करेंगे।

४—वे हमेशा खादी ही काम में लावेंगे और सब तरह की देशी, विदेशी मिलों की चीजें छोड़ कर, गाँवों में बनी चीजें ही बरतेंगे।

५—वे दूसरों पर 'वन्देमातरम्' गान अथवा अपना राष्ट्रीय झण्डा जबरदस्ती न लादेंगे। वे स्वयं राष्ट्रीय झण्डे वाले बटन लगायें, लेकिन दूसरों पर इसके लिये जबरदस्ती न करें।

६—तिरंगे झण्डे के सन्देश को वे अपने जीवन में उतारेंगे, और साम्प्रदायिक अथवा छुआछूत की भावना को कभी भी अपने

हृदय में स्थान न देंगे। दूसरे धर्म के विद्यार्थियों तथा हरिजनों के साथ वे अपने सम्बन्धियों की तरह सच्चे स्नेह सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

७—वे अपने किसी पड़ोसी के चोट लग जाने पर ध्यानपूर्वक उसकी तात्कालिक चिकित्सा करेंगे और अपने पड़ोस के गाँव में मेहतर का सफाई का काम करेंगे और वहां के बालकों और प्रौढ़ों को पढ़ाने का काम भी करेंगे।

८—वे राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी का, उसके हिन्दी और उर्दू के दुहरे अध्ययन करेंगे, जिससे कि हिन्दी उर्दू भाषी सभी जगहें उन्हें अनुकूल प्रतीत होंगे।

९—वे जो कुछ भी नई बात सीखेंगे, उसका अपनी मातृभाषा में अनुवाद करेंगे और अपने साप्ताहिक भ्रमण के मौके पर गांव वालों को पढ़ सुनायेंगे।

१०—वे कुछ भी काम छिपाकर या गुप्त रूप से न करेंगे, अपने सब व्यवहार में वे सन्देह की गुञ्जाइश न होने देंगे, वे अपना जीवन संयम और शुद्धता के साथ बितायेंगे, सब तरह का भय छोड़ देंगे, अपने कमजोर सहपाठी विद्यार्थी की रक्षा के लिये हमेशा तैयार रहेंगे; और दंगा होने पर अपने जीवन को खतरे तक में डाल कर अहिंसा के जरिये उसे दबाने के लिये तत्पर रहेंगे, आन्दोलन जब अपनी पूरी तेजी पर पहुँच जायेगा, वे अपनी संस्थायें स्कूल कालेज छोड़ देंगे और जरूरत होने पर अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये अपने को बलिदान कर देंगे।

११—अपने साथ पढ़ने वाली विद्यार्थिनियों के प्रति अपना व्यवहार अतिशय सरल और शिष्ट रखेंगे।

विद्यार्थियों के लिये मैंने जो यह कार्यक्रम बनाया है, उसके लिये उन्हें कुछ समय अवश्य निकालना चाहिये। मैं जानता हूँ कि वे अपना बहुत समय सुस्ती में बरबाद करते हैं। पूरी-पूरी मितव्यता से काम लें तो वे कई घण्टे बचा सकते हैं। लेकिन मैं किसी भी विद्यार्थी पर कोई अनुचित भार नहीं डालना चाहता। इस लिये देश भक्त विद्यार्थियों को सलाह दूंगा कि वे अपना एक वर्ष—एक साथ नहीं, बल्कि अपने सारे अध्ययन काल में थोड़ा थोड़ा करके—इस काम में लगायें। वे देखेंगे कि इस तरह दिया हुआ उनका यह एक वर्ष बरबाद नहीं गया। इस प्रयत्न से उनके मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास में वृद्धि होगी और अपने अध्ययन काल में ही अजादी की लड़ाई में उनकी ओर से ठोस हिस्सा अदा होगा।

हिन्दू विश्व विद्यालय में

हिन्दू विश्व विद्यालय की रजत जयन्ती के समारोह में दीक्षान्त भाषण देने के लिये जब महात्मा गान्धी उठे, तब पंडाल करतल ध्वनि से गूंज उठा। महामना मालवीय जी भी उपस्थित थे। महात्मा गांधी ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और कहा कि देश के सार्वजनिक जीवन को उनकी बहुत बड़ी देन है। उनका सब से बड़ा कार्य हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस है, इस

विद्यालय के प्रेम से हमें हार्दिक प्रेम है। महामना मालवीय जी ने उसके लिये जब कभी मेरी सेवायें चाही हैं, मैंने दी हैं।

आपने कहा—"मुझे याद है कि आज से २५ वर्ष पूर्व मैं इस विश्व विद्यालय के स्थापना दिवस पर उपस्थित था। उस समय मुझे आज की तरह न कहा जाता था। (हंसी) जो लोग मुझे महात्मा कहने लगे, मुझे बाद में पता चला कि उन्होंने यह शब्द महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के महात्मा से लिया।"

आपने कहा—"मालवीय जी एक सफल व महान् भिखारियों में से एक हैं, विश्व विद्यालय के लिये कितना चन्दा कर सकते हैं, इसका अनुमान उस अपील से किया जा सकता है, जो उन्होंने केवल पांच करोड़ रुपये के लिये निकाली थी।

छात्रों व अध्यापकों से

छात्रों और अध्यापकों को सम्बोधन करते हुए आपने कहाः—यदि मैं यह आलोचना करूँ कि आप लोगों ने अपने विचार प्रकट करने के लिये अंग्रेजी को अपना माध्यम क्यों चुना है, तो आशा है आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। यहां पर आने से पहले मैं देर तक यही सोचता रहा कि मैं क्या बोलूं। मुझे अत्यधिक सन्तोष होता यदि आप लोग अपना माध्यम हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू, संस्कृत, मराठी अथवा किसी भी भारतीय भाषा को बनाते।

आज अंग्रेज भारत के साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, उसके लिये हम उन्हें क्यों कोसें, जब कि हम गुलामों की तरह उनकी भाषा की नकल करते हैं, यदि कोई अंग्रेज हमारे बारे में यह

कह दे कि हम अंग्रेजी हूबहू अंगरेजों की तरह बोलते हैं, तो हमें कितनी खुशी होती है बस इससे ज्यादा हमारे पतन की और क्या मिसाल हो सकती है और असलियत यह है कि पं० मदनमोहन मालवीय और सर राधाकृष्णन् जैसे कुछ इने गिने ही अंगरेजी में प्रवीण होने का दावा कर सकते हैं।

जापान का उदाहरण

आपने कहा—मैं जानता हूं कि अधिकांश शिक्षित भारतीय निर्दोष हैं और उन पर उक्त आक्षेप नहीं लगाया जा सकता, फिर भी मैं जापान की मिसाल आप लोगों के सामने रखता हूँ-आज वह पश्चिम के लिए चुनौती का विषय बन चुका है, क्यों? पश्चिम की सब चीजों का अन्धा अनुकरण करने से नहीं। उसने अपनी भाषा के जरिये पश्चिम की अच्छी बातें सीखीं और आज उसे ही चुनौती दे रहा है। जापान ने जो उन्नति की है उससे मैं सन्तुष्ट हूं। कुछ भी सीखने से पहिले अंग्रेजी पढ़ने पर जो जोर दिया है, उससे कोई फायदा नहीं होता और राष्ट्र के युवकों की शक्ति व्यर्थ जाती है। उनकी शक्ति का अन्य उपयोगी चीजों में व्यय किया जा सकता है। जब कभी देश के नेता जनता में अंग्रेजी में भाषण दिया करते थे, उस समय सहिष्णुता और शिष्टाचार के कारण लोग उन्हें सुन लिया करते थे।

छात्रों में अनुशासन

आपने कहा—"मैंने देखा है कि आजकल छात्रों में अनुशासन बिल्कुल नहीं पाया जाता। जब हम शिक्षित हैं, तब ऐसा क्यों

है ? मेरी राय में इसका कारण यह है कि हमारी शिक्षा हम पर भार रूप हो रही है और इसीलिये हमारा दम घुट रहा है। मुझे खेद है कि आज बनारस विश्व विद्यालय में भी अंगरेजी का जोर है।

भाषा का झगड़ा

आपने कहा—"मुझे उर्दू में फारसी के और हिन्दी में संस्कृत के अधिक से अधिक शब्द जोड़ने की प्रवृति पसन्द नहीं है। यह काम एक दम बन्द होना चाहिये। हमें उस दासी हिन्दुस्तान का विकास करना चाहिये, जिसे हर कोई समझ सके। भारतीय विश्व विद्यालयों के सम्बन्ध में मेरी कोई ऊंची राय नहीं है। वे प्रायः पाश्चात्य संस्कृत और दृष्टिकोण के स्याही चूस हैं। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के लोग जहां कहीं जाते हैं, अपने विश्व विद्यालयों की परमपराएँ साथ में ले जाते हैं, लेकिन भारतीय विश्व विद्यालय के लोगों में यह चीज नहीं है। मैं पूछता हूं कि क्या बनारस विश्व विद्यालय के छात्र अलीगढ़ विश्व विद्यालय के छात्रों के साथ मिल-जुल सकते हैं ? क्या हिन्दू विश्व विद्यालय के छात्र बनारस पहुंच कर अपनी प्रान्तीय विभिन्नताओं और संस्कृतियों को भूल जाते हैं ? क्या वे अपने अन्दर कोई नवीनता अथवा भिन्नता पैदा कर लेते हैं ? क्या उनमें वह विशालता पाई जाती है, जो हिन्दू धर्म की विरासत है ? यदि वे उन प्रश्नों का उत्तर हां में दे सकते हैं, तो निस्सन्देह उनकी "कुलभूमि" उन पर नाज कर सकती है और उन पर यह विश्वास किया जा

सकता है, कि वे शान्ति, सद्भावना और मानवीयता का संदेश विश्व में फैला सकेंगे।

प्रश्न पिटारी

(क) विद्यार्थी और आने वाली लड़ाई

प्रश्न—कालेज का विद्यार्थी होते हुए भी मैं कांग्रेस का चवन्नी का मेम्बर हूं। आप कहते हैं कि, जब तक तुम पढ़ रहे हो, तब तक आने वाली लड़ाई में तुम्हें कोई क्रियात्मक भाग नहीं लेना चाहिये, तो फिर आप विद्यार्थियों से आजादी के आन्दोलन में क्या हिस्सा लेने की आशा रखते हैं?

उत्तर इस सवाल में विचार की गड़बड़ है। लड़ाई तो अब भी जारी है और जब तक राष्ट्र को उसका जन्मसिद्ध अधिकार न मिल जायगा, तब तक जारी रहेगी। सविनय भंग लड़ने के बहुत से तरीकों में एक है जहां तक आज मैं सोच सकता हूं, मेरा इरादा विद्यार्थियों को पढ़ाई छुड़ाकर निकाल लेने का नहीं है। करोड़ों आदमी सविनय भंग में शामिल नहीं होंगे। मगर करोड़ों अनेक प्रकार से मदद करेंगे।

(१) विद्यार्थी स्वेच्छा से अनुशासन पालने की कला सीखकर राष्ट्रीय काम के अलग अलग विभागों के नेता बनने के लिये अपने को काबिल बना सकते हैं।

(२) वे पढ़ाई पूरी करने के बाद धन कमाने के बजाय राष्ट्र का सेवक बनने का लक्ष्य रख सकते हैं।

(३) वे अपने खर्चे में से एक खास हिस्सा राष्ट्रीय कोष के लिए निकाल सकते हैं।

(४) वे आपस में कौमी, प्रान्तीय जातीय एकता बढ़ा सकते हैं, और अपने जीवन में अछूतपन का जरा भी निशान न रहने देकर हरिजनों के साथ भाई चारा पैदा कर सकते हैं।

(५) वे नियमित रूप से कात सकते हैं और सब तरह का कपड़ा छोड़कर प्रमाणित खादी ही इस्तेमाल कर सकते हैं और खादी फेरी भी कर सकते हैं।

(६) वे हररोज नहीं, तो हर सप्ताह समय निकालकर अपनी संस्थाओं के नजदीक के गांव या गांवों की सेवा कर सकते हैं और छुटियों में एक खास वक्त राष्ट्रीय सेवा में दे सकते हैं।

अलबत्ता ऐसा समय आ सकता है कि जैसा मैंने पहले किया था कि विद्यार्थियों से पढ़ाई छुड़ा लेना जरूरी हो जाये। हालां कि संभावना दूर की है फिर भी अगर मेरी चले, तो यह नौबत कभी नहीं आने वाली है। हां, ऊपर बताये हुये ढंग से विद्यार्थी पहले ही अपने को योग्य बना लेंगे तो बात दूसरी है।

(ख) अहिंसा बनाम स्वाभिमान

प्रश्न—मैं एक विश्वविद्यालय का छात्र हूं। कल शाम को हम कुछ लोग सिनेमा देखने गये थे। खेल के बीच में ही हम में से दो बाहर गये और अपनी जगहों पर रूमाल छोड़ गये। लौटने.

पर हमने देखा कि दो अंग्रेज सिपाही उन बैठकों पर बतकल्लुफी से कब्जा किये हुये हैं। उन्होंने हमारे मित्रों की साफ साफ चेतावनी और अनुनय विनय की कुछ भी परवाह नहीं की। जब जगह खाली करने के लिये कहा गया, तो उन्होंने इन्कार ही न किया, लड़ने को भी आमादा हो गये। उन्होंने सिनेमा के मैनेजर को भी धमका दिया। वह हिन्दुस्तानी था, इसलिये आसानी से दब गया, अन्त में छावनी का अफसर बुलाया गया, तब उन्होंने जगह खाली की। वह न आया होता तो हमारे सामने दो ही उपाय थे। या तो हम मारपीट पर उतर पड़ते और स्वाभिमान की रक्षा करते या दबकर दूसरी जगह चुपचाप बैठ जाते। पिछली बात में बड़ा अपमान होता।

उत्तर—मैं स्वीकार करता हूँ कि इस पहेली को हल करना मुश्किल है, ऐसी स्थिति का अहिंसक तरीके पर मुकाबला करने के दो उपाय सूझते हैं। पहला यह कि जब तक जगहें खाली न हों अपनी बात पर मजबूती से अड़े रहना। दूसरा यह कि जगह छीन लेने वालों के सामने जान बूझकर इस तरह खड़ा हो जाना कि उन्हें तमाशा दिखाई न दे। दोनों सूरतों में आपकी पिटाई होने का जोखम है। मुझे अपने उत्तर से सन्तोष नहीं है। मगर हम जिस विशेष परिस्थिति में हैं, उसमें इससे काम चल जावेगा। बेशक, आदर्श जवाब तो यह है, कि निजी अधिकार छिन जाने की हम परवाह न करें, बल्कि छीनने वालों को समझायें। वे हमारी न सुनें, तो सम्बन्धित अधिकारियों से शिकायत करदें और वहां

भी न्याय न मिले तो मामला ऊँची से ऊँची अदालत में ले जायें। यह कानून का रास्ता है। समाज की अहिंसक कल्पना में इसकी मनाही नहीं है। कानून को अपने हाथ में न लेना असल में अहिंसक मार्ग ही है। पर इस देश में आदर्श और वस्तु स्थिति कोई संबन्ध नहीं है, क्योंकि जहां गोरों का और खास तौर पर गोरे सिपाहियों का मामला हो वहाँ हिन्दुस्तानियों को न्याय मिलने की प्रायः कुछ भी आशा नही हो सकती। इसलिये जैसा मैंने सुझाया है, कुछ वैसा ही करने की जरूरत है। मगर मैं जानता हूं कि जब हममें सच्ची अहिंसा होगी तो कठिन परिस्थिति में होने पर भी हमें बिना प्रयत्न के ही कोई अहिन्सक उपाय सूझे बिना नहीं रहेगा।

(ग) छुट्टियों का उपयोग किस तरह किया जावे ?

प्रश्न—छुट्टी के दिनों में छात्रगण क्या कर सकते हैं ? वे अध्ययन करना नहीं चाहते और लगातार कातने से तो थक जायेंगे।

उत्तर—अगर वे कातने से थक जाते हैं, तो इससे जाहिर होता है कि उन्होंने इसके जीवनदायक तत्वों को और इसके आन्तरिक आकर्षण को नहीं समझा है, इसे समझने में क्या दिक्कत है कि काता हुआ हर एक गज़ सूत कौम की दौलत को बढ़ाता था ? एक गज़ सूत यों कोई बड़ी चीज नहीं है, पर चूंकि यह श्रम का सबसे सरल रूप है, इस लिये इसे गुणीभूत किया-बढ़ाया-जा सकता है। इस तरह कातने का संभाव्य मूल्य बहुत

ज्यादा है। छात्रों से चर्खा की यंत्र रचना समझने की और उसे अच्छी दशा में रखने की उम्मीद की जा सकती है, जो ऐसा करते हैं उन्हें कातने में एक अद्भुत आकर्षण का अनुभव होगा. इसलिए मैं कोई दूसरा काम बताने से इन्कार करता हूं। हाँ, कताई का स्थान कोई ज्यादा जरूरी काम ले सकता है। ज्यादा जरूरी से मेरा मतलब समय की दृष्टि से जरूरी है पास-पड़ोस के गाँवों को अच्छी साफ़ सुथरी और स्वास्थ्यप्रद हालत में रखने, बीमारों की तीमारदारी करने या हरिजन बच्चों को शिक्षा देने वगैरह कामों में उनकी मदद की जरूरत हो सकती है।

(घ) विद्यार्थी क्यों न शामिल हों ?

प्रश्न—आपने विद्यार्थियों का सत्याग्रह की लड़ाई में शामिल होना मना किया है। अलबत्ता आप यह जरूर चाहते हैं कि यदि इजाजत मिले तो वे स्कूलों और कालेजों को हमेशा के लिये छोड़ दें क्या इंगलैंड के विद्यार्थी जब कि उनका देश लड़ाई में फँसा हुआ है, आज शान्त बैठे हैं ?

उत्तर—स्कूलों और कालिजों में से निकलने का अर्थ तो यह है कि असहयोग करना, लेकिन यह आज के कार्य क्रम में शामिल नहीं। यदि सत्याग्रह की बागडोर मेरे हाथ में हो तो विद्यार्थियों को न आमंत्रण दूं और न उत्तेजित करूं कि वे स्कूलों और कालिजों में से निकल कर लड़ाई में भाग लें। अनुभव से कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के दिलों में कालिज का मोह कम नहीं हुआ है। इसमें शक नहीं कि स्कूल और कालिज की जो

प्रतिष्ठा थी वह कम हुई है, मगर इसको मैं कम महत्व नहीं देता। और अगर सरकारी स्कूल कालिजों को कायम रहना है तो विद्यार्थियों को लड़ाई के लिए बाहर निकलने से कोई फ़ायदा नहीं होगा और न लड़ाई को कुछ मदद मिलेगी। विद्यार्थियों के इस प्रकार के त्याग को मैं अहिंसक नहीं मानता, इसलिये मैंने कहा है कि जो भी विद्यार्थी लड़ाई में कूदना चाहे उसे चाहिये कि कालिज हमेशा के लिये छोड़ दे और भविष्य में देश-सेवा में लग जावे। इंगलैंड के विद्यार्थियों की स्थिति बिलकुल जुदा है। वहाँ तो तमाम देश पर बादल छाया हुआ है। वहां के स्कूल कालिजों के संचालकों ने इन संस्थाओं को खुद बन्द कर दिया है। यहां जो भी विद्यार्थी निकलेगा संचालक की मर्जी के विरुद्ध निकलेगा।

एकादश-सूत्री कार्य क्रम

"विद्यार्थी भविष्य की आशा है। मैं उन्हें जानता हूं और वे मुझे। असहयोग आन्दोलन में मैंने उन्हें स्कूल और कालेज छोड़ आने को कहा था। इसकी आवश्यकता अभी नहीं है। अनुभव ने बताया है कि आज की कालेज-शिक्षा अस्वाभाविक और असत्य होने पर भी विद्यार्थियों को आकृष्ट कर रही है क्योंकि वह उन्हें संसार में प्रवेश कराती है। मातृ भाषा के स्थान पर एक विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा-प्रसार के अनौचित्य पर वे ध्यान नहीं देते।

उन्होंने और उनके शिक्षकों ने सोच रखा है कि आधुनिक विचार धारा तथा विज्ञान के लिए प्रांतीय भाषाएं बेकार हैं। क्या जापानियों की भी ऐसी स्थिति होगी ? मैं समझता हूं कि उन्हें जापानी भाषा में ही शिक्षा दी जाती है। चीन के चांगकाई लोग बहुत कम अंग्रेजी जानते हैं।"

ये विचार महात्मा गांधी ने अपने हाल में प्रकाशित रचनात्मक कार्यक्रम में विद्यार्थियों के लिए एकादश-सूत्र कार्यक्रम निर्धारित करते हुए प्रकट किये हैं।

गांधी जी आगे चल कर कहते हैं कि विद्यार्थियों के लिए अहिंसा एक नीरस वस्तु है। एक घूंसे के बदले एक घूंसा या दो घूंसे की बात समझने में अधिक सरल है। इसका प्रभाव क्षणिक होते हुए भी तात्कालिक है। मैं स्वयं व्यापक अर्थ में एक विद्यार्थी हूं। पर मेरा विश्वविद्यालय उनके विश्वविद्यालय से भिन्न है। मैं उन्हें निमन्त्रण देता हूं कि वे विश्वविद्यालय में आवें और मेरे अहिंसा-अन्वेषण में योग दें। उसके नियम ये हैं:—

(१) विद्यार्थी राजनीतिक दलबन्दियों में भाग न लें। वे लोग छात्र-अन्वेषक हैं, राजनीतिज्ञ नहीं।

(२) विद्यार्थी राजनीतिक हड़तालें न करें। वे अपने नेताओं की भक्ति उनके गुणों के अनुकरण द्वारा करें, हड़ताल द्वारा नहीं। यदि उनके नेता जेल में बन्द कर दिये गये हों, या मार डाले गये हों, और इससे सभी विद्यार्थियों को असह्य दुख हो तो वे अपने विद्यालयों को छोड़कर आसकते हैं। पर अनुत्सुक विद्यार्थियों या

छात्रों पर वे जबर्दस्ती न करें। उन्हें यह विश्वास होना चाहिये कि यदि हम संगठित रहें और हमारा व्यवहार उचित हो तो हम अवश्य ही विजयी होंगे।

(२) सारे विद्यार्थियों को वैज्ञानिक ढंग से कताई करनी चाहिये। उनके औज़ार सदा साफ़-सुथरे और अच्छी हालत में होंगे। सम्भव है, वे उन्हें स्वयं बनाना सीख जायं। उनका सूत ऊंची जाति का होना चाहिये। कताई-विषयक साहित्य का वे अध्ययन करेंगे।

(४) वे सब खादी और ग्राम-वस्तुओं का उपयोग करेंगे। मशीन की बनी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करेंगे।

(५) वे वन्देमातरम् या राष्ट्रीय झंडे का आदर दूसरों द्वारा अनिच्छा से नहीं कराएंगे। वे राष्ट्रीय झंडे वाले बिल्ले खुद पहनें पर इसके लिये दूसरों पर जबर्दस्ती न करें।

(६) राष्ट्रीय झंडे के सन्देश को वे स्वयं कार्यान्वित करें और साम्प्रदायिकता या अस्पृश्यता को अपने हृदय में स्थान न दें। वे अन्य धर्मावलम्बी विद्यार्थियों और हरिजनों से सच्ची मित्रता करें, मानों वे उनके सम्बन्धी हों।

(७) अपने घायल पड़ौसियों की प्राथमिक सहायता करना पास के गांवों में कूड़ा-कटकट साफ करना और गांव के बच्चों और बड़ों को शिक्षित करना वे अपना कर्तव्य समझेंगे।

(८) वे सब राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी को नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में सीखेंगे।

(९) जो नई बातें वे सीखें उसका वे अपनी मातृभाषा में अनुवाद करें और उसे पड़ोस के गाँवों में फैलावें।

(१०) वे कोई भी काम गुप्त रीति से न करें। उनके व्यवहार में सचाई और ईमानदारी होगी। वे आत्म-संयमी, निर्भय और अपने बन्धुओं के निःस्वार्थ सहायक बनेंगे अपने प्राणों को खतरे में डाल कर भी वे दंगों को शान्त करने के लिये तैयार रहेंगे। स्वतन्त्रताके अन्तिम संग्राम में वे अपने शिक्षालयों को छोड़ देंगे, और देश की आजादी के लिये आवश्यकता पड़ने पर आत्म-बलिदान करने को प्रस्तुत रहेंगे।

(११) महिला-छात्राओं के प्रति उनका व्यवहार औचित्य और शौर्य पूर्ण होगा।

अन्त में गांधीजी कहते हैं कि इस कार्यक्रम पर अमल करने के लिये विद्यार्थियों को अवश्य ही समय निकालना होगा। मुझे मालूम है वे अपना बहुत सा समय आलस्य में गंवाते हैं। उचित ढंग से वे अपने बहुत से घंटे बचा सकते हैं। मैं किसी विद्यार्थी पर बेहद भार नहीं डालना चाहता। मैं देशभक्त विद्यार्थियों को सलाह देता हूँ कि वे इस रचनात्मक कार्य के लिये अपना एक वर्ष समर्पित करें। एकदम नहीं, बल्कि अपने विद्यार्थी जीवन के पूरे अर्से में कुल मिलाकर एक वर्ष। इस प्रकार का एक वर्ष व्यर्थ नहीं जायगा। यह उन्हें शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल देगा। इस प्रकार वे अपने अध्ययन-काल से स्वतन्त्रता-आन्दोलन में महत्वपूर्ण योग दे सकेंगे।

श्री गान्धी ग्रन्थागार के

साधारण नियम—जो सज्जन ग्रन्थावली के सम्पूर्ण सेटों के ग्राहक बनेंगे, वे स्थायी ग्राहक समझे जावेंगे। स्थायी ग्राहकों को २५) प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। उन्हें दो रुपया नकद बतौर अमानत कार्यालय में जमा देना होगा, यह रुपया अन्तिम सेट भेजते समय हिसाब में मुजरा कर दिया जायगा।

(२) जो सज्जन समय-समय पर अलग-अलग सेट खरीदेंगे वे साधारण ग्राहक समझे जायंगे उन्हें १२½ सैकड़ा कमीशन दिया जायगा। किन्तु उन्हें आर्डर भेजते समय १) नकद मनिआर्डर से पेशगी भेजना पड़ेगा। यह रुपया तत्काल आर्डर में मुजरा कर दिया जायगा। बिना पेशगी पाये पुस्तकें नहीं भेजी जायँगी।

(३) कागज़ की महँगाई के कारण पुस्तकों की थोड़ी-थोड़ी प्रतियाँ छापी जा रही हैं, अतः ग्राहकों को चाहिये कि वे शीघ्र स्थायी ग्राहक बनकर अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करा लें। जिन ग्राहकों के रुपये पहिले प्राप्त होंगे। उन्हें ही हम पुस्तकें देने को बाध्य होंगे। देर से रुपये आने पर पुस्तकें न रहने पर मनिआर्डर वापस कर दिये जायँगे और ग्राहकों को अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

(४) जो संस्थाएँ या सज्जन आर्थिक कठिनाइयों के कारण इच्छा रहते हुए भी ग्रन्थावली की पुस्तकें खरीदने में असमर्थ हैं, उन्हें चाहिये कि वे प्रयत्न करके आठ स्थायी ग्राहक बनाकर उनसे रुपया और आर्डर कार्यालय में भेजवा दिया करें। जब आठ ग्राहक पूरे हो जायँ तब उनकी सूची कार्यालय में भेज दें। सूची मिलने पर उन्हें ग्रन्थावली के सेट फ्री भेज दिये जावेंगे।

(५) हमारे यहाँ गान्धी-साहित्य की अनेक प्राप्य पुस्तकें स्टाक में रहती हैं। माँग आने पर वी० पी० से भेजी जाती हैं।

हमारे प्रकाशन

गान्धी सीरीज

(१) विद्यार्थियों से—विद्यार्थी-जीवन का पथ-प्रदर्शन करने वाला सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ। हमारा देश सदियों से साम्राज्यवाद के चंगुल में फँसा आज़ादी के लिये तड़प रहा है, चीख़ रहा है, चिल्ला रहा है। मगर इसकी ओर ब्रिटिश सरकार ध्यान नहीं देती। ऐसे संकट के समय भारतीय विद्यार्थियों का अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवम् समाज के उत्थान के प्रति क्या कर्तव्य है वे अपने देश को किस तरह शीघ्र से शीघ्र आज़ाद करा सकते हैं, समाज में राष्ट्रीय जागृती किस तरह पैदा कर सकते हैं। इसका विस्तृत वर्णन बड़े ही ओजस्वी एवम् मर्मस्पर्शी शब्दों में किया गया है। धर्म, समाज, राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी विवेचना इस पुस्तक की विशेषता है। मूल्य लागत मात्र ४)

(२) महिलाओं से—भारत के नारी जागरण में महात्मा जी का प्रमुख हिस्सा रहा है। अपने व्याख्यानों और वक्तव्यों द्वारा समय-समय पर इन्होंने इसका पथ प्रदर्शन भी किया है। इस पुस्तक में उन्हीं सुझावों का संग्रह किया गया है। भारतीय स्त्री-समाज के प्रत्येक समस्याओं का विवेचन, और शङ्काओं का समाधान इस पुस्तक की विशेषता है। कुमारियों एवम् विवाहिता स्त्रियों के जीवन को सफल और व्यवहारिक बनाने के मनोवैज्ञानिक सुझाव इसमें बताए गये हैं। प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपनी बहू-बेटियों को इस पुस्तक की एक-एक प्रति अवश्य भेंट में दें और स्वयम् भी इसे पढ़ें। मूल्य लागत मात्र ४)

(३) स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य—महात्मा जी प्राचीन सभ्यता एवम् संस्कृति के आदर्श रूप हैं। अठारह वर्ष की अवस्था से ही ये स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य के विषय में प्रयोग कर रहे हैं. निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। उनके हवा पानी और मिट्टी के उपचार द्वारा लाखों मनुष्य लाभ उठा रहे हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर सलाह देता हूँ कि यदि आप असाध्य रोगों से पीड़ित हैं, लाखों रुपया पानी की तरह बहा कर भी निराश हो गये हैं तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और इसके प्रयोगों को यथारीति उपयोग में लावें, आपको अवश्य लाभ होगा। मूल्य लागत मात्र ३)

(४) देशी रियासतों की समस्याएँ पुस्तक की उपादेयता उसके नाम से ही प्रकट है। राजनीति के पंडितों एवम् सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। मूल्य लागत मात्र लगभग ४) [छप रही है।]

(५) खादी की अर्थ नीति—स्वदेशी और ग्रामोद्योग की ओर जिनकी रुचि हो, उन्हें इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। अर्थशास्त्रियों को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिये। मूल्य लगभग ३) (छप रही है)

साधारण सीरीज

(६) त्याग का मूल्य—लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर पृष्ठ ४०० सजिल्द सचित्र पुस्तक का मूल्य ५)। उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द जी के शब्दों में यह टैगोर का सर्व श्रेष्ठ उपन्यास है।

(७) गीताँजलि—लेखक रविन्द्र नाथ टैगोर सचित्र, सजिल्द मूल्य १॥) । यह गीतांजलि का प्रामाणिक सुवोध सुलभ संस्करण प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक पर टैगोर को एक लाख वीस हजार का नोवेल पुरस्कार मिला था।

(८) माली—लेखक रविन्द्र नाथ टैगोर मूल्य लगभग १॥) (छप रही है)

(९) सुभाषचन्द्र बोस—प्रामाणिक जीवन चरित्र (अप्राप्य) मूल्य २)

(१०) सिटी गर्ल— लेखक पं० राम गोविन्द मिश्र सम्पादक विश्वमित्र, समाज में तहलका मचाने वाला सामाजिक मौलिक उपन्यास (प्रेस में) मूल्य लगभग २)

